॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

'हिन्दू (सनातन), बौद्ध, ईसाई और मुस्लिम-ये चार धर्म वर्तमान समयमें संसारमें मुख्य माने जाते हैं । इन चारोंमेंसे एक-एक धर्मको माननेवालोंकी संख्या करोड़ोंमें है। इनमें बौद्ध, ईसाई और मुस्लिम-धर्मको चलानेवाले क्रमशः बुद्ध, ईसा और मोहम्मद माने जाते हैं । ये तीनों ही धर्म अर्वाचीन हैं । परन्तु हिन्दूधर्म किसी मनुष्यके द्वारा चलाया हुआ नहीं है अर्थात् यह किसी मानवीय बुद्धिकी उपज नहीं है। यह तो विभिन्न ऋषियोंद्वारा किया गया अन्वेषण है, खोज उसीकी होती है, जो पहलेसे ही मौजूद हो। हिन्दूधर्म अनादि, अनन्त एवं शाश्वत है। जैसे भगवान् शाश्वत (सनातन) हैं, ऐसे ही हिन्दूधर्म भी शाश्वत है। इसीलिये भगवान्ने (गीता १४/२७ में) सनातन हिन्दूधर्मको अपना स्वरूप बताया है।'

'जब-जब हिन्दूधर्मका ह्रास होता है, तब-तब भगवान् अवतार लेकर इसकी संस्थापना करते हैं (गीता ४/७-८) । तात्पर्य है कि भगवान् भी इसकी संस्थापना, रक्षा करनेके लिये ही अवतार लेते हैं, इसको बनानेके लिये, उत्पन्न करनेके लिये नहीं। वास्तवमें अन्य सभी धर्म तथा मत-मतान्तर भी इसी सनातन धर्मसे उत्पन्न हुए हैं। इसलिये उन धर्मोंमें मनुष्योंके कल्याणके लिये जो साधन बताये गये हैं, उनको भी हिन्दूधर्मकी ही देन मानना चाहिये। अतः उन धर्मोंमें बताये गये अनुष्ठानोंका भी निष्कामभावसे कर्तव्य समझकर पालन किया जाय तो कल्याण होनेमें सन्देह नहीं मानना चाहिये।'

'प्राणिमात्रके कल्याणके लिये जितना गहरा विचार हिन्दूधर्ममें किया गया है, उतना दूसरे धर्मोंमें नहीं मिलता। हिन्दूधर्मके सभी सिद्धान्त पूर्णतः वैज्ञानिक और कल्याण करनेवाले हैं।'

-ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज

गीता प्रकाशन, गोरखपुरका अमूल्य साहित्य

गीता सत्संग मण्डल, कसौधन पंचायत मन्दिर, हरिवंश गली, शेषपुर, गोरखपुर-273005 सम्पर्क सूत्र : 9339593345, 7668312429

क्या करें, क्या न करें ?

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥
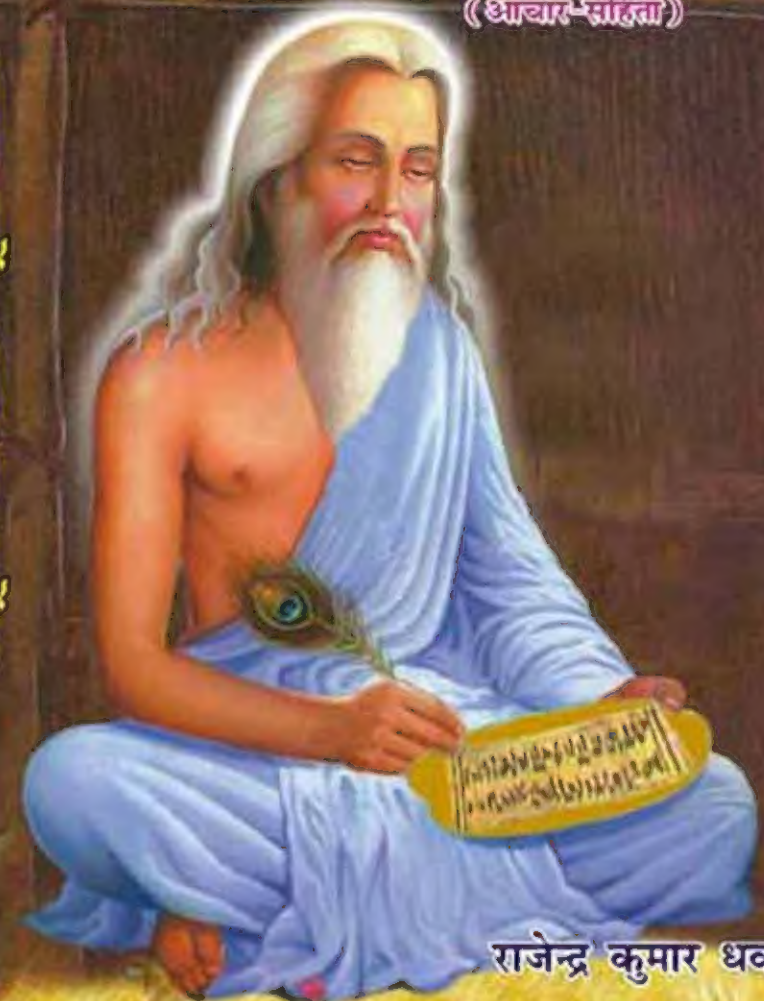
क्या करें, क्या न करें ?

(आचार-संहिता)

राजेन्द्र कुमार धवन

।। ॐ श्रीपरमात्मने नमः ।।

क्या करें, क्या न करें ?

(आचार संहिता)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव ।।

लेखक
राजेन्द्र कुमार धवन

प्रकाशक-
गीता प्रकाशन
गीता सत्संग मण्डल
पो०-गीताप्रेस, गोरखपुर-273005 (उ०प्र०)
सम्पर्क सूत्र-09389593845, 07668312429
E-mail : please contact us radhagovind10@gmail.com, pbramhachari@gmail.com
Visit us it : www.gitaprakashan.org
प्रकाशित : अब तक लगभग ५,२५००० प्रतियाँ
प्रथम संस्करण : सं० २०६८, ३००० प्रतियाँ
द्वितीय संस्करण : सं० २०६६, १५०० प्रतियाँ
मुल्य ३०.०० (मात्र तीस रुपये)

पुस्तक प्राप्ति स्थान

1- **गीता प्रकाशन**
गीता सत्संग मण्डल
कसौधन पंचायती मंदिर (हरिवंश गली)
पोस्ट-गीताप्रेस, गोरखपुर-273005
मो०-9389593845

2- **श्रीराम सेवा आश्रम**
केशव नगर, छठीकरा रोड
श्री वृन्दावन (मथुरा)
मो०-09410616466

3- **श्रीहरि पुस्तक प्रचार सदन**
42, विवेकानन्द रोड, गिरीश पार्क के पास,
कोलकाता-700006
मो०-0983 0666729

4- **राधारानी पुस्तक केन्द्र**
695, माया बाजार, पश्चिम फाटक
गोरखपुर-273001
मो०- 9198092029,07668312429

5- **गोरखपुर धार्मिक पुस्तक सदन**
B/8, गिन्नी-अपार्टमेण्ट, मादरमल रूइया मार्ग,
निकट-रेलवे क्रासिंग, मलाड (ईस्ट)
मो०-09833753470
☎: 022-28784465

6- **कैप्टन रिटायर्ड श्रीभगवान सिंह जोधा**
असल दुर्ग, 203 गिरनार कालोनी
गाँधीपथ, वैशालीनगर, जयपुर-302021
मो०-09928849500
E-mail : asaldurg1@gmail.com

7- **सत्संग समिति**
शाप नं० 41, सी.एल. शर्मा काम्प्लेक्स
प्लाट नं० 130, सेक्टर-8,
नियर-आसलो सिनेमा,
गाँधीधाम (कच्छ)-370201
मो०-09824426477

8- **सहज गीता पाठ समिति**
हिसार (हरियाणा)
अपने यहाँ पाठ करने के इच्छुक कृपया सम्पर्क करें।
मो०- 9896934491, 7206084814, 9245625079

9- **खण्डेलवाल एण्ड सन्स**
अठखम्भा बाजार, वृन्दावन (मथुरा)
मो.: 9997977551

मुद्रक-
कमल आफसेट प्रिन्टर्स
दुर्गाबाड़ी रोड, गोरखपुर (उ०प्र०)
मो०-9415331881

॥ श्रीहरिः ॥

प्राक्कथन

हिन्दू-संस्कृति अत्यन्त विलक्षण है। इसके सभी सिद्धान्त पूर्णतः वैज्ञानिक और मानवमात्रकी लौकिक तथा पारलौकिक उन्नति करनेवाले हैं। मनुष्यमात्रका सुगमतासे एवं शीघ्रतासे कल्याण कैसे हो—इसका जितना गम्भीर विचार हिन्दू-संस्कृतिमें किया गया है, उतना अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता। जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त मनुष्य जिन-जिन वस्तुओं एवं व्यक्तियोंके सम्पर्कमें आता है और जो-जो क्रियाएँ करता है, उन सबको हमारे क्रान्तदर्शी ऋषि-मुनियोंने बड़े वैज्ञानिक ढंगसे सुनियोजित, मर्यादित एवं सुसंस्कृत किया है और उन सबका पर्यवसान परमश्रेयकी प्राप्तिमें किया है। इसलिये भगवान्ने गीतामें बड़े स्पष्ट शब्दोंमें कहा है—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥

(गीता १६। २३-२४)

'जो मनुष्य शास्त्रविधिको छोड़कर अपनी इच्छासे मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि (अन्तःकरणकी शुद्धि)-को, न सुख (शान्ति)-को और न परमगतिको ही प्राप्त होता है। अतः तेरे लिये कर्तव्य-अकर्तव्यकी व्यवस्थामें शास्त्र ही प्रमाण है—ऐसा जानकर तू इस लोकमें शास्त्रविधिसे नियत कर्तव्य-कर्म करनेयोग्य है अर्थात् तुझे शास्त्रविधिके अनुसार कर्तव्य-कर्म करने चाहिये।'

तात्पर्य है कि हम '**क्या करें, क्या न करें?**'—इसकी व्यवस्थामें शास्त्रको ही प्रमाण मानना चाहिये। जो शास्त्रके अनुसार आचरण करते हैं, वे '**नर**' होते हैं और जो मनके अनुसार (मनमाना) आचरण करते हैं, वे '**वानर**' होते हैं—

मतयो यत्र गच्छन्ति तत्र गच्छन्ति वानराः।
शास्त्राणि यत्र गच्छन्ति तत्र गच्छन्ति ते नराः॥

गीतामें भगवान्‌ने ऐसे मनमाना आचरण करनेवाले मनुष्योंको '**असुर**' कहा है—

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।

(गीता १६। ७)

वर्तमान समयमें उचित शिक्षा, संग, वातावरण आदिका अभाव होनेसे समाजमें उच्छृंखलता बहुत बढ़ चुकी है। शास्त्रके अनुसार क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये—इसे नयी पीढ़ीके लोग जानते भी नहीं और जानना चाहते भी नहीं। जो शास्त्रीय आचार-व्यवहार जानते हैं, वे बताना चाहें तो उनकी बात न मानकर उनकी हँसी उड़ाते हैं। लोगोंकी अवहेलनाके कारण हमारे अनेक धर्मग्रन्थ लुप्त होते जा रहे हैं। जो ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उनको पढ़नेवाले भी बहुत कम हैं। पढ़नेकी रुचि भी नहीं है और पढ़नेका समय भी नहीं है! शास्त्रोंको जाननेवाले, बतानेवाले और तदनुसार आचरण करनेवाले सत्पुरुष दुर्लभ-से हो गये हैं। ऐसी परिस्थितिमें यह आवश्यक समझा गया कि एक ऐसी पुस्तक प्रकाशित की जाय, जिससे जिज्ञासुजनोंको शास्त्रोंमें आयी आचार-व्यवहार-सम्बन्धी आवश्यक बातोंकी जानकारी प्राप्त हो सके। इसी दिशामें यह प्रयत्न किया गया है।

शास्त्र अथाह समुद्रकी भाँति हैं। जो शास्त्र उपलब्ध हुए, उनका अवलोकन करके अपनी सीमित सामर्थ्य, समझ, योग्यता और समयके अनुसार प्रस्तुत पुस्तककी रचना की गयी है। जिन बातोंकी जानकारी लोगोंको बहुत कम है, उन बातोंको मुख्यतासे प्रकाशमें लानेकी चेष्टा की गयी है। यद्यपि पाठकोंको कुछ बातें वर्तमान समयमें अव्यावहारिक प्रतीत हो सकती हैं, तथापि अमुक विषयमें शास्त्र क्या कहता है—इसकी जानकारी तो उन्हें हो ही जायगी!

प्रस्तुत पुस्तककी रचनामें हमारे परमश्रद्धास्पद स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजकी सत्प्रेरणा रही है और उन्हींकी कृपाशक्तिसे यह कार्य सम्पन्न हो सका है। पाठकोंसे प्रार्थना है कि वे इस पुस्तकका अध्ययन करें और इसमें आयी बातोंको अपने जीवनमें उतारनेकी चेष्टा करें।

गीता-जयन्ती
विक्रम संवत् २०५८

—विनीत
राजेन्द्र कुमार धवन

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

क्रम	विषय	पृष्ठ-संख्या
१.	सदाचार-प्रशंसा	१
२.	समयानुसार कर्तव्याकर्तव्य	५
३.	शयन	१०
४.	मल-मूत्रका त्याग	१५
५.	शौचाचार (शुद्धि)	२१
६.	दन्तधावन	२४
७.	तैलाभ्यङ्ग	३०
८.	स्नान	३२
९.	वस्त्र	३८
१०.	भोजन	४१
११.	अन्न	५७
१२.	जल	६७
१३.	दूध	६९
१४.	भक्ष्य-अभक्ष्य	७१
१५.	न करनेयोग्य शारीरिक चेष्टाएँ	७८
१६.	स्पर्शास्पर्श	८३
१७.	शुद्धि-अशुद्धि	८८
१८.	सूतक (जननाशौच-मरणाशौच)	९७
१९.	शुभाशुभ धूलि	१०१
२०.	पशुपालन	१०२
२१.	धन	१०४
२२.	दान	१०५
२३.	तीर्थ	१०९
२४.	उपवास	१११
२५.	प्रणाम	११३
२६.	दूसरेकी वस्तु	११६
२७.	किनको न देखें ?	११९
२८.	कहाँ न बैठें ?	१२४
२९.	किनको न लाँघें ?	१२६
३०.	किनका अपमान न करें ?	१२९
३१.	किनपर विश्वास न करें ?	१३१
३२.	कहाँ निवास न करें ?	१३३
३३.	लक्ष्मी कहाँ नहीं आती ?	१३५
३४.	आत्महत्याका पाप	१३८
३५.	गर्भपातका पाप	१४१
३६.	घरसे बाहर जाते समय	१४४
३७.	मार्ग-गमन	१४५
३८.	विवाह	१५०
३९.	स्त्रियोंके लिये उपयोगी	१५७
४०.	गृहस्थोंके लिये उपयोगी	१६३
४१.	संन्यासियोंके लिये उपयोगी	१७४
४२.	गुरु-शिष्यके लिये उपयोगी	१७८
४३.	भूमिके प्रति व्यवहार	१८२
४४.	जल या नदीके प्रति व्यवहार	१८४
४५.	अग्निके प्रति व्यवहार	१८६
४६.	बड़ोंके प्रति व्यवहार	१८९
४७.	मित्रोंके प्रति व्यवहार	१९२
४८.	देवकार्य (देवपूजा)	१९४
४९.	पितृकार्य (श्राद्ध-तर्पण)	२०४
५०.	प्रकीर्ण	२२३
	आधार-ग्रन्थ-सूची	२४९

॥ श्रीहरिः ॥

सदाचार-प्रशंसा

आचारहीनं न पुनन्ति वेदा
यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः।
छन्दांस्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति
नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः॥

(वसिष्ठस्मृति ६।३; देवीभागवत ११।२।१)

'शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, व्याकरण और ज्योतिष—इन छः अंगोंसहित अध्ययन किये हुए वेद भी आचारहीन मनुष्यको पवित्र नहीं करते। मृत्युकालमें आचारहीन मनुष्यको वेद वैसे ही छोड़ देते हैं, जैसे पंख उगनेपर पक्षी अपने घोंसलेको।'

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम्॥

(मनुस्मृति ४।१५६)

'मनुष्य आचारसे आयुको प्राप्त करता है, आचारसे अभिलषित सन्तानको प्राप्त करता है, आचारसे अक्षय धनको प्राप्त करता है और आचारसे अनिष्ट लक्षणको नष्ट कर देता है।'

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च॥

(मनुस्मृति ४।१५७; वसिष्ठस्मृति ६।६)

'दुराचारी पुरुष संसारमें निन्दित, सर्वदा दुःखभागी, रोगी और अल्पायु होता है।'

आचारः फलते धर्ममाचारः फलते धनम्।*
आचाराच्छ्रियमाप्नोति आचारो हन्त्यलक्षणम्॥

(महाभारत, उद्योग० ११३।१५)

---

* आचारात्फलते धर्ममाचारात्फलते धनम्। (वसिष्ठस्मृति ६।७)

'आचार ही धर्मको सफल बनाता है, आचार ही धनरूपी फल देता है, आचारसे मनुष्यको सम्पत्ति प्राप्त होती है और आचार ही अशुभ लक्षणोंका नाश कर देता है।'

कुलानि समुपेतानि गोभिः पुरुषतोऽर्थतः।
कुलसंख्यां न गच्छन्ति यानि हीनानि वृत्ततः॥
वृत्ततस्त्वविहीनानि कुलान्यल्पधनान्यपि।
कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद् यशः॥

(महाभारत, उद्योग० ३६। २८-२९)

'गौओं, मनुष्यों और धनसे सम्पन्न होकर भी जो कुल सदाचारसे हीन हैं, वे अच्छे कुलोंकी गणनामें नहीं आ सकते। परन्तु थोड़े धनवाले कुल भी यदि सदाचारसे सम्पन्न हैं तो वे अच्छे कुलोंकी गणनामें आ जाते हैं और महान् यश प्राप्त करते हैं।'

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः॥

(महाभारत, उद्योग० ३६। ३०)

'सदाचारकी रक्षा यत्नपूर्वक करनी चाहिये। धन तो आता और जाता रहता है। धन क्षीण हो जानेपर भी सदाचारी मनुष्य क्षीण नहीं माना जाता; किन्तु जो सदाचारसे भ्रष्ट हो गया, उसे तो नष्ट ही समझना चाहिये।'

न कुलं वृत्तहीनस्य प्रमाणमिति मे मतिः।
अन्त्येष्वपि हि जातानां वृत्तमेव विशिष्यते॥

(महाभारत, उद्योग० ३४। ४१)

'मेरा ऐसा विचार है कि सदाचारसे हीन मनुष्यका केवल ऊँचा कुल मान्य नहीं हो सकता; क्योंकि नीच कुलमें उत्पन्न मनुष्योंका भी सदाचार श्रेष्ठ माना जाता है।'

आचारप्रभवो धर्मः धर्मस्य प्रभुरच्युतः।
आश्रमाचारयुक्तेन पूजितः सर्वदा हरिः॥

(नारदपुराण, पूर्व० ४। २२)

'आचारसे धर्म प्रकट होता है और धर्मके स्वामी भगवान् विष्णु हैं। अतः जो अपने आश्रमके आचारमें संलग्न है, उसके द्वारा भगवान् श्रीहरि सर्वदा पूजित होते हैं।'

सदाचारवता पुंसा जितौ लोकावुभावपि॥
साधवः क्षीणदोषास्तु सच्छब्दः साधुवाचकः।
तेषामाचरणं यत्तु सदाचारस्स उच्यते॥

(विष्णुपुराण ३। ११। २-३)

'सदाचारी मनुष्य इहलोक और परलोक दोनोंको ही जीत लेता है। 'सत्' शब्दका अर्थ साधु है और साधु वही है, जो दोषरहित हो। उस साधु पुरुषका जो आचरण होता है, उसीको सदाचार कहते हैं।'

आचारहीनः पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
परत्र च सुखी न स्यात्तस्मादाचारवान् भवेत्॥

(शिवपुराण, वा० उ० १४। ५६)

'आचारहीन मनुष्य संसारमें निन्दित होता है और परलोकमें भी सुख नहीं पाता। इसलिये सबको आचारवान् होना चाहिये।'

सर्वोऽयं ब्राह्मणो लोके वृत्तेन तु विधीयते।
वृत्ते स्थितस्तु शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं नियच्छति॥

(महाभारत, अनु० १४३। ५१)

'लोकमें यह सारा ब्राह्मण-समुदाय सदाचारसे ही अपने पदपर बना

हुआ है। सदाचारमें स्थित रहनेवाला शूद्र भी (इस जन्ममें) ब्राह्मणत्वको प्राप्त हो सकता है।'

आचाराल्लभते चायुराचाराल्लभते प्रजाः।
आचारादन्नमक्षय्यमाचारो हन्ति पातकम्॥
आचारः परमो धर्मो नृणां कल्याणकारकः।
इह लोके सुखी भूत्वा परत्र लभते सुखम्॥
(देवीभागवत ११। १। १०-११)

'आचारसे ही आयु, सन्तान तथा प्रचुर अन्नकी उपलब्धि होती है। आचार सम्पूर्ण पातकोंको दूर कर देता है। मनुष्योंके लिये आचारको कल्याणकारक परम धर्म माना गया है। आचारवान् मनुष्य इस लोकमें सुख भोगकर परलोकमें भी सुखी होता है।'

आचारवान् सदा पूतः सदैवाचारवान् सुखी।
आचारवान् सदा धन्यः सत्यं सत्यं च नारद॥
(देवीभागवत ११। २४। ९८)

'(भगवान् नारायण बोले—) नारद! आचारवान् मनुष्य सदा पवित्र, सदा सुखी और सदा ही धन्य है—यह सत्य है, सत्य है।'

समयानुसार कर्तव्याकर्तव्य

१. दो घटी अर्थात् अड़तालीस मिनटका एक मुहूर्त होता है। पन्द्रह मुहूर्तका एक दिन और पन्द्रह मुहूर्तकी एक रात होती है। सूर्योदयसे तीन मुहूर्तका 'प्रातःकाल', फिर तीन मुहूर्तका 'संगवकाल', फिर तीन मुहूर्तका 'मध्याह्नकाल', फिर तीन मुहूर्तका 'अपराह्नकाल' और उसके बाद तीन मुहूर्तका 'सायाह्नकाल' होता है।

२. मनुष्यको चाहिये कि वह स्नान आदिसे शुद्ध होकर पूर्वाह्नमें देवता-सम्बन्धी कार्य (दान आदि), मध्याह्नमें मनुष्य-सम्बन्धी कार्य और अपराह्नमें पितर-सम्बन्धी कार्य करे। असमयमें किया हुआ दान राक्षसोंका भाग माना गया है।

---

१. रेखाप्रभृत्यथादित्ये त्रिमुहूर्तगते रवौ। प्रातः स्मृतस्ततः कालो भागश्चाह्नः स पञ्चमः॥ तस्मात्प्रातस्तनात्कालात्त्रिमुहूर्तस्तु सङ्गवः। मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तस्तु तस्मात्कालात्तु सङ्गवात्॥ तस्मान्माध्याह्निकात्कालादपराह्न इति स्मृतः। त्रय एव मुहूर्तास्तु कालभागः स्मृतो बुधैः॥ अपराह्णे व्यतीते तु कालः सायाह्न एव च। दशपञ्चमुहूर्ता वै मुहूर्तास्त्रय एव च॥ (विष्णुपुराण २।८।६१—६४)

प्रातःकालो मुहूर्तांस्त्रीन् सङ्गवस्तावदेव तु। मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तः स्यादपराह्नस्ततः परम्॥ सायाह्नस्त्रिमुहूर्त्तः स्याच्छ्राद्धं तत्र न कारयेत्। राक्षसी नाम सा वेला गर्हिता सर्वकर्मसु॥ (मत्स्यपुराण २२।८२-८३; पद्मपुराण, सृष्टि० ११।८३—८५)

मुहूर्तानां त्रयं पूर्वमह्नः प्रातरिति स्मृतम्। जपध्यानादिभिस्तस्मिन् विप्रैः कार्यं शुभव्रतम्॥ सङ्गवाख्यं त्रिभागं तु मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तकः। लौकिकं सङ्गवेऽर्थ्यं च स्नानादि ह्यथ मध्यमे॥ चतुर्थमपराह्णं तु त्रिमुहूर्तं तु पित्र्यकम्। सायाह्नस्त्रिमुहूर्तं च मध्यमं कविभिः स्मृतम्॥ (महाभारत, अनु० २३। ३५)

त्रिमुहूर्तस्तु प्रातः स्यात्तावानेव तु सङ्गवः। मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तः स्यादपराह्नस्तथैव च॥ सायं तु त्रिमुहूर्तः स्यात्पञ्चधा काल उच्यते। (प्रजापतिस्मृति १५६-१५७)

२. दैवं पौर्वाह्णिकं कुर्यादपराह्णे तु पैतृकम्। मङ्गलाचारसम्पन्नः कृतशौचः प्रयत्नवान्॥ मनुष्याणां तु मध्याह्ने प्रदद्यादुपपत्तिभिः। कालहीनं तु यद् दानं तं भागं रक्षसां विदुः॥ (महाभारत, अनु० २३। २-३)

[पूर्वाह्न देवताओंका, मध्याह्न मनुष्योंका, अपराह्न पितरोंका और सायाह्न राक्षसोंका समय माना गया है।]

३. ऋषियोंने प्रतिदिन सन्ध्योपासन करनेसे ही दीर्घ आयु प्राप्त की थी। इसलिये सदा मौन रहकर द्विजमात्रको प्रतिदिन तीन समय सन्ध्या करनी चाहिये। प्रातःकालकी सन्ध्या ताराओंके रहते-रहते, मध्याह्नकी सन्ध्या सूर्यके मध्य-आकाशमें रहनेपर और सायंकालकी सन्ध्या सूर्यके पश्चिम दिशामें चले जानेपर करनी चाहिये।

४. मल-मूत्रका त्याग, दातुन, स्नान, शृंगार, बाल सँवारना, अंजन लगाना, दर्पणमें मुख देखना और देवताओंका पूजन—ये सब कार्य पूर्वाह्नमें करने चाहिये।

दैवं पूर्वाह्निकं ज्ञेयं पैतृकं चापराह्निकम्। कालहीनं च यद् दानं तद् दानं राजसं विदुः ॥ (महाभारत, आश्व० ९२)

देवकार्याणि पूर्वाह्णे मनुष्याणां च मध्यमे ॥ पितृणामपराह्णे च कार्याण्येतानि यत्नतः। पौर्वाह्निकं तु यत् कर्म यदि तत् सायमाचरेत् ॥ न तस्य फलमाप्नोति वन्ध्यास्त्रीमैथुनं यथा। (दक्षस्मृति २२—२४)

पूर्वाह्णे तात देवानां मनुष्याणां च मध्यमे। भक्त्या तथापराह्णे च कुर्वीत पितृपूजनम् ॥ (मार्कण्डेयपुराण ३४।७४)

३. ऋषयो नित्यसन्ध्यत्वाद् दीर्घमायुरवाप्नुवन् ॥ तस्मात् तिष्ठेत् सदा पूर्वां पश्चिमां चैव वाग्यतः। (महाभारत, अनु० १०४।१८-१९)

प्रातःसन्ध्यां सनक्षत्रां मध्याह्ने मध्यभास्कराम् ॥ ससूर्यां पश्चिमां सन्ध्यां तिस्रः सन्ध्या उपासते। (देवीभागवत ११।१६।२-३)

४. मैत्रं प्रसाधनं स्नानं दन्तधावनमञ्जनम्। पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानां च पूजनम् ॥ (मनुस्मृति ४।१५२)

प्रसाधनं च केशानामञ्जनं दन्तधावनम्। पूर्वाह्ण एव कार्याणि देवतानां च पूजनम् ॥ (महाभारत, अनु० १०४।२३)

केशप्रसाधनादर्शदर्शनं दन्तधावनम्। पूर्वाह्ण एव कार्याणि देवतानां च तर्पणम् ॥ (मार्कण्डेयपुराण ३४।२१)

केशप्रसाधनादर्शदन्तधावनमञ्जनम्। पूर्वाह्ण एव कार्याणि देवतानां च तर्पणम् ॥ (ब्रह्मपुराण २२१।२१)

आदर्शदर्शनं दन्तधावनं केशसाधनम् ॥ देवार्चनं च पूर्वाह्णे कार्याण्याहुर्महर्षयः ॥ (स्कन्दपुराण, मा० कौ० ४१।१२४-१२५)

५. दोनों सन्ध्याओं तथा मध्याह्नके समय शयन, अध्ययन, स्नान, उबटन लगाना, भोजन और यात्रा नहीं करनी चाहिये।

६. दोनों सन्ध्याओंके समय सोना, पढ़ना और भोजन करना निषिद्ध है।

७. रातमें दही खाना, दिनमें तथा दोनों सन्ध्याओंके समय सोना और रजस्वला स्त्रीके साथ समागम करना—ये नरककी प्राप्तिके कारण हैं।

८. दोपहरमें, आधी रातमें और दोनों सन्ध्याओंमें चौराहेपर नहीं रहना चाहिये।

९. अत्यन्त सबेरे, अधिक साँझ हो जानेपर और ठीक मध्याह्नके समय कहीं बाहर नहीं जाना चाहिये।

१०. दोपहरके समय, दोनों सन्ध्याओंके समय और आर्द्रा नक्षत्रमें दीर्घायुकी कामना रखनेवाले अथवा अशुद्ध मनुष्योंको श्मशानमें नहीं जाना चाहिये।

---

५. स्वप्नमध्ययनं स्नानमुद्वर्तं भोजनं गतिम्। उभयोः सन्ध्ययोर्नित्यं मध्याह्ने चैव वर्जयेत् ॥ (पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५।७१-७२; कूर्मपुराण, उ० १६।७१)

६. स्वप्नाध्ययनभोज्यानि सन्ध्ययोश्च विवर्जयेत्। (मार्कण्डेयपुराण ३४।७३; स्कन्दपुराण, मा० कौ० ४१।१६१)

स्वापेऽध्वनि तथा भुञ्जन् स्वाध्यायं च विवर्जयेत्। (ब्रह्मपुराण २२१।७०)

७. रात्रौ च दधिभक्ष्यं च शयनं सन्ध्ययोर्दिने। रजःस्वला स्त्रीगमनमेतन्नरककारणम् ॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्म० २७।४०)

८. मध्यं दिनेऽर्धरात्रे च .... सन्ध्ययोरुभयोश्चैव न सेवेत चतुष्पथम् ॥ (मनुस्मृति ४।१३१)

मध्यंदिने निशाकाले अर्धरात्रे च सर्वदा ॥ चतुष्पथं न सेवेत उभे सन्ध्ये तथैव च ॥ (महाभारत, अनु० १०४।२७-२८)

९. नातिकल्यं नातिसायं नातिमध्यंदिने स्थिते। (मनुस्मृति ४।१४०)

नातिकल्यं नातिसायं न च मध्यन्दिने स्थिते ॥ (महाभारत, अनु० १०४।२४)

१०. मध्याह्ने सन्ध्ययोस्तत्र नक्षत्रे रुद्रदैवते। आयुष्कामैरशुद्धैर्वा न गन्तव्यमिति स्थितिः ॥ (महाभारत, अनु० १४१)

११. सन्ध्याकाल (सायंकाल)-में भोजन, स्त्रीसंग, निद्रा तथा स्वाध्याय—इन चार कर्मोंको नहीं करना चाहिये। कारण कि भोजन करनेसे व्याधि होती है, स्त्रीसंग करनेसे क्रूर सन्तान उत्पन्न होती है, निद्रासे लक्ष्मीका ह्रास होता है और स्वाध्यायसे आयुका नाश होता है।

१२. भोजन, शयन, यात्रा, स्त्रीसंग, अध्ययन, किसी विषयका चिन्तन, मद्यका विक्रय, भबकेसे अर्क खींचना, कोई वस्तु देना या लेना—ये कार्य सन्ध्याके समय नहीं करने चाहिये।

१३. चौराहा, चैत्यवृक्ष, श्मशान, उपवन, दुष्टा स्त्रीका साथ, देवमन्दिर, सूना घर तथा जंगल—इनका देर रातमें सर्वदा त्याग करना चाहियें। सूने घर, जंगल और श्मशानमें तो दिनमें भी निवास नहीं करना चाहिये।

---

११. चत्वारि खलु कर्माणि सन्ध्याकाले विवर्जयेत्। आहारं मैथुनं निद्रां स्वाध्यायं च चतुर्थकम्॥ आहाराज्जायते व्याधिः क्रूरगर्भश्च मैथुने। निद्रा श्रियो निवर्तन्ते स्वाध्याये मरणं ध्रुवम्॥ (यमस्मृति ७६-७७)

१२. सन्ध्यास्वभ्यवहारस्त्रीस्वप्नाध्ययनचिन्तनम्। मद्यविक्रयसन्धानदानादानानि नाचरेत्॥ (शुक्रनीति ३। ३२)

नाश्नीयात्सन्धिवेलायां न गच्छेन्नापि संविशेत्। (मनुस्मृति ४। ५५)

सन्ध्यायां न स्वपेद् राजन् विद्यां न च समाचरेत्॥ न भुञ्जीत च मेधावी तथायुर्विन्दते महत्। (महाभारत, अनु० १०४। ११८-११९)

सन्ध्यायां च न भुञ्जीत न स्नायेन्न तथा पठेत्। प्रयतश्च भवेत् तस्यां न च किञ्चित् समाचरेत्॥ (महाभारत, अनु० १०४। १४०)

सन्ध्यास्वभ्यवहारस्त्रीस्वप्नाध्ययनचिन्तनम्॥ (अष्टांगहृदय, सूत्र० २। ४२)

न सन्ध्यास्वभ्यवहाराध्ययनस्त्रीस्वप्नसेवी स्यात्। (चरकसंहिता, सूत्र० ८। २५)

१३. तथा चत्वरचैत्यं न चतुष्पथसुरालयान्। शून्याटवीशून्यगृहश्मशानानि दिवापि न॥ (शुक्रनीति ३। ३०)

१४. रात्रिमें पेड़के नीचे नहीं रहना चाहिये।

१५. अमावस्याके दिन जो वृक्ष, लता आदिको काटता है अथवा उनका एक पत्ता भी तोड़ता है, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है।

१६. संक्रान्ति, ग्रहण, पूर्णिमा, अमावस्या आदि पर्वकाल प्राप्त होनेपर जो मनुष्य वृक्ष, तृण और ओषधियोंका भेदन-छेदन करता है, उसे ब्रह्महत्या लगती है।

~~~~

चतुष्पथं चैत्यतरुं श्मशानोपवनानि च। दुष्टस्त्रीसन्निकर्षं च वर्जयेन्निशि सर्वदा॥ नैकश्शून्याटवीं गच्छेत्तथा शून्यगृहे वसेत्॥

(विष्णुपुराण ३। १२। १३-१४)

न क्षपास्वमरसदनचैत्यचत्वरचतुष्पथोपवनश्मशानाघातनान्यासेवेत नैकः शून्यगृहं न चाटवीमनुप्रविशेत्। (चरकसंहिता, सूत्र० ८। १९)

तथा चत्वरचैत्यान्तश्चतुष्पथसुरालयान्। सूनाटवीशून्यगृहश्मशानानि दिवाऽपि न॥ (अष्टांगहृदय, सूत्र० २। ३८)

१४. रात्रौ च वृक्षमूलानि दूरतः परिवर्जयेत्॥

(मनुस्मृति ४। ७३; विष्णुधर्मोत्तर० ३। २३३। १६५)

'नक्तं सेवेत न द्रुमम्' (शुक्रनीति ३। २९; अष्टांगहृदय, सूत्र० २। ३७)

१५. छिनत्ति वीरुधो यस्तु वीरुत्संस्थे निशाकरे। पत्रं वा पातयत्येकं ब्रह्महत्यां स विन्दति॥ (विष्णुपुराण २। १२। १०)

वनस्पतिं च यो हन्यादमावस्यामबुद्धिमान्। अपि ह्येकेन पत्रेण लिप्यते ब्रह्महत्यया॥ (महाभारत, अनु० १२७। ३)

१६. पर्वकाले तु सम्प्राप्ते यो वै च्छेदनभेदनम्। करिष्यति नरो मोहात् तमेषानुगमिष्यति॥ (महाभारत, शान्ति० २८२। ४१)

~~~~

शयन

१. सदा पूर्व या दक्षिणकी तरफ सिर करके सोना चाहिये। उत्तर या पश्चिमकी तरफ सिर करके सोनेसे आयु क्षीण होती है तथा शरीरमें रोग उत्पन्न होते हैं।

२. पूर्वकी तरफ सिर करके सोनेसे विद्या प्राप्त होती है। दक्षिणकी तरफ सिर करके सोनेसे धन तथा आयुकी वृद्धि होती है। पश्चिमकी तरफ सिर करके सोनेसे प्रबल चिन्ता होती है। उत्तरकी तरफ सिर करके सोनेसे हानि तथा मृत्यु होती है अर्थात् आयु क्षीण होती है।

३. अधोमुख होकर, नग्न होकर, दूसरेकी शय्यापर, टूटी हुई खाटपर तथा जनशून्य घरमें नहीं सोना चाहिये।

---

१. प्राच्यां दिशि शिरश्शस्तं याम्यायामथ वा नृप। सदैव स्वपतः पुंसो विपरीतं तु रोगदम्॥ (विष्णुपुराण ३। ११। ११३)

सदैव वर्ज्यं शयनमुदक्शिरास्तथा प्रतीच्यां रजनीचरेश। (वामनपुराण १४। ५१)

नोत्तरापरावाक्शिराः। (विष्णुस्मृति ७०)

नोत्तराभिमुखः सुप्यात् पश्चिमाभिमुखो न च॥ (लघुव्याससंहिता २। ८८)

उत्तरे पश्चिमे चैव न स्वपेद्धि कदाचन॥ स्वप्नादायुः क्षयं याति ब्रह्महा पुरुषो भवेत्। न कुर्वीत ततः स्वप्नं शस्तं च पूर्वदक्षिणम्॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। १२५-१२६)

उदक्शिरा न स्वपेत तथा प्रत्यक्शिरा न च। प्राक् शिरास्तु स्वपेद् विद्वानथवा दक्षिणाशिराः॥ (महाभारत, अनु० १०४। ४८)

२. प्राक्शिरःशयने विद्याद्धनमायुश्च दक्षिणे। पश्चिमे प्रबला चिन्ता हानिमृत्युरथोत्तरे॥ (भगवंतभास्कर, आचारमयूख)

३. अधोमुखो न नग्नो वा न च भिन्नासने क्वचित्। न भग्नायान्तु खट्वायां शून्यागारे तथैव च॥ (लघुव्याससंहिता २। ८८-८९)

४. जो विशाल (बड़ी) न हो, टूटी हुई हो, ऊँची-नीची हो, मैली हो अथवा जिसमें जीव हों या जिसपर कुछ बिछा हुआ न हो, उस शय्यापर नहीं सोना चाहिये।

५. टूटी खाटपर नहीं सोना चाहिये।

६. बाँस या पलाशकी लकड़ीपर कभी नहीं सोना चाहिये।

७. सिरको नीचा करके नहीं सोना चाहिये।

८. जूठे मुँह नहीं सोना चाहिये।

९. नग्न होकर नहीं सोना चाहिये।

---

४. नाविशालां न वै भग्नां नासमां मलिनां न च। न च जन्तुमयीं शय्यामधितिष्ठेदनास्तृताम्॥ (विष्णुपुराण ३। ११। ११२)

'नानास्तीर्णमनुपहितमविशालमसमं वा शयनं प्रपद्येत' (चरकसंहिता, सूत्र० ८। १९)

५. न भग्ने नावशीर्णे च शयने प्रस्वपीत च। (महाभारत, अनु० १०४। ४९)

'न भिन्ने' (विष्णुस्मृति ७०)

न शीर्णायां तु खट्वायां शून्यागारे न चैव हि। (कूर्मपुराण, उ० १९। २९)

६. नानुवंशे न पालाशे शयनं वा कदाचन॥ (कूर्मपुराण, उ० १९। २९)

७. 'नार्वाक्शिराः शयीत' (सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। ९८)

८. 'न चोच्छिष्टोऽपि संविशेत्' (महाभारत, अनु० १०४। ६७)

९. 'स्वप्तव्यं नैव नग्नेन' (महाभारत, अनु० १०४। ६७)

'न च नग्नः शयीतेह' (मनुस्मृति ४। ७५)

'न नग्नः' (विष्णुस्मृति ७०)। न कदाचिद्रात्रौ नग्नः स्वपेत्। (गौतमधर्मसूत्र १। ९। ६०)

'नग्नशयनं सर्वदा परिवर्जयेत्' (नारदपुराण, पू० २६। ३४)

न स्नायाद्र स्वपेन्नग्नो न चैवोपस्पृशेद् बुधः। (विष्णुपुराण ३। १२। १९)

न च स्नायीत वै नग्नो न शयीत कदाचन। (वामनपुराण १४। ४७)

नग्नस्नानं न कुर्वीत न शयीत व्रजेत वा। (स्कन्दपुराण, मा० कौ० ४१। १५७)

१०. सूने घरमें अकेला नहीं सोना चाहिये। देवमन्दिर और श्मशानमें भी नहीं सोना चाहिये।

११. अँधेरेमें नहीं सोना चाहिये।

१२. भीगे पैर नहीं सोना चाहिये। सूखे पैर सोनेसे लक्ष्मी प्राप्त होती है।

१३. निद्राके समय मुखसे ताम्बूल, शय्यासे स्त्री, ललाटसे तिलक और सिरसे पुष्पका त्याग कर देना चाहिये।

१४. रात्रिमें पगड़ी बाँधकर नहीं सोना चाहिये।

---

१०. 'नैकः सुप्याच्छून्यगेहे' (मनुस्मृति ४। ५७)
'नैकः सुप्याच्छून्यगृहे' (कूर्मपुराण, उ० १६। ६७)
'नैव स्वप्याच्छून्यगेहे' (पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ६७)
'नैकः सुप्यात्क्वचिच्छून्ये' (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ६२)
न श्मशानशून्यालयदेवतायतनेषु। (विष्णुस्मृति ७०)
'न देवायतने स्वपेत्' (कूर्मपुराण, उ० १६। ८७; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ८९)

११. नान्धकारे च शयनं भोजनं नैव कारयेत्॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। १२४)

१२. 'नार्द्रपादस्तु संविशेत्'
(मनुस्मृति ४। ७६; अत्रिस्मृति ५। २५; महाभारत, अनु० १०४। ६१)
'नार्द्रपादः स्वप्यात्' (विष्णुस्मृति ७०)
शयनंचार्द्रपादेन ··········· नैव कारयेत्॥(पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। १२४)
'नार्द्रपादः स्वपेन्निशि' (महाभारत, शान्ति० १९३। ७)
'संविशेन्नार्द्रचरणः' (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ७३)
अनार्द्रपादः शयने दीर्घां श्रियमवाप्नुयात्॥ (अत्रिस्मृति ५। २६)

१३. निद्राकाले ताम्बूलं मुखात् स्त्रियं शयनाद् भालात्तिलकं शिरसः पुष्पं च त्यजेत्। (धर्मसिंधु ३ पू०, क्षुद्रकाल)
निद्रासमयमासाद्य ताम्बूलं वदनात्त्यजेत्। पर्यङ्कात्प्रमदां भालात्पुण्ड्रं पुष्पाणि मस्तकात्॥ (भगवंतभास्कर, आचारमयूख)

१४. अवगुण्ठ्य शिरो रात्रौ न शयीत कदाचन॥
(विष्णुधर्मोत्तर० २। ८९। २४)

१५. दिनमें कभी नहीं सोना चाहिये।* रातके पहले और पिछले भागमें भी नींद नहीं लेनी चाहिये। रातके प्रथम और चतुर्थ पहरको छोड़कर दूसरे और तीसरे पहरमें सोना उत्तम होता है।

१६. दिनमें और दोनों सन्ध्याओंके समय जो नींद लेता है, वह रोगी और दरिद्र होता है।

१७. जिसके सोते-सोते सूर्योदय अथवा सूर्यास्त हो जाय, वह महान् पापका भागी होता है और बिना प्रायश्चित्त (कृच्छ्रव्रत)-के शुद्ध नहीं होता।

---

१५. न दिवा प्रस्वपेज्जातु न पूर्वापररात्रिषु॥ (महाभारत, अनु० २४३। ६)
'दिवास्वापं च वर्जयेत्' (नारदपुराण, पू० २६। २७)
तस्मान्न जागृयाद्रात्रौ दिवास्वप्नं च वर्जयेत्। (सुश्रुतसंहिता, शारीर० ४। ३९)
हित्वा प्राक्पश्चिमौ यामौ निशि स्वापो वरो मतः।(शुक्रनीति ३। ११५)

१६. दिवसे सन्ध्ययोर्निद्रां स्त्रीसम्भोगं करोति यः। सप्तजन्म भवेद्रोगी दरिद्रः सप्तजन्मसु॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण० ७५। ८०)

१७. सूर्येण ह्यभिनिर्मुक्तः शयानोऽभ्युदितश्च यः। प्रायश्चित्तमकुर्वाणो युक्तः स्यान्महतैनसा॥ (भविष्यपुराण, ब्राह्म० ४। ९०)

---

* सर्वर्तुषु दिवास्वापः प्रतिषिद्धोऽन्यत्र ग्रीष्मात्। प्रतिषिद्धेष्वपि तु बालवृद्धस्त्रीकर्शितक्षतक्षीणमद्यनित्ययानवाहनाध्वकर्मपरिश्रान्तानामभुक्तवतां मेदःस्वेदकफरसरक्तक्षीणानामजीर्णिनां च मुहूर्तं दिवास्वपनमप्रतिषिद्धम्। रात्रावपि जागरितवतां जागरितकालादर्धमिष्यते दिवास्वपनम्।
(सुश्रुतसंहिता, शारीर० ४। ३८)

'सभी ऋतुओंमें दिनमें सोना निषिद्ध है; परन्तु ग्रीष्म-ऋतुमें दिनमें सोना निषिद्ध नहीं है। इसके सिवाय बालक, वृद्ध, स्त्री-सेवनसे कृश, क्षतरोगी, क्षीण, मद्यप, यान-वाहन-यात्रा अथवा परिश्रम करनेसे थके हुए, भोजन न करनेवाले, मेद-स्वेद-कफ-रस-रक्तसे क्षीण हुए और अजीर्ण रोगी मुहूर्तभर (अड़तालीस मिनट)-के लिये दिनमें सो सकते हैं। जिन्होंने रातमें जागरण किया है, वे भी रात्रि-जागरणके आधे समयतक दिनमें सो सकते हैं।'

१८.जो मनुष्य रुग्णावस्थाको छोड़कर सूर्योदय अथवा सूर्यास्तके समय सोता है, वह प्रायश्चित्तका भागी होता है।

१९. दिनमें और सूर्योदयके बाद सोना आयुको क्षीण करनेवाला है। प्रातःकाल और रात्रिके आरम्भमें भी नहीं सोना चाहिये।

२०. स्वस्थ मनुष्यको आयुकी रक्षाके लिये ब्राह्ममुहूर्तमें उठना चाहिये।

२१. किसी सोये हुए मनुष्यको नहीं जगाना चाहिये।

२२. विद्यार्थी, नौकर, पथिक, भूखसे पीड़ित, भयभीत, भण्डारी और द्वारपाल—ये सोये हुए हों तो इन्हें जगा देना चाहिये।

---

१८. सूर्येणाभ्युदितो यश्च त्यक्तः सूर्येण वा स्वपन्। अन्यत्रातुरभावात्तु प्रायश्चित्ती भवेन्नरः॥ (विष्णुपुराण ३। ११। १०२)

१९. अनायुष्यं दिवा स्वप्नं तथाभ्युदितशायिता। प्रगे निशामाशु तथा नैवोच्छिष्टाः स्वपन्ति वै॥ (महाभारत, अनु० १०४। १३८)

२०. ब्राह्मे मुहूर्ते उत्तिष्ठेत्स्वस्थो रक्षार्थमायुषः।(अष्टांगहृदय, सूत्र० २। १)

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय तत्सर्वं सम्यगाचरेत्। (देवीभागवत ११। २। २)

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय चिन्तयेद्धितमात्मनः। (व्यासस्मृति ३। ७१)

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय धर्मार्थावनुचिन्तयेत्॥ (लघुव्याससंहिता १। १)

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्। (मनुस्मृति ४। ९२)

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय मनसा मतिमान्नृप। प्रबुद्धश्चिन्तयेद्धर्ममर्थं चाप्यविरोधिनम्॥ (विष्णुपुराण ३। ११। ५)

२१. 'सुप्तं न प्रबोधयेत्' (विष्णुस्मृति ७१)

'न शयानं प्रबोधयेत्' (याज्ञवल्क्यस्मृति १। १३८; स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ६२; गरुड़पुराण, आचार० ९६। ४१)

'सुप्तं न बोधयेत्' (कूर्मपुराण, उ० १६। ६६; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ६६; नारदपुराण, पू० २६। ३५)

२२. विद्यार्थी सेवकः पान्थः क्षुधाऽऽर्तो भयकातरः। भाण्डारी प्रतिहारी च सप्त सुप्तान् प्रबोधयेत्॥ (चाणक्यनीति० ९। ६)

मल-मूत्रका त्याग

१. दिनमें उत्तरकी ओर तथा रातमें दक्षिणकी ओर मुख करके मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। ऐसा करनेसे आयु क्षीण नहीं होती।

२. निवास-स्थानसे दूर दक्षिण या दक्षिण-पश्चिम (नैर्ऋत्य) दिशामें जाकर मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये।

३. सिरको वस्त्रसे ढककर मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये।

---

१. उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्यादुदङ्मुखः। दक्षिणाभिमुखो रात्रौ तथा ह्यायुर्न रिष्यते॥ (महाभारत, अनु० १०४। ७६)..........................ह्येवमायुर्न रिष्यते॥ (स्कन्दपुराण, मा० कौ० ४१। १३०)

उदङ्मुखो दिवा मूत्रं विपरीतमुखो निशि। कुर्वीतानापदि प्राज्ञो मूत्रोत्सर्गं च पार्थिव॥ (विष्णुपुराण ३। ११। १४)

दक्षिणाभिमुखं रात्रौ दिवा स्थित्वा ह्युदङ्मुखः॥ (नारदपुराण, पू० ६६। ५)

उदङ्मुखो दिवा कुर्याद्रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः। (देवीभागवत ११। २। १६)

दिवासन्ध्यासु कर्णस्थो ब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः। कुर्यान्मूत्रपुरीषे तु रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः॥ (याज्ञवल्क्यस्मृति १। १६; वाधूलस्मृति ८)

उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्यादुदङ्मुखः। रात्रौ कुर्याद्दक्षिणास्य एवं ह्यायुर्न हीयते॥ (वसिष्ठस्मृति ६। १०)

मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं दिवा कुर्यादुदङ्मुखः। दक्षिणाभिमुखो रात्रौ सन्ध्ययोश्च तथा दिवा॥ (मनुस्मृति ४। ५०)

अह्नि कुर्याच्छकृन्मूत्रं रात्रौ चेद् दक्षिणामुखः॥ (कूर्मपुराण, उ० १३। ३४; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५२। ३६)

२. आराच्चाऽऽवसथान्मूत्रपुरीषे कुर्याद्दक्षिणां दिशं दक्षिणापरां वा॥ (आपस्तम्बधर्मसूत्र १। ११। ३१। २)

३. शिरः प्रावृत्य वस्त्रेण ततः शौचं समाचरेत्॥ (पद्मपुराण, क्रियायोग० ११। ९)

४. गाँवसे नैर्ऋत्यकोणमें जाकर इस मन्त्रका उच्चारण करे—

गच्छन्तु ऋषयो देवाः पिशाचा ये च गुह्यकाः।
पितृभूतगणाः सर्वे करिष्ये मलमोचनम्॥

'यहाँ जो ऋषि, देवता, पिशाच, गुह्यक, पितर तथा भूतगण हों, वे चले जायँ, मैं यहाँ मल-त्याग करूँगा।'

—ऐसा कहकर तीन बार ताली बजाये और सिरको वस्त्रसे ढककर मलत्याग करे।

५. सूखी लकड़ियाँ, मिट्टीके ढेले, पत्ते, तृण (घास) आदिसे भूमिको ढककर, अपने नाक-मुँह तथा सिरको ढककर और मौन होकर मल-मूत्रको त्याग करना चाहिये।

प्रावृत्य च शिरः कुर्याद् विण्मूत्रस्य विसर्जनम्॥ (कूर्मपुराण, उ० १३। ३५)

'न चानावृतमस्तकः' (शाण्डिल्यस्मृति २। १३)

अप्रावृत्य शिरो यस्तु विण्मूत्रं सृजति द्विजः। तच्छिरः शतधा भूयादिति वेदा शपन्ति तम्॥ (वाधूलस्मृति १०)

'शिरस्तु प्रावृत्य मूत्रपुरीषे कुर्यात्' (आपस्तम्बधर्मसूत्र १। ११। ३०। १५)

४. रक्षःकोणे ततो ग्रामाद्गत्वा मन्त्रमुदीरयेत्। गच्छन्तु ऋषयो देवाः पिशाचा ये च गुह्यकाः॥ पितृभूतगणाः सर्वे करिष्ये मलमोचनम्। इति तालत्रयं दत्त्वा शिरः प्रावृत्य वाससा॥ (नारदपुराण, पूर्व० ६६। ३-४)

५. तिरस्कृत्योच्चरेत्काष्ठलोष्ठपत्रतृणादिना। नियम्य प्रयतो वाचं संवीताङ्गोऽवगुण्ठितः॥ (मनुस्मृति ४। ४९)

'परिवेष्टितशिरा भूमिमयज्ञियैस्तृणैरन्तर्धाय मूत्रपुरीषे कुर्यात्' (वसिष्ठस्मृति १२। १०)

अन्तर्धाय महीं काष्ठैः पत्रैर्लोष्ठतृणेन वा। प्रावृत्य च शिरः कुर्याद् विण्मूत्रस्य विसर्जनम्॥ (कूर्मपुराण, उ० १३। ३५; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५२। ३६-३७)

शिरः प्रावृत्य वस्त्रेण ह्यन्तर्द्धाय तृणैर्महीम्। वहन्काष्ठं करेणैकं तावन्मौनी भवेद् द्विजः॥ (नारदपुराण, पूर्व० २७। ४)

तृणैराच्छाद्य वसुधां शिरः प्रावृत्य वाससा। (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ५। ३८)

६. जूते या खड़ाऊँ पहनकर, छाता लेकर और अन्तरिक्षमें (भूमि-आकाशके मध्यमें) मल-मूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये।

७. मल-त्यागके समय जोर-जोरसे साँस नहीं लेनी चाहिये।

८. खड़े होकर अथवा चलते-चलते मल-मूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये।

९. किसी जलाशयसे बारह अथवा सोलह हाथ दूरीपर मूत्र-त्याग और उससे चार गुणा अधिक दूरीपर मल-त्याग करना चाहिये।

अन्तर्हितायां भूमौ तु अन्तर्हितशिरास्तथा॥ असमाप्ते तथा शौचे न वाचं किञ्चिदीरयेत्। (महाभारत, अनु० ९६)

तृणैरास्तीर्य वसुधां वस्त्रप्रावृतमस्तकः। तिष्ठेन्नातिचिरं तत्र नैव किञ्चिदुदीरयेत्॥ (विष्णुपुराण ३। ११। १५)

'विण्मूत्रे विसृजेन्मौनी' (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ५। ३९)

अन्तर्धाय तृणैर्भूमिं शिरः प्रावृत्य वाससा। वाचं नियम्य यत्नेन.................. (देवीभागवत ११। २। ९)

घ्राणास्ये वाससाच्छाद्य मलमूत्रं त्यजेद् बुधः॥ (वाधूलस्मृति ९)

शिरस्तु प्रावृत्य मूत्रपुरीषे कुर्यात् भूम्यां किञ्चिदन्तर्धाय॥ (आपस्तम्बधर्मसूत्र १। ११। ३०। १५)

६. न सोपानत्पादुको वा छत्री वा नान्तरिक्षके॥ (कूर्मपुराण, उ० १३। ४०; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५२। ४२)

न सोपानन्मूत्रपुरीषं कुर्यात्॥ (आपस्तम्बधर्मसूत्र १। ११। ३०। १८)

७. वाचं नियम्य यत्नेन ष्ठीवनश्वासवर्जितः॥ (देवीभागवत ११। २। ९)

मौनी भूत्वा च निःश्वासं यथा गन्धो न संचरेत्। (ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्म० २६। २६)

८. न गच्छन्न च तिष्ठन् वै विण्मूत्रोत्सर्गमात्मवान्। (मार्कण्डेयपुराण ३४। २९; ब्रह्मपुराण २२१। २९)

मूत्रं नोत्तिष्ठता कार्यं न भस्मनि न गोव्रजे। (महाभारत, अनु० १०४। ६१)

तिष्ठन्न मूत्रयेत्तद्वत्पथिष्वपि न मूत्रयेत्। (विष्णुपुराण ३। १२। २८)

'न गच्छन्नापि च स्थितः' (मनुस्मृति ४। ४७)

९, हस्तान्द्वादश संत्यज्य मूत्रं कुर्याज्जलाशयात्। अवकाशे षोडश वा पुरीषे तु चतुर्गुणम्॥ (धर्मसिंधु ३ पू० आह्निक०)

१०. वृक्षकी छायामें मल-मूत्रका त्याग न करे। परन्तु अपनी छाया भूमिपर पड़ रही हो तो उसमें मूत्र-त्याग कर सकते हैं।

११. मल-मूत्रका त्याग करते समय ग्रहों, नक्षत्रों, चारों दिशाओं, सूर्य, चन्द्र और आकाशकी ओर नहीं देखना चाहिये। अपने मल-मूत्रकी ओर भी नहीं देखना चाहिये।

१२. पेड़की छायामें, कुएँके पास, नदी या जलाशयमें अथवा उनके तटपर, गौशालामें, जोते हुए खेतमें, हरी-भरी घासमें, पुराने (टूटे-फूटे) देवालयमें, चौराहेमें, श्मशानमें, गोबरपर, जलके भीतर, मार्गपर, वृक्षकी जड़के पास, लोगोंके घरोंके आसपास, खम्भेके पास, पुलपर, खेल-

---

१०. छायायां मूत्रपुरीषयोः कर्म वर्जयेत्। स्वां तु छायामवमेहेत्।

(आपस्तम्बधर्मसूत्र १। ११। ३०। १६-१७)

११. वाय्वग्नी विप्रमादित्यमापः पश्यंस्तथैव गाः। न कदाचन कुर्वीत विण्मूत्रस्य विसर्जनम्॥ (देवीभागवत ११। २। १५)

न ज्योतींषि निरीक्षन् वा न सन्ध्याभिमुखोऽपि वा। प्रत्यादित्यं प्रत्यनलं प्रतिसोमं तथैव च॥ (कूर्मपुराण, उ० १३। ४२; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५२। ४३-४४)

नालोकयेद्दिशो भागाञ्ज्योतिश्चक्रं नभो मलम्॥

(स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ५। ४०)

'न पश्येदात्मनः शकृत्' (महाभारत, शान्ति० १९३। २४)

१२. न कृष्टे सस्यमध्ये वा गोव्रजे जनसंसदि। न वर्त्मनि न नद्यादितीर्थेषु पुरुषर्षभ॥ नाप्सु नैवाम्भसस्तीरे श्मशाने न समाचरेत्। उत्सर्गं वै पुरीषस्य मूत्रस्य च विसर्जनम्॥ (विष्णुपुराण ३। ११। १२-१३)

न नद्यां मेहनं कुर्यान्न श्मशाने न भस्मनि। न गोमये न कृष्टे च नैवालूने न शाड्वले॥ (स्कन्दपुराण, मा० कौ० ४१। १३३)

न फालकृष्टे न जले न चितायां न पर्वते। जीर्णदेवालये कुर्यान्न वल्मीके न शाद्वले॥ न स सत्त्वेषु न गर्तेषु न गच्छन्न पथि स्थितः।

(देवीभागवत ११। २। १०-११)

कूदके मैदानमें, मंच (मचान)-के नीचे, भस्म (राख)-पर, देवमन्दिरमें या उसके पास, अग्निमें या उसके निकट, पर्वतकी चोटीपर, बाँबीपर, गड्ढेमें, भूसीमें, कपाल (ठीकरे या खप्पर)-में, बिलमें, अंगार (कोयले)-पर और लकड़ीपर मल-मूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये।

न तु मेहेन्नदीच्छायाभस्मगोष्ठाम्बुवर्त्मसु। (गरुड़पुराण, आचार० ९६। ३८)

न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोव्रजे॥ न फालकृष्टे न जले न चित्यां न च पर्वते। न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन॥ न ससत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन्नापि च स्थितः। न नदीतीरमासाद्य न च पर्वतमस्तके॥

(मनुस्मृति ४। ४५—४७)

छायाकूपनदीगोष्ठचैत्याम्भः पथि भस्मसु। अग्नौ चैव श्मशाने च विण्मूत्रं न समाचरेत्॥ न गोमये न कृष्टे वा महावृक्षे न शाड्वले। न तिष्ठन् न निर्वासा न च पर्वतमस्तके॥ न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन। न ससत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन् वा समाचरेत्॥ तुषाङ्गारकपालेषु राजमार्गे तथैव च। न क्षेत्रे न विले वापि न तीर्थे न चतुष्पथे॥ नोद्यानोदसमीपे वा नोषरे न पराशुचौ।

(कूर्मपुराण, उ० १३। ३६—४०; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५२। ३७—४१)

पथि गोष्ठे नदीतीरे तडागगृहसन्निधौ। तथा वृक्षस्य च्छायायां कांतारे वह्निसन्निधौ॥ देवालये तथोद्याने कृष्टभूमौ चतुष्पथे। ब्राह्मणानां समीपे च तथा गोगुरुयोषिताम्॥ तुषांगारकपालेषु जलमध्ये तथैव च। एवमादिषु देशेषु मलमूत्रं न कारयेत्॥

(नारदपुराण, पूर्व० २७। ५—७)

जलं जलसमीपं च सरन्ध्रं प्राणिसन्निधिम्। देवालयसमीपं च वृक्षमूलं च वर्त्म च। हलोत्कर्षस्थलं चैव शस्यक्षेत्रं च गोष्ठकम्। नदीकन्दरगर्भं च पुष्पोद्यानं च पङ्किलम्॥ ग्रामाद्यभ्यन्तरं चैव नृणां गृहसमीपकम्। शङ्कुसेतुं शरवनं श्मशानं वह्निसन्निधिम्॥ क्रीडास्थलं महारण्यं मञ्चकाधःस्थलं तथा। वृक्षच्छायानुतं स्थानमन्तःप्राण्यवपर्णकम्॥ दूर्वास्थानं कुशस्थानं वल्मीकस्थानमेव च। वृक्षारोपण- भूमिं च कार्यार्थं च परिष्कृतम्॥ एतत् सर्वं परित्यज्य सूर्यतापविवर्जितम्। कृत्वा गर्त्तं पुरीषं च मूत्रं च परिवर्जयेत्॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्म० २६। १९—२४)

१३. अग्नि, सूर्य, गौ, ब्राह्मण, गुरु, स्त्री, चन्द्रमा, आती हुई वायु, जल और देवालय—इनकी ओर मुख करके (इनके सम्मुख) मल-मूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये।

१४. जो सूर्य, अग्नि, गौ तथा ब्राह्मणोंकी ओर मुँह करके पेशाब करते हैं और जो बीच रास्तेमें पेशाब करते हैं, उनकी बुद्धि तथा आयु नष्ट हो जाती है।

१५. जो स्त्री-पुरुष सूर्य या वायुकी ओर मुँह करके पेशाब करते हैं, उनकी गर्भमें आयी हुई सन्तान गिर जाती है।

---

१३. न चैवाभिमुखे स्त्रीणां गुरुब्राह्मणयोर्गवाम्। न देवदेवालययोरपामपि कदाचन॥ (पद्मपुराण, स्वर्ग० ५२। ४२-४३; कूर्मपुराण, उ० १३। ४१)

'नो विप्रगोवह्न्यनिलसम्मुखः' (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ५। ३९)

वाय्वग्निविप्रमादित्यमपः पश्यंस्तथैव गाः। न कदाचन कुर्वीत विण्मूत्रस्य विसर्जनम्॥ (मनुस्मृति ४। ४८)

'प्रत्यादित्यं न मेहेत' (महाभारत, शान्ति० १९३। २४)

सोमार्काग्न्यम्बुवायूनां पूज्यानां च न सम्मुखम्। कुर्यान्निष्ठीवविण्मूत्रसमुत्सर्गं च पण्डितः॥ (विष्णुपुराण ३। १२। २७)

न प्रत्यग्न्यर्कगोसोमसन्ध्याम्बुस्त्रीद्विजन्मनाम्॥ (गरुडपुराण, आचार० ९६। ३८)

'न वाय्वग्निसलिलसोमार्कद्विजगुरुप्रतिमुखं निष्ठीविका वर्चोमूत्राण्युत्सृजेत्' (चरकसंहिता, सूत्र० ८। २१)

'न वाय्वग्निसलिलसोमार्कगोगुरुप्रतिमुखम्' (सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। ९३)

न वाय्वग्निविप्रादित्यापो देवता गाश्च प्रति पश्यन्वा मूत्रपुरीषामेध्यान्व्युदस्येत्॥ (गौतमधर्मसूत्र १। ९। १३)

१४. प्रत्यग्निं प्रतिसूर्यं च प्रतिसोमोदकद्विजान्। प्रतिगां प्रतिवातं च प्रज्ञा नश्यति मेहतः॥ (मनुस्मृति ४। ५२)

प्रत्यग्निं प्रतिसूर्यं च प्रति गां व्रतिनं प्रति। प्रति सोमोदकं सन्ध्यां प्रज्ञा नश्यति मेहतः॥ (स्कन्दपुराण, मा० कौ० ४१। १३१)

प्रत्यादित्यं प्रत्यनलं प्रति गां च प्रति द्विजान्। ये मेहन्ति च पन्थानं ते भवन्ति गतायुषः॥ (महाभारत, अनु० १०४। ७५)

१५. वर्षाणि षडशीतिं तु दुर्वृत्ताः कुलपांसनाः। स्त्रियः सर्वाश्च दुर्वृत्ताः प्रतिमेहन्ति या रविम्॥ अनिलद्वेषिणः शक्र गर्भस्तथा च्यवते प्रजा। (महाभारत, अनु० १२५। ६४-६५)

शौचाचार (शुद्धि)

१. शौचके बाद लिंगमें एक बार, गुदाद्वारमें तीन बार, बायें हाथमें दस बार, फिर दोनों हाथोंमें सात बार तथा दोनों पैरोंमें तीन बार पृथक् मिट्टी लगानी और धोनी चाहिये।

२. शौचका यह विधान गृहस्थोंके लिये है। ब्रह्मचारियोंके लिये इससे दुगुने, वानप्रस्थियोंके लिये तिगुने और संन्यासियोंके लिये चौगुने शौचका विधान है।

३. दिनमें जो शौचका विधान है, उससे आधा रात्रिमें करना चाहिये। रोगीके लिये उससे आधे और यात्रामें उससे भी

---

१. एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथैकत्र करे दश। उभयोः सप्त दातव्या मृदः शुद्धिमभीप्सता॥ (मनुस्मृति ५। १३६)

एका लिङ्गे गुदे तिस्रो दश वामकरे तथा। उभयोः सप्त दातव्या मृदस्तिस्रस्तु पादयोः॥ (दक्षस्मृति ५)

एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथैकत्र करे दश। उभयो सप्त दातव्या मृदस्तिस्रस्तु पादयोः॥ (विष्णुस्मृति ६०)

एका लिङ्गे गुदे तिस्रो दश वामकरे नृप। हस्तद्वये च सप्त स्युर्मृदश्शौचोपपादिका॥ (विष्णुपुराण ३। ११। १८)

एका लिङ्गे गुदे तिस्रो दश वामकरे मृदः। करयोः सप्त वै दद्यात् त्रित्रिवारं च पादयोः॥ (नारदपुराण, पूर्व ६६। ६)

२. एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम्। त्रिगुणं स्याद्वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम्॥ (मनुस्मृति ५। १३७)

एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम्॥ त्रिगुणन्तु वनस्थानां यतीनाञ्च चतुर्गुणम्। (दक्षस्मृति ८-९)..............यतीनां तु चतुर्गुणम्॥ (वाधूलस्मृति १५)

एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम्। त्रिगुणञ्च वनस्थानां यतीनाञ्च चतुर्गुणम्॥ (विष्णुस्मृति ६०)

एतच्छौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम्॥ त्रिगुणं तु वनस्थानां यतीनां तच्चतुर्गुणम्॥ (नारदपुराण, पूर्व० २७। १४-१५)

३. दिवोदितस्य शौचस्य रात्रावर्द्धं विधीयते। तदर्द्धमातुरस्याहुस्त्वरायामर्द्धमध्वनि॥ (दक्षस्मृति ५। १२)

आधे शौचका नियम है।

४. नाभिसे नीचे बायें हाथसे और नाभिसे ऊपर दाहिने हाथसे काम लेना चाहिये। अतः शौचके बाद बायें हाथसे शुद्धि करनी चाहिये।

५. जलके भीतरकी, देवालयकी, बाँबीकी, चूहेद्वारा इकट्ठी की गयी, शौचसे बची हुई, रास्तेकी, श्मशान-भूमिकी, ऊसर भूमिकी, घरकी दीवारसे ली हुई, लीपने-पोतनेके काममें लायी हुई, कुश और दूर्वाकी जड़से निकाली हुई, चौराहेकी, गौशालाकी, चींटी आदि छोटे-छोटे जीवोंद्वारा निकाली हुई और हलसे उखाड़ी हुई—इन सब प्रकारकी मिट्टियोंका शौचकर्ममें उपयोग नहीं करना चाहिये।

यद्दिवा विहितं शौचं तदर्धं निशि कीर्तितम्। तदर्धमातुरे प्रोक्तमातुरस्यार्धमध्वनि॥ (वाधूलस्मृति १६)

४. वामहस्तेन शौचं तु कुर्याद्वै दक्षिणेन न। नाभेरधो वामहस्तो नाभेरूर्ध्वं तु दक्षिणः॥ (देवीभागवत ११। २। २९)

५. आहरेन्मृत्तिकां विप्रः कूलात्ससिकतां तथा। अन्तर्जले देवगृहे वल्मीके मूषकस्थले। कृतशौचावशिष्टा च न ग्राह्याः पञ्च मृत्तिकाः॥ (वसिष्ठस्मृति ६। १५)

वल्मीकमूषिकोत्खातां मृदमन्तर्जलां तथा। शौचावशिष्टां गेहाच्च नदद्याल्लेपसम्भवाम्॥ अन्तःप्राण्यवपन्नां च हलोत्खातां विशेषतः। कुशमूलोत्थितां चैव दूर्वामूलोत्थितान्तथा॥ अश्वत्थमूलान्नीतां च तथैवशयनोत्थिताम्। चतुष्पथाच्च गोष्ठानां गौष्पदानां तथैव च। शस्यस्थलानां क्षेत्राणामुद्यानानां मृदं त्यजेत्॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्म० २६। ३७—४०)

वल्मीकमूषिकोद्भूतां मृदं नान्तर्जलां तथा। शौचावशिष्टां गेहाच्च नादद्याल्लेपसम्भवाम्॥ अणुप्राण्युपपन्नां च हलोत्खातां च पार्थिव। परित्यजेन्मृदो ह्येतास्सकलाश्शौचकर्मणि॥ (विष्णुपुराण ३। ११। १६-१७)

यश्चान्तर्जलवल्मीकमूषिकोषरवर्त्मसु॥ श्मशाने शौचशेषे च न ग्राह्याः सप्त मृत्तिकाः। (नारदपुराण, पूर्व० १४। ६३-६४)

अन्तर्जलाद्देवकुलाद्वल्मीकान्मूषकस्थलात्॥ अपविद्धापशौचाश्च वर्जयेत्पञ्च मृत्तिकाः। (स्कन्दपुराण, मा० कौ० ४१। १३४-१३५)

६. शौचकर्ममें प्रत्येक बार ताजे आँवलेके बराबर मिट्टी लेनी चाहिये, इससे कम कभी नहीं।

७. मल-त्यागके बाद बारह बार और मूत्र-त्यागके बाद चार बार कुल्ला करना चाहिये। भोजनके बाद सोलह बार कुल्ला करना चाहिये।

८. सामने देवताओंका और दाहिने पितरोंका निवास रहता है; अतः मुख नीचे करके कुल्लेको अपनी बायीं ओर ही फेंकना चाहिये।

९. जिसका अन्तःकरण शुद्ध नहीं है, वह दुष्टात्मा मनुष्य हजार बार मिट्टी लगानेपर और सौ घड़े जलसे धोनेपर भी शुद्ध नहीं होता।

१०. यदि सम्पूर्ण नदियोंके जलसे तथा पर्वतके समान मिट्टीसे कोई मरणपर्यन्त बाह्यशुद्धि करे तो भी जिसका भाव शुद्ध नहीं है, वह शुद्ध नहीं हो सकता।

अन्तर्जलाद्देवगृहाद्वल्मीकान्मूषकोत्करात्॥ कृतशौचावशिष्टाच्च न ग्राह्याः सप्तमृत्तिकाः। (देवीभागवत ११। २। १९-२०)

६. आर्द्रामलकमाना तु मृत्तिका शौचकर्मणि। प्रत्येकं तु सदा ग्राह्यो नाऽतो न्यूना कदाचन॥ (देवीभागवत ११। २। २५)

आर्द्रधात्रीफलोन्माना मृदः शौचे प्रकीर्तिताः॥ (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ५। ४७)

७. अथ मूत्रे चत्वारो गण्डूषाः पुरीषे द्वादशाष्टौ वा भोजनान्ते षोडश कार्याः। (धर्मसिन्धु ३ पू० आह्निक०)

पुरीषोत्सर्जने कुर्याद् गण्डूषान् द्वादशैव तु॥ चतुरो मूत्रविक्षेपे नाऽतो न्यूनान् कदाचन। (देवीभागवत ११। २। ३३-३४)

८. पूर्वतो सर्वदेवाश्च दक्षिणे पितरस्तथा। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वामे गण्डूषमुत्सृजेत्॥ (व्याघ्रपादस्मृति २००)

अधोमुखं नरः कृत्वा त्यजेत् तं वामतः शनैः॥ (देवीभागवत ११। २। ३४)

९. मृत्तिकानां सहस्रेण चोदकुम्भशतेन च। न शुद्ध्यन्ति दुरात्मानो येषां भावो न निर्मलः॥ (दक्षस्मृति ५। ११)

१०. अपि सर्वनदीतोयैर्मृत्कूटैश्चाप्यगोपमैः॥ आपातमाचरेच्छौचं भावदुष्टो न शुद्धिभाक्। (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ५। ४६-४७)

दन्तधावन

१. दूधवाले तथा काँटेवाले वृक्ष दातुनके लिये पवित्र माने गये हैं।

२. अपामार्ग, बेल, आक, नीम, खैर, गूलर, करंज, अर्जुन, आम, साल, महुआ, कदम्ब, बेर, कनेर, बबूल आदि वृक्षोंकी दातुन करनी चाहिये। परन्तु पलाश, लिसोड़ा, कपास, धव, कुश, काश, कचनार, तेंदू, शमी, रीठा, बहेड़ा, सहिजन, सेमल आदि वृक्षोंकी दातुन नहीं करनी चाहिये।

---

१. सर्वे कण्टकिनः पुण्याः क्षीरिणश्च यशस्विनः। (लघुहारीतस्मृति ४। ९)

सर्वे कण्टकिनः पुण्याः क्षीरिणस्तु यशस्विनः। (नरसिंहपुराण ५८। ४९)

२. क्षीरवृक्षसमुद्भूतं मालतीसम्भवं शुभम्। अपामार्गं च बिल्वं च करवीरं विशेषतः॥ (कूर्मपुराण, उ० १८। १९; लघुव्याससंहिता १। १७-१८)

नैव श्लेष्मातकारिष्टविभीतकधववधन्वनजम्। न च बन्धूकनिर्गुण्डी-शिग्रुतिल्वतिन्दुकजम्। न च कोविदार शमीपीलुपिप्पलेङ्गुदगुग्गुलुजम्। न पारिभद्रकाम्लिकामोचकशाल्मलीशणजम्। (विष्णुस्मृति ६१)

करञ्जं खादिरं वापि कदम्बं कुरवं तथा। सप्तपर्णपृश्निपर्णीजम्बुनिम्बं तथैव च। अपामार्गश्च बिल्वश्चार्कश्चोडुम्बरमेव च॥ एते प्रशस्ताः कथिता दन्तधावनकर्मणि। (लघुहारीतस्मृति ४। ६—८)

खदिरश्च करञ्जश्च कदम्बश्च वटस्तथा॥ वेणुश्च तिन्तिडीप्लक्षा वाम्रनिम्बे तथैव च। अपामार्गश्च बिल्वश्च अर्कश्चौदुम्बरस्तथा॥ एते प्रशस्ताः कथिता दन्तधावनकर्मणि। (विश्वामित्रस्मृति १। ६१—६३)

खदिरं च कदम्बं च करञ्जं च वटं तथा। अपामार्गं च बिल्वं च अर्कश्चोदुम्बरस्तथा॥ एते प्रशस्ताः कथिता दन्तधावनकर्मणि।

(नरसिंहपुराण ५८। ४७-४८)

करञ्जोदुम्बरौ चूतः कदम्बो लोध्रचम्पकौ। बदरीति द्रुमाश्चेति प्रोक्ता दन्तप्रधावने॥ (देवीभागवत ११। २। ३६)

३. पलाशकी लकड़ीका दातुन कभी नहीं करना चाहिये।

४. कषाय, तिक्त अथवा कटु रसवाली दातुन आरोग्यकारक होती है।

५. महुआकी दातुनसे पुत्रलाभ होता है। आककी दातुनसे नेत्रोंको सुख मिलता है। बेरकी दातुनसे प्रवचनकी शक्ति प्राप्त होती है। बृहती (भटकटैया)-की दातुन करनेसे मनुष्य दुष्टोंपर विजय पाता है। बेल और खैरकी दातुनसे ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। कदम्बसे रोगोंका नाश होता है। अतिमुक्तक (कुन्दका एक भेद)-से धनका लाभ होता है। आटरूषक (अड़ूसा)-की दातुनसे सर्वत्र गौरवकी प्राप्ति होती है। जाती (चमेली)-की दातुनसे जातिमें प्रधानता होती है। पीपल यश देता है। शिरीषकी दातुन करनेसे सब प्रकारकी सम्पत्ति प्राप्त होती है।

---

३. अथ पालाशं दन्तधावनं नाद्यात्। (विष्णुस्मृति ६१)

पालाशमासनं पादुके दन्तधावनमिति वर्जयेत्।

(बौधायनस्मृति २। ३। ३०, गौतमस्मृति ९, वसिष्ठस्मृति १२। ३२)

४. 'कषायं तिक्तकण्टकम्' (वृद्धहारीतस्मृति ४। २४)

'कषायं तिक्तं कटुकञ्च' (विष्णुस्मृति ६१)

कटुतिक्तकषायाश्च धनारोग्यसुखप्रदा। (गरुड़पुराण, आचार० २०५। ५०)

'कषायकटुतिक्तकम्'

(चरकसंहिता, सूत्र० ५। ७१; अष्टांगहृदयं, सूत्र० २। २)

५. दन्तकाष्ठविधानं तु प्रथमं कथयामि ते। मधूके पुत्रलाभः स्यादर्के नेत्रसुखं प्रिये। वक्तृत्वं वै बदर्यां च बृहत्या दुर्जनां जयेत्। ऐश्वर्यं च भवेद्बिल्वे खदिरे च न संशयः॥ रोगक्षयः कदम्बे तु अर्थलाभोऽतिमुक्तके। गुरुतां याति सर्वत्र आटरूषकसम्भवैः॥ जातिप्रधानतां जातावश्वत्थो यच्छते यशः। श्रियं प्राप्नोति निखिलां शिरीषस्य निषेवणात्॥ प्रियंगु सेवमानस्य सौभाग्यं परमं भवेत्। अभीप्सितार्थसिद्धिः स्यान्नित्यं प्लक्षनिषेवणात्॥ (स्कन्दपुराण, प्रभास० १७। ८—१२)

६. कोरी अंगुलीसे अथवा तर्जनी अंगुलीसे कभी दातुन नहीं करना चाहिये। कोयला, बालुका, भस्म (राख), नाखून, ईंट, ढेला और पत्थरसे भी दातुन नहीं करना चाहिये।

७. दातुनके लिये सीधी, हरी, गीली और छिद्रहीन लकड़ी लेनी चाहिये। चीरी हुई, कीड़े लगी हुई, सूखी, टेढ़ी और छिलका-रहित दातुन कभी न करे।

८. दातुन कनिष्ठिका अंगुलीके अग्रभागके समान मोटी, सीधी तथा बारह अंगुल लम्बी होनी चाहिये।

---

६. दन्तस्य धावनं कुर्यान्न तर्जन्या कदाचन।
(पद्मपुराण, क्रियायोगसार० ११। १४)

यस्तु गण्डूषसमये तर्जन्या वक्त्रशोधनम्। कुर्वीत यदि मूढात्मा नरके पतति द्विजः॥ (वाधूलस्मृति ३६)

अंगुल्या दन्तकाष्ठं च प्रत्यक्षलवणं तथा। मृत्तिकाभक्षणं चैव तुल्यं गोमांसभक्षणम्॥
(बृहत्पराशरस्मृति ८। २८८; अत्रिसंहिता ३१४)

अंगुल्या दन्तकाष्ठं च प्रत्यक्षं लवणं च यत्। मृत्तिकाभक्षणं चैव तुल्यं गोमांस भक्षणैः॥ (स्कन्दपुराण, प्रभास० १७। १९)

'नाङ्गुल्या धावयेत् क्वचित्' (कूर्मपुराण, उ० १८। २१)

अङ्गारवालुकाभिश्च भस्माङ्गुलिनखैरपि॥ इष्टकालोष्टपाषाणैर्न कुर्याद्दन्तधावनम्।
(विश्वामित्रस्मृति १। ६०-६१)

७. न पाटितं समश्नीयाद्दन्तकाष्ठं न सव्रणम्। च चोर्द्धशुष्कं वक्रं वा नैव च त्वग्विवर्जितम्॥ (स्कन्दपुराण, प्रभास० १७। १३)

कनिष्ठग्रपरीमाणं सत्वचं निर्व्रणारुजम्। द्वादशाङ्गुलमानं च सार्द्रं स्याद्दन्तधावनम्॥
(स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ५। ५९)

८. दन्तानां शोधनं कुर्यात्काष्ठैः कुर्याद् यथोक्तवत्। कनिष्ठिकाग्रवत्स्थूलं द्वादशांगुलमायतम्॥ (वसिष्ठस्मृति-२, ६। १८)

कनीन्यग्रसमस्थौल्यं संकूर्च्चं द्वादशाङ्गुलम्। (विष्णुस्मृति ६१)

कनिष्ठाग्रमितस्थूलं द्वादशाङ्गुलमायतम्। (वृद्धहारीतस्मृति ४। २५)

सम्प्रार्थ्यैवं दन्तकाष्ठं द्वादशांगुलसंमितम्। (नारदपुराण, पूर्व० ६६। ९)

'कनिष्ठाग्रपरीमाणं..........द्वादशांगुलमानम्'(स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ५। ५९)

९. दन्तधावन करनेसे पहले दातुनको जलसे धो लेना चाहिये। दातुन करनेके बाद भी उसे पुनः धोकर तथा तोड़कर किसी पवित्र स्थानमें फेंक देना चाहिये।

१०. दन्तधावनसे पहले दातुनको जलसे धोकर इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित करना चाहिये—

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च।
ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते॥

'वनस्पते! तुम मुझे आयु, बल, यश, तेज, सन्तति, पशु, धन, ब्रह्मज्ञान, बुद्धि तथा धारणाशक्ति प्रदान करो।'

११. सदा पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुख करके दन्तधावन करना चाहिये। पश्चिम और दक्षिणकी ओर मुख करके दन्तधावन नहीं करना चाहिये।

कनीन्यग्रसमस्थौल्यं प्रगुणं द्वादशांगुलम्। भक्षयेद्दन्तपवनं दन्तमांसान्यबाधयन्॥
(अष्टांगहृदय, सूत्र० २। ३)

तत्रादौ दन्तपवनं द्वादशांगुलमायतम्। कनिष्ठिकापरीणाहमृज्वग्रन्थितमव्रणम्॥
(सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। ४)

९. प्रक्षाल्य वारिणा चैव मन्त्रेणाप्यभिमन्त्रितम्॥ (नारदपुराण, पूर्व० २७। २४)

प्रक्षाल्य भुङ्क्त्वा तज्जह्याच्छुचौ देशे समाहितः॥ (कूर्मपुराण, उ० १८। २१)

पश्चात्प्रक्षाल्य तत्काष्ठं शुचौ देशे विनिक्षिपेत्॥ (स्कन्दपुराण, प्रभास० १७। १७)

प्रक्षाल्य भुक्त्वा च शुचौ देशे त्यक्त्वा तदाचमेत्॥
(गरुड़पुराण, आचार० २०५। ५०)

'प्रक्षाल्य जह्याच्च शुचिप्रदेशे' (बृहत्संहिता ८५। ८)

१०. आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च। ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते॥ (वाधूलस्मृति ३५; कात्यायनस्मृति १०। ४; विश्वामित्रस्मृति १। ५८-५९, नारदपुराण, पूर्व० २७। २५; देवीभागवत ११। २। ३८; पद्मपुराण, उत्तर० ९२। १२)

११. न दक्षिणापराभिमुखः। अद्याच्चोदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा। (विष्णुस्मृति ६१)

पश्चिमे दक्षिणे चैव न कुर्याद्दन्तधावनम्। (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। १२५)

'प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि' (वृद्धहारीतस्मृति ४। २४)

प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि वाग्यतो दन्तधावनम्॥ (मार्कण्डेयपुराण ३४। ४९; ब्रह्मपुराण २२१। ४८) 'उदङ्मुखः प्राङ्मुख एव' (बृहत्संहिता ८५। ८)

१२. प्रतिपदा, षष्ठी, नवमी और अमावस्याको काष्ठसे दातुन नहीं करनी चाहिये। इनके सिवाय रविवार, उपवासके दिन, श्राद्धके दिन, ग्रहणमें और सूर्यास्तके समय भी काष्ठसे दातुन नहीं करनी चाहिये।

१३. जो अमावस्या तिथिको काष्ठसे दातुन करता है, उसके द्वारा चन्द्रमाकी हिंसा होती है। पर्वके दिन उसके दिये हुए हविष्यको देवता ग्रहण नहीं करते। उससे पितर भी कुपित हो जाते हैं और उसके कुलमें वंशकी हानि होती है।

---

१२. प्रतिपत्पर्वषष्ठीषु नवम्यांश्चैव सत्तमाः। दन्तानां काष्ठसंयोगाद्दहत्यासप्तमं कुलम्॥ (लघुहारीतस्मृति ४। १०)। प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु.......................................

(नरसिंहपुराण ५८। ५०-५१)

अमावस्यां न चाश्नीयाद्दन्तकाष्ठं कदाचन॥ (विष्णुस्मृति ६१)

प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु नवम्यां रविवासरे। दन्तानां काष्ठसंयोगो दहेदासप्तमं कुलम्॥

(स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ५। ५७)

प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु नवम्येकादशीरवौ। दन्तानां काष्ठसंयोगाद्दहत्यासप्तमं कुलम्॥

(देवीभागवत ११। २। ४१)

अमावस्यां तथा षष्ठ्यां नवम्यां प्रतिपद्यपि। वर्जयेद्दन्तकाष्ठन्तु तथैवार्कस्य वासरे॥ (गरुड़पुराण, आचार० २०५। ५१)

षष्ठ्याद्यामश्च नवमी व्रतमस्तं रवेर्दिनम्। तथा श्राद्धदिनं तात निषिद्धं रदधावने॥

(शिवपुराण, रुद्र०, सृष्टि० ११। २७)

उपवासे तथा श्राद्धे न खादेद्दन्तधावनम्। दन्तानां काष्ठसंगाच्च हन्ति सप्तकुलानि वै॥ (स्कन्दपुराण, प्रभास० २०८। ४०)

उपवासे नवम्यां च षष्ठ्यां श्राद्धदिने रवौ। ग्रहणे प्रतिपद्दर्शे न कुर्याद्दन्तधावनम्॥

(स्कन्दपुराण, वैष्णव०, कार्तिक० ५। १५)

१३. दन्तकाष्ठं तु यः खादेदमावास्यामबुद्धिमान्। हिंसितश्चन्द्रमास्तेन पितरश्चोद्विजन्ति च॥ हव्यं न तस्य देवाश्च प्रतिगृह्णन्ति पर्वसु। कुप्यन्ते पितरश्चास्य कुले वंशोऽस्य हीयते॥

(महाभारत, अनु० १२७। ४-५)

१४. यदि दातुनके लिये लकड़ी न मिले अथवा दातुनके लिये निषिद्ध दिन हो तो उस समय बारह अथवा सोलह बार कुल्ला कर ले अथवा विहित वृक्षोंके पत्ते या सुगंधित मंजन आदिद्वारा दन्तधावन करना चाहिये।

---

१४. अभावे दन्तकाष्ठानां प्रतिषिद्धदिनेषु च। अपां द्वादशगण्डूषैर्मुखशुद्धिं समाचरेत्॥

(लघुहारीतस्मृति ४। ११)

अलाभे दन्तकाष्ठानां प्रतिषिद्धदिनेष्वपि। अपां षोडशगण्डूषैः मुखशुद्धिर्भविष्यति॥

(वाधूलस्मृति ३७)

अलाभे दन्तकाष्ठस्य प्रतिषिद्धे च तद्दिने॥ अपां द्वादशगण्डूषैर्मुखशुद्धिर्विधीयते।

(नरसिंहपुराण ५८। ५१-५२)

अलाभे दन्तकाष्ठानां गण्डूषैर्भानुसंमितैः॥ मुखशुद्धिर्विधीयेत तृणपत्रसमन्वितैः।

(नारदपुराण, पूर्व० २७। २७-२८)

वर्जिते दिवसे चैव गण्डूषांश्चैव षोडश। तत्तत्पत्रसुगन्धैर्वा (ततः पत्रैः सुगन्धैर्वा) मुखशुद्धिं च कारयेत्॥ (स्कन्दपुराण, प्रभास० १७। २१)

कुर्याद् द्वादशगण्डूषाननुक्ते दन्तधावने॥

(स्कन्दपुराण, वैष्णव०, कार्तिक० ५। १५)

अलाभे दन्तकाष्ठानां निषिद्धे वाथ वासरे। गण्डूषा द्वादश ग्राह्या मुखस्य परिशुद्धये॥ (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ५। ५८)

अभावे दन्तकाष्ठस्य प्रतिषिद्ध दिनेषु च। अपां द्वादशगण्डूषैर्विदध्याद्दन्तधावनम्॥

(देवीभागवत ११। २। ३९)
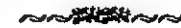
तैलाभ्यङ्ग

१. प्रतिपदा, षष्ठी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा और अमावस्याके दिन शरीरपर तेल नहीं लगाना चाहिये।

२. रविवार, मंगलवार, गुरुवार और शुक्रवारके दिन तेल नहीं लगाना चाहिये।

३. रविवारके दिन तैलाभ्यङ्ग करनेसे क्लेश, सोमवारको कान्ति, मंगलवारको व्याधि, बुधवारको सौभाग्य, गुरुवारको निर्धनता, शुक्रवारको हानि और शनिवारको सर्वसमृद्धिकी प्राप्ति होती है।

४. रविवारको पुष्प, मंगलवारको मिट्टी, गुरुवारको दूर्वा और

---

१. कुहूपूर्णेन्दुसंक्रान्त्यां चतुर्दश्यष्टमीषु च। नरश्चाण्डालयोनिः स्यात् स्त्रीतैलमांससेवनात्॥
(ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण० ७५। ६०)

चतुर्दश्यां तथाष्टम्यां पंचदश्यां च पर्वसु। तैलाभ्यङ्गं तथा भोगं योषितश्च विवर्जयेत्॥ (मार्कण्डेयपुराण ३४। ४४; ब्रह्मपुराण २२१। ४२)

'नन्दासु नाभ्यङ्गमुपाचरेत' (वामनपुराण १४। ४८)

षष्ठिचतुर्दश्यष्टम्याभ्यङ्गं वर्जयेत्तथा। (अग्निपुराण १५५। ३१)

चतुर्दश्यष्टमी चैव तथामा चाथ पूर्णिमा। पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रान्तिरेव च॥ तैलस्त्रीमांससम्भोगी सर्वेष्वेतेषु वै पुमान्। विण्मूत्रभोजनं नाम प्रयाति नरकं मृतः॥ (विष्णुपुराण ३। ११। ११८-११९)

षष्ठ्यष्टम्योर्विशेत्पापं तैले मांसे सदैव हि। चतुर्दश्यां तथाऽमायां त्यजेत क्षुरमङ्गनाम्॥
(पद्मपुराण, पाताल० ९। ५३)

२. तैलाभ्यङ्गं न कुर्वीत वासरे रविभौमयोः। (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। ९८)

'नाभ्यङ्गमर्के न च भूमिपुत्रे' (वामनपुराण १४। ४९)

३. अभ्यक्तो भानुवारे यः स नरः क्लेशवान्भवेत्॥ ऋक्षेशे कान्तिभाग्भौमे व्याधिसौभाग्यमिन्दुजे। जीवे नैस्वं सिते हानिर्मन्दे सर्वसमृद्धयः॥
(नारदपुराण, पूर्व० ५६। १५७-१५८; नारदसंहिता ५। ९-१०)

४. रवौ पुष्पं गुरौ दूर्वा भौमवारे च मृत्तिकाम्। भार्गवे गोमयं क्षिप्त्वा तैलस्नानं सुखावहम्॥ (धर्मसिन्धु ३ पू०, क्षुद्र०)

शुक्रवारको गोमय डालकर तेल लगानेसे दोष नहीं लगता।

५. जो प्रतिदिन तेल लगाता हो, उसके लिये किसी भी दिन तेल लगाना दूषित नहीं है। जो तेल सुगंधित इत्र आदिसे वासित हो, उसको लगाना भी किसी दिन दूषित नहीं है। सरसोंका तेल ग्रहणकालको छोड़कर अन्य किसी दिन भी दूषित नहीं होता।

६. सिरपर लगानेसे बचे हुए तेलको शरीरपर नहीं लगाना चाहिये।

रवौ पुष्पं गुरौ दूर्वा भौमवारे च मृत्तिका। गोमयं शुक्रवारे च तैलाभ्यङ्गे न दोषभाक्॥ (निर्णयसिन्धु ३ क्षुद्र०)

५. तैलाभ्यङ्गं च कुर्वीत वारान्दृष्ट्वा क्रमेण च। नित्यमभ्यङ्गके चैव वासितं वा न दूषितम्॥ श्राद्धे च ग्रहणे चैवोपवासे प्रतिपद्दिने। अथवा सार्षपं तैलं न दुष्येद् ग्रहणं विना॥ (शिवपुराण, रुद्र०, सृष्टि० १३। १२-१३)

सार्षपं गन्धतैलं च यत्तैलं पुष्पवासितम्। अन्यद्रव्ययुतं तैलं न दुष्यति कदाचन॥
(भगवंतभास्कर, समयमयूख)

६. शिरोऽभ्यङ्गावशिष्टेन तैलेनाङ्गं न लेपयेत्।

(कूर्मपुराण, उ० १६। ५८; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ५७; नारदपुराण, पूर्व० २६। ३५)

स्नान

१. स्नान किये बिना जो पुण्यकर्म किया जाता है, वह निष्फल होता है। उसे राक्षस ग्रहण कर लेते हैं।

२. दुःस्वप्न देखने, हजामत बनवाने, वमन होने, स्त्रीसंग करने और श्मशानभूमिमें जानेपर वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये।

३. तेल लगानेके बाद, श्मशानसे लौटनेपर, स्त्रीसंग करनेपर और क्षौरकर्म (हजामत) करनेके बाद जबतक मनुष्य स्नान नहीं करता, तबतक वह चाण्डाल बना रहता है।

---

१. स्नानमूलाः क्रियाः सर्वाः सन्ध्योपासनमेव च। स्नानाचारविहीनस्य सर्वाः स्युः निष्फलाः क्रियाः॥ (वाधूलस्मृति ६९)

न हि स्नानं विना पुंसां प्राशस्त्यं कर्मसु स्मृतम्॥ (लघुव्याससंहिता १। ७)

अस्नातो नाचरेत्कर्म जपहोमादि किञ्चन॥ (बृहत्पराशरस्मृति २। ९३)

विना स्नानं तु यत्कर्म पुण्यकार्यमयं शुभम्। क्रियते निष्फलं ब्रह्मस्तत्प्रगृह्णन्ति राक्षसाः॥ (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० चातुर्मास्य० १। २४)

२. क्षुरकर्मणि वान्ते च स्त्रीसम्भोगे च पुत्रक॥ स्नायीत चैलवान् प्राज्ञः कटभूमिमुपेत्य च। (मार्कण्डेयपुराण ३४। ८२-८३)

मैथुने कटधूमे च सद्यः स्नानं विधीयते। (अग्निपुराण १५७। ३४)

दुःस्वप्नदर्शने चैव वान्ते वा क्षुरकर्मणि। मैथुने कटधूमे च सद्यः स्नानं विधीयते॥ (बृहत्पराशरस्मृति ८। २७१)

चिताधूमसेवने सर्वे वर्णाः स्नानमाचरेयुः। मैथुने दुःस्वप्ने रुधिरोपगतकण्ठे वमनविरेकयोश्च। श्मश्रुकर्मणि कृते च। (विष्णुस्मृति २२)

दुःस्वप्नं यदि पश्येत्तु वान्ते वा क्षुरकर्मणि। मैथुने प्रेतधूमे च स्नानमेव विधीयते॥ (पराशरस्मृति १२। १)

३. तैलाभ्यङ्गे चिताधूमे मैथुने क्षौरकर्मणि। तावद्भवति चाण्डालो यावत्स्नानं न चाचरेत्॥ (चाणक्यनीति ८। ६)

४. यदि नदी हो तो जिस ओरसे उसकी धारा आती हो, उसी ओर मुँह करके तथा दूसरे जलाशयोंमें सूर्यकी ओर मुँह करके स्नान करना चाहिये।

५. कुएँसे निकाले हुए जलकी अपेक्षा झरनेका जल पवित्र होता है। उससे पवित्र सरोवरका जल तथा उससे भी पवित्र नदीका जल बताया जाता है। तीर्थका जल उससे भी पवित्र होता है और गङ्गाका जल तो सबसे पवित्र माना गया है।

६. दूसरोंके बनाये हुए सरोवरमें स्नान करनेसे सरोवर बनानेवालेका पाप स्नान करनेवालेको लगता है। अतः उसमें स्नान न करे। यदि दूसरेके सरोवरमें स्नान करना ही पड़े तो पाँच या सात ढेला मिट्टी निकालकर स्नान करे।

---

४. स्रवन्ती चेत् प्रतिस्रोते प्रत्यर्कं चान्यवारिषु। मज्जेदोमित्युदाहृत्य न च विक्षोभयेज्जलम्॥ (महाभारत, आश्व० ९२)

५. भूमिष्ठमुद्धृतात् पुण्यं ततः प्रस्रवणोदकम्। ततोऽपि सारसं पुण्यं तस्मान्नादेयमुच्यते॥ तीर्थतोयं ततः पुण्यं गाङ्गं पुण्यन्तु सर्वतः। ...... (अग्निपुराण १५५। ५-६)

भूमिष्ठादुद्धृतं पुण्यं ततः प्रस्रवणादिकम्। ततोऽपि.................................... (गरुड़पुराण, आचार० २०५। ११३-११४)

६. परकीयनिपानेषु न स्नायाद्वै कदाचन। निपानकर्तुः स्नात्वा तु दुष्कृतांशेन लिप्यते॥ (वाधूलस्मृति ६४) परकीयनिपानेषु न स्नायाच्च.................................... (मनुस्मृति ४। २०१)

परकीयनिपानेषु यदि स्नायात्कथञ्चन॥ सप्तपिण्डान् समुद्धृत्य तत्र स्नानं समाचरेत्॥ (वाधूलस्मृति ६७)

कदाचिद्विदुषा मिथ्या न स्नातव्यं पराम्भसा। अम्भकृद्दुष्कृतांशेन स्नानकर्तापि लिप्यते॥ पञ्च वा सप्त वा पिण्डान् स्नायादुद्धृत्य तत्र तु। (बृहत्पराशरस्मृति २। १०६-१०७)

परकीयनिपानेषु न स्नायाद्वै कदाचन। पञ्च पिण्डान् समुद्धृत्य स्नायाद्वा सम्भवात् पुनः॥ (लघुव्याससंहिता २। ११)

७. भोजनके बाद, रोगी रहनेपर, महानिशा (रात्रिके मध्य दो पहर)-में, बहुत वस्त्र पहने हुए और अज्ञात जलाशयमें स्नान नहीं करना चाहिये।

८. रातके समय स्नान नहीं करना चाहिये। सन्ध्याके समय भी स्नान नहीं करना चाहिये। परन्तु सूर्यग्रहण अथवा चन्द्रग्रहणके समय रात्रिमें भी स्नान कर सकते हैं।

९. पुत्रजन्म, सूर्यकी संक्रान्ति, स्वजनकी मृत्यु, ग्रहण तथा जन्म-नक्षत्रमें चन्द्रमा रहनेपर रात्रिमें भी स्नान किया जा सकता है।

पञ्च पिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात् परवारिषु। (गरुड़पुराण, आचार० ९६। ५८)
उद्धृत्य पञ्चमृत्पिण्डान् स्नायात्परजलाशये।
(स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ९४)
पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात् परवारिणि। (वामनपुराण १४। ७९)

७. न स्नानमाचरेद् भुक्त्वा नातुरो न महानिशि। न वासोभिः सहाजस्रं नाविज्ञाते जलाशये॥ (मनुस्मृति ४। १२९)

८. न नक्तं स्नायात्। (बौधायनस्मृति २। ३। ५२)
न रात्रौ राहुदर्शनवर्जम्। न सन्ध्ययोः। (विष्णुस्मृति ६४)
निशायां चैव न स्नायात्सन्ध्यायां ग्रहणं विना।
(स्कन्दपुराण, ब्रह्म० चातुर्मास्य० १। २९)
भास्करस्य करैः पूतं दिवा स्नानं प्रशस्यते। अप्रशस्तं निशि स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनात्॥ (पाराशरस्मृति १२। २०)। अस्तमिते च स्नानम्॥ (आपस्तम्बधर्मसूत्र १। ११। ३२। ८)
'न निशायां कदाचन' (महाभारत, अनु० १०४। ५१)
'स्नायीत न तथा निशि' (मार्कण्डेयपुराण ३४। ५१)
उपरागे परं स्नानमृते दिनमुदाहृतम्।
(मार्कण्डेयपुराण ३४। ५२; ब्रह्मपुराण २२१। ५१)

९. स्नायाच्छिरः स्नानतया च नित्यं न कारणं चैव विना निशासु। ग्रहोपरागे स्वजनापयाते मुक्त्वा च जन्मर्क्षगते शशाङ्के॥ (वामनपुराण १४। ५३)
पुत्रजन्मनि योगेषु तथा संक्रमणे रवेः। राहोश्च दर्शने स्नानं प्रशस्तं निशि नान्यथा॥ (गरुड़पुराण, आचार० २०५। ११६)

१०. बिना शरीरकी थकावट दूर किये और बिना मुख धोये स्नान नहीं करना चाहिये।

११. सूर्यकी धूपसे सन्तप्त व्यक्ति यदि तुरन्त (बिना विश्राम किये) स्नान करता है तो उसकी दृष्टि मन्द पड़ जाती है और सिरमें पीड़ा होती है।

१२. काँसेके पात्रसे निकाला हुआ जल कुत्तेके मूत्रके समान अशुद्ध होनेके कारण स्नान और देवपूजाके योग्य नहीं होता। उसकी शुद्धि पुनः स्नान करनेसे ही होती है।

१३. नग्न होकर कभी स्नान नहीं करना चाहिये।

---

१०. 'नाविगतक्लमो नानाप्लुतवदनो न नग्न उपस्पृशेत्'
(चरकसंहिता, सूत्र० ८। १९)

११. आतपसन्तप्तस्य जलावगाहो दृङ्मान्द्यं शिरोव्यथां च जनयति॥
(नीतिवाक्यामृत २५। २८)

१२. कांस्यपात्राच्च्युतं वारि स्नाने च देवतार्चने। श्वानमूत्रसमं तोयं पुनः स्नानेन शुध्यति॥ (प्रजापतिस्मृति ११८)

१३. 'न नग्नः स्नानमाचरेत्'
(मनुस्मृति ४। ४५; कूर्मपुराण, उ० १६। ६५; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ६५)
'न नग्नः स्नायात्' (बौधायनस्मृति २। ३। ५१)
'न नग्नः' (विष्णुस्मृति ६४)
'नावगाहेदपो नग्नः' (कूर्मपुराण, उ० १६। ५७; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ५७)
'न नग्नः प्रविशेज्जलम्' (सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। १००)
'न नग्न उपस्पृशेत्' (चरकसंहिता, सूत्र० ८। १९)
'नग्नस्नानं न कुर्वीत' (स्कन्दपुराण, मा० कौ० ४१। १५७)
'न नग्नः स्नातुमर्हति' (महाभारत, अनु० १०४। ६७)
'न नग्नः कर्हिचित् स्नायात्' (महाभारत, अनु० १०४। ५१)
'न नग्नः स्नानमाचरेत्' (अग्निपुराण १५५। २२)
'न स्नायान्न स्वपेन्नग्नः' (विष्णुपुराण ३। १२। १९)
न च स्नायीत वै नग्नो न शयीत कदाचन। (वामनपुराण १४। ४७)

१४. पुरुषको नित्य सिरके ऊपरसे स्नान करना चाहिये। सिरको छोड़कर स्नान नहीं करना चाहिये। सिरके ऊपरसे स्नान करके ही देवकार्य तथा पितृकार्य करने चाहिये।

१५. बिना स्नान किये कभी चन्दन आदि नहीं लगाना चाहिये।

१६. रविवार, श्राद्ध, संक्रान्ति, ग्रहण, महादान, तीर्थ, व्रत-उपवास, अमावस्या, षष्ठी तिथि अथवा अशौच प्राप्त होनेपर मनुष्यको गर्म जलसे स्नान नहीं करना चाहिये।

१७. जो दोनों पक्षोंकी एकादशीको आँवलेसे स्नान करता है, उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं और वह विष्णुलोकमें सम्मानित होता है।

१८. स्नानके बाद अपने अंगोंमें तेलकी मालिश नहीं करनी चाहिये तथा गीले वस्त्रोंको झटकारना नहीं चाहिये।

---

१४. 'स्नायाच्छिरः स्नानतया च नित्यम्' (वामनपुराण १४। ५३)
शिरो विवर्ज्य न स्नायान्निमज्जेतामुना सह। (शाण्डिल्यस्मृति २। ५७)
'न च स्नायाद्विना ततः' (मनुस्मृति ४। ८२)
शिरःस्नातोऽथ कुर्वीत दैवं पित्र्यमथापि च॥ (महाभारत, अनु० १०४। १२५)
१५. नानुलेपनमादद्यान्नास्नातः कर्हिचिद् बुधः। (मार्कण्डेयपुराण ३४। ५३)
अनुलेपनमादद्यान्नास्नातः कर्हिचिद् बुधः॥ (ब्रह्मपुराण २२१। ५२)
१६. रविसंक्रान्तिवारेषु ग्रहणेषु शशिक्षये। व्रतेषु चैव षष्ठीषु न स्नायादुष्णवारिणा॥
(बृहत्पराशरस्मृति २। ११२)
रवेर्दिने तथा श्राद्धे संक्रान्तौ ग्रहणे तथा। महादाने तथा तीर्थे उपवासदिने तथा॥ अशौचेऽप्यथवा प्राप्ते न स्नायादुष्णवारिणा।
(शिवपुराण, रुद्र० सृष्टि० १३। १०-११)
१७. एकादश्यां पक्षयुगे धात्रीस्नानं करोति यः। सर्वपापं क्षयं याति विष्णुलोके महीयते॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ६२। ७)
१८. स्नात्वा च नावमृज्येत गात्राणि सुविचक्षणः॥ न चानुलिम्पेदस्नात्वा स्नात्वा वासो न निर्धुनेत्। (महाभारत, अनु० १०४। ५१-५२)

१९. स्नानके बाद अपने गीले बालोंको फटकारना (झाड़ना) नहीं चाहिये।

२०. स्नानके बाद वस्त्रको चौगुना करके निचोड़े, तिगुना करके नहीं। घरमें वस्त्र निचोड़ते समय उसके छोरको नीचे करके निचोड़े और नदीमें स्नान किया हो तो ऊपरकी ओर छोर करके भूमिपर निचोड़े। निचोड़े हुए वस्त्रको कन्धेपर न रखे।

२१. स्नानके बाद हाथोंसे शरीरको नहीं पोंछना चाहिये।

२२. स्नानके समय पहने हुए भीगे वस्त्रसे शरीरको नहीं पोंछना चाहिये। ऐसा करनेसे शरीर कुत्तेसे चाटे हुएके समान अशुद्ध हो जाता है, जो पुनः स्नान करनेसे ही शुद्ध होता है।

---

१९. 'केशान्न धूनयेत्' (लघुहारीतस्मृति ४। ३३)
'न च निर्धूनयेत्केशान्' (विष्णुपुराण ३। १२। २४)
'न चापि धूनयेत् केशान्' (मार्कण्डेयपुराण ३४। ५३)
'न चावधूनयेत्केशान्' (ब्रह्मपुराण २२१। ५२)
'स्नातो न केशान् विधुनीत चापि' (वामनपुराण १४। ५४)
'स्नातो न धूनयेत्केशान्' (स्कन्दपुराण, मा० कौ० ४१। १६२)
'स्नातः शिरो नावधुनेत्' (विष्णुस्मृति ६४)
'न कुर्यात्केशधूननम्' (नरसिंहपुराण ५८। ७२)
'न केशाग्राण्यभिहन्यात्' (चरकसंहिता, सूत्र० ८। १९)
२०. निष्पीडितं वस्त्रं न स्कन्धे क्षिपेत्। चतुर्गुणीकृत्य वस्त्रं गृहेऽधोदशं नद्यामूर्ध्वदशं स्थले निष्पीडयेद् न तु त्रिगुणम्। (धर्मसिंधु ३ पू० आह्निक०)
२१. 'करेण नो मृजेद्गात्रम्' (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ६८-६९)
अपमृज्यान्न च स्नातो गात्राण्यम्बरपाणिभिः॥ (मार्कण्डेयपुराण ३४। ५२)
अपमृज्यान्न वस्त्रान्तैर्गात्राण्यम्बरपाणिभिः॥ (ब्रह्मपुराण २२१। ५१)
स्नातो नाङ्गानि सम्मार्जेत्स्नानशाट्या न पाणिना। (विष्णुपुराण ३। १२। २४)
२२. स्नानवस्त्रेण यः कुर्याद्देहस्य परिमार्जनम्। शुनालीढं भवेद्गात्रं पुनः स्नानेन शुध्यति॥ (वाधूलस्मृति ७१)
करेण नो मृजेद्गात्रं स्नानवस्त्रेण वा पुनः॥ शुनोच्छिष्टं भवेद्गात्रं पुनः स्नानेन शुध्यति। (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ६८-६९)
स्नातो नाङ्गानि सम्मार्जेत्स्नानशाट्या न पाणिना। (विष्णुपुराण ३। १२। २४)

वस्त्र

१. एक वस्त्र धारण करके न तो भोजन करे, न यज्ञ करे, न दान करे, न अग्निमें आहुति दे, न स्वाध्याय करे, न पितृतर्पण करे और न देवार्चन ही करे।

२. विद्वान् पुरुष धोबीके धोये हुए वस्त्रको अशुद्ध मानते हैं। अपने हाथसे पुनः धोनेपर ही वह वस्त्र शुद्ध होता है।

३. जिसकी किनारी या मगजी न लगी हो, ऐसा वस्त्र धारण करनेयोग्य नहीं होता।

४. पहलेके पहने हुए वस्त्रको बिना धोये पुनः नहीं पहनना चाहिये।

---

१. यज्ञं दानं जपो होमं स्वाध्यायं पितृतर्पणम्। नैकवस्त्रो द्विजः कुर्याद् भोजनं तु सुरार्चनम्॥ (व्याघ्रपादस्मृति ३८९)

नैकवस्त्रश्च भुञ्जीत नाग्नौ होममथाचरेत्। न चार्चयेद् द्विजाँश्चैव कुर्याद्देवार्चनं बुधः॥ (स्कन्दपुराण, मा० कौ० ४१। १४४)

होमदेवार्चनाद्यासु क्रियास्वाचमने तथा। नैकवस्त्रः प्रवर्तेत द्विजवाचनिके जपे॥ (विष्णुपुराण ३। १२। २०)

न भुञ्जीतैकवस्त्रेण न स्नायादेकवाससा। (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। ८६)

२. रजकैः क्षालितं वस्त्रमशुद्धं कवयो विदुः। हस्तप्रक्षालने चैव पुनर्वस्त्रं तु शुध्यति॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। ५३)

३. 'वर्ज्यं च विदशं वस्त्रम्' (मार्कण्डेयपुराण ३४। ५५; ब्रह्मपुराण २२१। ५४)

मलाक्तं तु दशाहीनं वर्जयेदम्बरं बुधः। (नरसिंहपुराण ५८। ७३)

'न चापदशमेव च' (महाभारत, अनु० १०४। ८६; विष्णुधर्मोत्तर० ३। २३३। २३)

वर्ज्यं च मलिनं वस्त्रं दशाभिश्च विवर्जितम्। (स्कन्दपुराण, मा० कौ० ४१। १६४)

४. नाप्रक्षालितं पूर्वधृतं वसनं बिभृयात्। (विष्णुस्मृति ६४)

५. वस्त्रके ऊपर जल छिड़ककर ही उसे पहनना चाहिये।

६. धनके रहते हुए पुराने और मैले वस्त्र नहीं पहनने चाहिये।

७. मनुष्यको भीगे वस्त्र कभी नहीं पहनने चाहिये।

८. अधिक लाल, रंगबिरंगे, नीले और काले रंगके वस्त्र धारण करना उत्तम नहीं है।

९. कपड़ों और गहनोंको उलटा करके न पहने। उनमें कभी उलट-फेर नहीं करना चाहिये अर्थात् उत्तरीयवस्त्रको अधोवस्त्रके स्थानमें और अधोवस्त्रको उत्तरीयके स्थानमें नहीं पहनना चाहिये।

१०. दूसरोंके पहने हुए कपड़े नहीं पहनने चाहिये।

---

५. 'प्रोक्ष्य वास उपयोजयेत्' (आपस्तम्बधर्मसूत्र १। ५। १५। १५)

६. 'सति विभवे न जीर्णमलवद्वासाः स्यात्' (गौतमस्मृति ९; विष्णुस्मृति ७१); (गौतमधर्मसूत्र १। ९। ४)

७. न चैवार्द्राणि वासांसि नित्यं सेवेत मानवः॥ (महाभारत, अनु० १०४। ५२)

नार्द्रं परिदधीत। (गोभिलगृह्यसूत्र ३। ५। २४)

८. न चापि रक्तवासाः स्याच्चित्रासितधरोऽपि वा। (मार्कण्डेयपुराण ३४। ५४; ब्रह्मपुराण २२१। ५३)

न रक्तमुल्बणं वासो न नीलं तत्प्रशस्यते॥ (नरसिंहपुराण ५८। ७२)

'न रक्तं मलिनं तथा' (विष्णुधर्मोत्तर० २। ८९। ४)

न रक्तमुल्बणं वासो न नीलञ्च प्रशस्यते। (लघुहारीतस्मृति ४। ३४)

९. न च कुर्याद् विपर्यासं वाससोर्नापि भूषणे॥ (मार्कण्डेयपुराण ३४। ५४; ब्रह्मपुराण २२१। ५३)

विपर्ययं न कुर्वीत वाससो बुद्धिमान् नरः॥ (महाभारत, अनु० १०४। ८५; विष्णुधर्मोत्तर० ३। २३३। २३)। 'न विपर्यस्तवस्त्रधृक्' (स्कन्दपुराण, मा० कौ० ४१। १६३)

'न च वासोविपर्य्ययम्' (अग्निपुराण १५५। १९; विष्णुधर्मोत्तर० २। ८९। २७)

१०. 'तथा नान्यधृतं धार्यम्' (महाभारत, अनु० १०४। ८६; विष्णुधर्मोत्तर० ३। २३३। २३)

११. सोनेके लिये दूसरा वस्त्र होना चाहिये। सड़कोंपर घूमनेके लिये दूसरा तथा देवताओंकी पूजाके लिये दूसरा ही वस्त्र रखना चाहिये।

१२. नीलमें रँगा हुआ वस्त्र दूरसे ही त्याग देना चाहिये। जो नीलका रँगा हुआ वस्त्र पहनता है, उसके स्नान, दान, तप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण और पंचमहायज्ञ—ये सभी व्यर्थ हो जाते हैं। नीलके रँगे वस्त्र धारण करके जो रसोई बनायी जाती है, उस अन्नको जो खाता है, वह मानो विष्ठा खाता है। वह अन्न देनेवाला यजमान नरकमें जाता है।

१३. इन पाँच कार्योंमें उत्तरीय वस्त्र अवश्य धारण करना चाहिये—स्वाध्याय, मल-मूत्रका त्याग, दान, भोजन और आचमन।

न धारयेत्परस्यैवं स्नानवस्त्रं कदाचन॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। ८६)
'वस्त्रं नान्यधृतं धार्यम्' (विष्णुधर्मोत्तर० २। ८९। ४)

११. अन्यदेव भवेद् वासः शयनीये नरोत्तम॥ अन्यद् रथ्यासु देवानामर्चायामन्यदेव हि। (महाभारत, अनु० १०४। ८६-८७)

१२. 'न चापि नीलीवासाः स्यात्' (स्कन्दपुराण, मा० कौ० ४१। १६३)

स्नानं दानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम्। वृथा तस्य महायज्ञा नीलीवासो बिभर्ति यः॥ नीलीरक्तेन वस्त्रेण यदन्नमुपकल्पयेत्। भोक्ता विष्ठासमं भुङ्क्ते दाता च नरकं व्रजेत्॥ (स्कन्दपुराण, काशी० पू० ४०। १४४, १४७)

स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम्। वृथा तस्य महायज्ञा नीलीवस्त्रस्य धारणात्॥ (आंगिरसस्मृति १४) ।'''''''''''पञ्चयज्ञा वृथा तस्य नीलीवस्त्रस्य धारणात्॥ (आपस्तम्बस्मृति ६। ३)

१३. उत्तरं वासः कर्तव्यं पञ्चस्वेतेषु कर्मसु। स्वाध्यायोत्सर्गदानेषु भोजनाचमनयोस्तथा॥ (बौधायनधर्मसूत्र २। ३। ६। ३९)

भोजन

१. दोनों हाथ, दोनों पैर और मुख—इन पाँच अंगोंको धोकर भोजन करना चाहिये। ऐसा करनेवाला मनुष्य दीर्घजीवी होता है।

२. गीले पैरोंवाला होकर भोजन करे, पर गीले पैर सोये नहीं। गीले पैरोंवाला होकर भोजन करनेवाला मनुष्य लम्बी आयुको प्राप्त करता है।

३. सूखे पैर और अँधेरेमें भोजन नहीं करना चाहिये।

४. शास्त्रमें मनुष्योंके लिये प्रातःकाल और सायंकाल—दो ही समय भोजन करनेका विधान है। बीचमें भोजन करनेकी विधि नहीं देखी गयी है। जो इस नियमका पालन करता है, उसे उपवास करनेका फल प्राप्त होता है।

---

१. हस्तपादे मुखे चैव पञ्चार्द्रो भोजनं चरेत्। पञ्चार्द्रकस्तु भुञ्जानः शतं वर्षाणि जीवति॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। ८८)
'नाप्रक्षालितपाणिपादो भुञ्जीत' (सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। ९८)
'पञ्चार्द्रो भोजनं भुञ्ज्यात्' (महाभारत, शान्ति० १९३। ६)
आर्द्रपादकरास्योऽश्नन्दीर्घकालं च जीवति॥ (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ७२)

२. आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत्। आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात्॥ (मनुस्मृति ४। ७६; अत्रिस्मृति ५। २५-२६)
आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो वर्षाणां जीवते शतम्। (महाभारत, अनु० १०४। ६२)
आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत्। (विष्णुधर्मोत्तर० ३। २३३। १६६)

३. शयनं चार्द्रपादेन शुष्कपादेन भोजनम्। नान्धकारे च शयनं भोजनं नैव कारयेत्॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। १२४)

४. सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं वेदनिर्मितम्। नान्तरा भोजनं दृष्टमुपवासी तथा भवेत्॥ (महाभारत, शान्ति० १९३। १०) ।'''''''''''नान्तरा भोजनं दृष्टमुपवासविधिर्हि सः॥ (महाभारत, अनु० १६२। ४०)।

५. मनुष्यके एक बारका भोजन देवताओंका भाग, दूसरी बारका भोजन मनुष्योंका भाग, तीसरी बारका भोजन प्रेतों व दैत्योंका भाग और चौथी बारका भोजन राक्षसोंका भाग होता है।

६. सन्ध्याकालमें भोजन नहीं करना चाहिये।

७. गृहस्थको चाहिये कि वह पहले देवताओं, ऋषियों, मनुष्यों (अतिथियों), पितरों और घरके देवताओंका पूजन करके पीछे स्वयं भोजन करे।

८. भोजन सदा पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुख करके करना चाहिये।

अन्तरा सायमाशं च प्रातराशं च यो नरः। सदोपवासी भवति यो न भुङ्क्तेऽन्तरा पुनः॥ (महाभारत, अनु० ९३। १०)

सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम्। नान्तराभोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः॥ (लघुहारीतस्मृति ४। ६९; संवर्तस्मृति १२; नरसिंहपुराण ५८। १०७)

द्विर्भोजनं न कर्तव्यं स्थिते सूर्ये द्विजातिभिः। (ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण० ८३। ५९)

सायंप्रातर्द्विजातीनां श्रुत्युक्तमशनं तथा। (पद्मपुराण, पाताल० ७९। ४७)

अन्तरा प्रातराशं च सायमाशं तथैव च। सदोपवासी भवति यो न भुङ्क्ते कदाचनेति॥ (बौधायनधर्मसूत्र २। ७। १३। १२)

५. देवानामेकभुक्तं तु द्विभुक्तं स्यान्नरस्य च। त्रिभुक्तं प्रेतदैत्यस्य चतुर्थं कौणपस्य तु॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। १२९)

६. 'न सन्ध्यायां भुञ्जीत' (वसिष्ठस्मृति १२। ३३)

'न सन्ध्ययोः' (सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। ९८)

आसन्ध्यां न भुञ्जीत। (बौधायनस्मृति २। ३। ३२)

'नाश्नीयात्सन्ध्ययोर्द्वयोः' (पद्मपुराण, पाताल० ९। ५६)

७. देवानृषीन् मनुष्यांश्च पितृन् गृह्याश्च देवताः॥ पूजयित्वा ततः पश्चाद् गृहस्थो भोक्तुमर्हति। (महाभारत, शान्ति० ३६। ३४-३५)

८. प्राङ्मुखऽन्नानि भुञ्जीत। (वसिष्ठस्मृति १२। १५)

'प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि' (लघुहारीतस्मृति ४। ६५)

प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि न चैवान्यमना नरः। (विष्णुपुराण ३। ११। ८०)

पूर्वकी ओर मुख करके खानेसे मनुष्यकी आयु बढ़ती है, दक्षिणकी ओर मुख करके खानेसे प्रेतत्वकी प्राप्ति होती है, पश्चिमकी ओर मुख करके खानेसे मनुष्य रोगी होता है और उत्तरकी ओर मुख करके खानेसे आयु तथा धनकी प्राप्ति होती है।

९. भोजन सदा एकान्तमें ही करना चाहिये।

१०. बिना स्नान किये भोजन करनेवाला मानो विष्ठा खाता है। बिना जप किये भोजन करनेवाला पीब और रक्त खाता है। बिना हवन किये भोजन करनेवाला कीड़े खाता है। देवता, अतिथि आदिको दिये बिना भोजन करनेवाला मदिरा पीता है। संस्कारहीन अन्न खानेवाला मूत्रपान करता है। जो बालक, वृद्ध आदिसे पहले भोजन करता है, वह विष्ठा खानेवाला है। बिना दान किये खानेवाला विषभोजी है।

भुञ्जीत नैवेह च दक्षिणामुखो न च प्रतीच्यामभिभोजनीयम्॥ (वामनपुराण १४। ५१)

प्राच्यां नरो लभेदायुर्याम्यां प्रेतत्वमश्नुते। वारुणे च भवेद्रोगी आयुर्वित्तं तथोत्तरे॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। १२८)

९. आहारनिर्हारविहारयोगाः सुसंवृता धर्मविदा तु कार्याः। (वसिष्ठस्मृति ६। ९)

आहारनीहारविहारयोगाः सुसंवृता धर्मविदानुकार्याः। (स्कन्दपुराण, मा० कौ० ४१। १२९)

कुर्याद्विहारमाहारं निर्हारं विजने सदा। (शुक्रनीति ३। ११२)

१०. विना स्नानेन यो भुङ्क्ते स मलाशी न संशयः। अस्नाताशी मलं भुङ्क्ते ह्यजपः पूयशोणितम्॥ अहुताशी कृमीन्भुङ्क्ते ह्यदाता विषमश्नुते। (वाधूलस्मृति ७५-७६)

अस्नाताशी मलं भुङ्क्ते ह्यजपी पूयशोणितम्। असंस्कृतान्नभुङ्मूत्रं बालादिप्रथमं शकृत्॥ अहोमी च कृमीन्भुङ्क्ते अदत्त्वा विषमश्नुते॥ (विष्णुपुराण ३। ११। ७३-७४)

अस्नाताशी मलं भुङ्क्ते अजापी पूयशोणितम्। अहुत्वा च कृमीन्भुङ्क्ते अदत्त्वा विषभोजनम्॥ (स्कन्दपुराण, प्रभास० २०७। ३५)

अस्नायी च मलं भुङ्क्ते अजपी पूयशोणितम्। (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। ७४)

११. ईख, जल, दूध, कन्द, ताम्बूल, फल और औषध—इनका सेवन स्नान किये बिना भी कर सकते हैं। इनका सेवन करनेके बाद भी स्नान, दान, यज्ञ, तर्पण आदि क्रियाएँ कर सकते हैं।

१२. एक ही वस्त्र पहनकर भोजन नहीं करना चाहिये। सारे शरीरको कपड़ेसे ढककर भी भोजन न करे।

१३. जो मनुष्य सिरको ढककर खाता है, दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके खाता है, जूते पहनकर खाता है और पैर धोये बिना खाता है, उसके उस अन्नको प्रेत खाते हैं तथा उसका वह सारा भोजन आसुर समझना चाहिये।

---

११. इक्षुरापः पयो मूलं ताम्बूलं फलमौषधम्। भक्षयित्वाऽपि कर्तव्याः स्नानदानादिकाः क्रियाः॥ (चाणक्यनीति० ८। २) ''''''कर्तव्यं देवाग्निपितृतर्पणम्॥ (व्याघ्रपादस्मृति २०७)

१२. 'नान्नमद्यादेकवासा' (मनु० ४। ४५)
'नैकवासास्तु भुञ्जीयात्' (वृद्धगौतमस्मृति १३। ५)
'नैकवासा समश्नीयात्' (व्याघ्रपादस्मृति ३४७)
'नैकवस्त्रेण भोक्तव्यम्' (महाभारत, अनु० १०४। ६७)
नैकवासास्तथाश्नीयाद्भिन्नभाण्डे न मानवः॥ (विष्णुधर्मोत्तर० २। ९३। १०)
'एकवासा न भुञ्जीत' (पद्मपुराण, पाताल० ९। ५४)
'नैवान्तर्धाय वै द्विजः' (वृद्धगौतमस्मृति १३। ५)
'न चान्तर्धाय वा द्विजः' (महाभारत, आश्व० ९२)

१३. यद्वेष्टितशिरा भुङ्क्ते यद्भुङ्क्ते दक्षिणामुखः। सोपानत्कश्च यद्भुङ्क्ते तद्वै रक्षांसि भुञ्जते॥ (मनुस्मृति ३। २३८)''''''''''''सर्वं विद्यात् तदासुरम्॥ (महाभारत, अनु० ९०। १९) यो भुङ्क्ते वेष्टितशिरा यस्तु भुङ्क्ते विदिङ्मुखः॥ सोपानत्कश्च यो भुङ्क्ते सर्वं विद्यात्तदासुरम्। (लघुव्याससंहिता २। ८२-८३)

शिरो वेष्ट्य तु यो भुङ्क्ते दक्षिणाभिमुखस्तु यः। वामपादकरः स्थित्वा तद् वै रक्षांसि भुञ्जते॥ (पाराशरस्मृति १। ५९)

अप्रक्षालितपादस्तु यो भुङ्क्ते दक्षिणामुखः। यो वेष्टितशिरा भुङ्क्ते प्रेता भुञ्जन्ति नित्यशः॥ (स्कन्दपुराण, प्रभास० २२३। ३८)

१४. भोजनकी वस्तु गोदमें रखकर नहीं खानी चाहिये।

१५. फूटे हुए बर्तनमें भोजन नहीं करना चाहिये। फूटे हुए बर्तनमें खानेवाला मनुष्य चान्द्रायण व्रत करनेसे शुद्ध होता है।

१६. शय्यापर बैठकर भोजन न करे तथा जल न पीये, हाथमें लेकर भोजन न करे और आसनपर (थाली रखकर) भोजन न करे।

---

१४. 'नोत्सङ्गे भक्षयेद् भक्ष्यम्'
(कूर्मपुराण, उ० १६। ६३; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ६३)
'नोत्सङ्गे भक्षयेद्भक्ष्यात्' (मनुस्मृति ४। ६३; विष्णुधर्मोत्तर० २। ९३। १२)
'नोत्सङ्गे भक्षयेत्' (वसिष्ठस्मृति १२। ३३)
'नोत्सङ्गेऽन्नं भक्षयेत्'
(बौधायनस्मृति २। ३। ३१); (बौधायनधर्मसूत्र २। ३। ६। ५)
भुञ्जानानां तु सव्येन उत्सङ्गे चापि खादताम्। (महाभारत, द्रोण० ७३। ३८)

१५. 'न भिन्नभाण्डे भुञ्जीत'
(मनुस्मृति ४। ६५; ब्रह्मोक्तयाज्ञवल्क्यसंहिता २। १५९)
'न भिन्नपात्रे भुञ्जीत'
(वृद्धगौतमस्मृति १३। ५; सुश्रुतसंहिता चिकित्सा० २४। ९८)
'नाश्नीयात् भिन्नभाजने' (व्याघ्रपादस्मृति ३४७)
'न भिन्नभाजनेऽश्नीयात्' (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ६६)
न भिन्नपात्रे भुञ्जीत पर्णपृष्ठे तथैव च॥ (महाभारत, आश्व० ९२)
भिन्नभाण्डेषु यो भुङ्क्ते द्विजश्चान्द्रायणं चरेत्॥ (महाभारत, आश्व० ९२)

१६. शयनस्थो न भुञ्जीत न पाणिस्थं न चासने॥ (मनुस्मृति ४। ७४)
'न विना पात्रेण' (सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। ९८)
'पाणौ भुञ्जीत नैव च' (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ७२)
शयनस्थो न चाश्नीयान्न पिबेच्च जलं द्विजः॥
(स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ७३)
आसन्द्यां न भुञ्जीत। (बौधायनधर्मसूत्र २। ३। ६। ६)

१७. ठीक अर्धरात्रि, ठीक मध्याह्न, अजीर्ण होनेपर, गीले वस्त्र धारण करके, दूसरेके लिये निर्दिष्ट आसनपर, सोते हुए, खड़े होकर, टूटे-फूटे पात्रमें, भूमिपर तथा हाथपर भोजन नहीं करना चाहिये।

१८. न अन्धकारमें, न आकाशके नीचे और न देवमन्दिरमें ही भोजन करे। एक वस्त्र पहनकर, सवारी या शय्यापर बैठकर, बिना जूता उतारे और हँसते हुए तथा रोते हुए भी भोजन नहीं करना चाहिये।

१९. सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहणके समय भोजन करनेवाला मनुष्य जितने अन्नके दाने खाता है, उतने वर्षोंतक 'अरुन्तुद' नरकमें वास करता है। फिर वह उदररोगसे पीड़ित मनुष्य होता है। फिर गुल्मरोगी, काना और दन्तहीन होता है।

---

१७. नार्धरात्रे न मध्याह्ने नाजीर्णे नार्द्रवस्त्रधृक्। न च भिन्नासनगतो न शयानः स्थितोऽपि वा। न भिन्नभाजने चैव न भूम्यां न च पाणिषु।

(कूर्मपुराण, उ० १९। २०-२१)

नार्धरात्रे न मध्याह्ने नाजीर्णे नार्द्रवस्त्रधृक्॥ न च भिन्नासनगतो न शयानः स्थितोऽपि वा। (लघुव्याससंहिता २। ८३-८४)

१८. नान्धकारे न चाकाशे न च देवालयादिषु॥ नैकवस्त्रस्तु भुञ्जीत न यानशयनस्थितः। न पादुकानिर्गतोऽथ न हसन् विलपन्नपि॥

(कूर्मपुराण, उ० १९। २२-२३)

१९. यो भुङ्क्ते ज्ञानहीनश्च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः॥ अरुन्तुदं स यात्येवाऽप्यन्नमानाब्दमेव च। ततो भवेन्मानवश्चाऽप्युदरे रोगपीडितः॥ गुल्मयुक्तश्च काणश्च दन्तहीनस्ततः शुचिः। (देवीभागवत ९। ३५। ११—१३)

मृतके सूतके चैव गृहीते शशिभास्करे। हस्तिछायान्तु यो भुङ्क्ते पापः स पुरुषो भवेत्॥ (आपस्तम्बस्मृति ९। २८)

२०. बिना नहाये, बिना बैठे, अन्यमनस्क होकर, शय्यापर बैठकर या लेटकर, केवल पृथ्वीपर बैठकर, बोलते हुए, एक वस्त्र पहनकर तथा भोजनकी ओर देखनेवाले मनुष्योंको न देकर कदापि भोजन न करे।

२१. जूठा अन्न किसीको न दे और स्वयं भी न खाये। दूसरेका अथवा अपना—किसीका भी जूठा अन्न न खाये। बीचमें (प्रातः-सायं भोजनके बीचमें) न खाये, बहुत अधिक न खाये और भोजन करके जूठे मुँह कहीं न जाय।

२२. अत्यन्त थका हुआ हो तो विश्राम किये बिना भोजन न करे। अत्यन्त थका हुआ व्यक्ति यदि भोजन या जलपान करे तो उससे ज्वर या वमन होता है।

२३. मल-मूत्रका वेग होनेपर भोजन नहीं करना चाहिये।

२४. अपनेमें प्रेम न रखनेवाले, अपवित्र और भूखसे पीड़ित नौकर आदिके लाये हुए भोजनको नहीं करना चाहिये।

---

२०. नास्नातो नैव संविष्टो न चैवान्यमना नरः॥ न चैव शयने नोर्व्यामुपविष्टो न शब्दकृत्। न चैकवस्त्रो न वदन् प्रेक्षतामप्रदाय च॥

(मार्कण्डेयपुराण ३४। ५९-६०)

..............................प्रेष्याणामप्रदायाथ न भुञ्जीत कदाचन॥

(ब्रह्मपुराण २२१। ५८-५९)

२१. नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा। न चैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद् व्रजेत्॥ (मनुस्मृति २। ५६)

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैतत्तथान्तरा। (भविष्यपुराण, ब्राह्म० ३। ३९)

उच्छिष्टमगुरोरभोज्यं स्वमुच्छिष्टोपहतं च॥ (वसिष्ठस्मृति १४। १७)

२२. श्रमार्तस्य पानं भोजनं च ज्वराय छर्दये वा॥

(नीतिवाक्यामृतम् २५। ४८)

२३. 'न मूत्रोच्चारपीडितः' (सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। ९८)

२४. 'नाभक्ताशिष्टाशुचिक्षुधितपरिचारो' (चरकसंहिता, सूत्र० ८। २०)

२५. भोजन बैठकर ही करना चाहिये। चलते-फिरते कदापि भोजन नहीं करना चाहिये।

२६. किसीके साथ एक पात्रमें भोजन न करे। जिसे रजस्वला स्त्रीने छू दिया हो, ऐसे अन्नका भोजन न करे। जो अन्नकी ओर देख रहा हो, उसे दिये बिना भोजन न करे।

२७. भोजनके स्थानसे उठ जानेके बाद जिसे फिर छू दिया अथवा खा लिया गया हो, जो पैरसे छू गया हो या लाँघ दिया गया हो, उस भोजनको राक्षसी समझकर त्याग देना चाहिये।

२८. जो स्त्रीके भोजन किये हुए पात्रमें भोजन करता है, स्त्रीका जूठा खाता है तथा स्त्रीके साथ एक बर्तनमें भोजन करता है, वह मानो मदिराका पान करता है।

२९. वट, पीपल, आक (मदार), कुम्भी (तरबूज), तिन्दुक, कचनार और करंजके पत्तोंमें कभी भोजन नहीं करना चाहिये।

---

२५. 'खादन्न गच्छेत्' (शुक्रनीति ३। १४३)

निषण्णश्चापि खादेत न तु गच्छन् कदाचन॥ (महाभारत, अनु० १०४। ६०)

२६. समानमेकपात्रे तु भुञ्जेन्नान्नं जनेश्वर॥ नालीढया परिहतं भक्षयीत कदाचन। तथा नोद्धृतसाराणि प्रेक्ष्यते नाप्रदाय च॥

(महाभारत, अनु० १०४। ९०)

२७. उत्थाय च पुनर्भुक्तं पादस्पृष्टञ्च लंघितम्॥ अन्नं तद्राक्षसं विद्यात्तस्मात्तत्परिवर्जयेत्। (वृद्धगौतमस्मृति १३। १७-१८)। उत्थाय च पुनः स्पृष्टं..........

(महाभारत, आश्व० ९२)

२८. स्त्रीपात्रभुङ्नरः पापः स्त्रीणामुच्छिष्टभुक् तथा॥ तया सह च यो भुङ्क्ते स भुङ्क्ते मद्यमेव हि। (महाभारत, आश्व० ९२)

२९. वटाऽश्वत्थाऽर्कपत्रेषु कुम्भीतिन्दुकयोरपि। कोविदारकरञ्जेषु न भुञ्जीत कदाचन॥ (बृहत्पराशरस्मृति ७। १२३)

३०. जो गृहस्थ शुद्ध काँसेके बर्तनमें अकेला ही भोजन करता है, उसकी आयु, बुद्धि, यश और बल—इन चारोंकी वृद्धि होती है। परन्तु रविवारके दिन कांस्यपात्रमें भोजन नहीं करना चाहिये।

३१. यदि कोई आसनपर उकड़ूँ बैठकर अथवा वस्त्र (धोती)-को आधा ओढ़कर भोजन करे अथवा अधिक गरम अन्न लेकर उसे फूँक-फूँककर खाये तो वह चान्द्रायण व्रत करनेसे शुद्ध होता है।

३२. बायें हाथसे भोजन करना अथवा दूध पीना मदिरापानके समान त्याज्य है।

३३. जबतक कलह (झगड़ा), चक्की, ओखली और मूसलका शब्द सुनायी दे, तबतक भोजन नहीं करना चाहिये।

---

३०. एक एव तु यो भुङ्क्ते विमले कांस्यभाजने। चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुः प्रज्ञा यशो बलम्॥

(ब्रह्मोक्तयाज्ञवल्क्यसंहिता २। १६१; व्याघ्रपादस्मृति ३४९-३५०)

..........कांश्यपात्रे च भोजनम्। आर्द्रकं रक्तशाकं च रवौ च परिवर्जयेत्॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण० ७५। ६१)

३१. आसने पादमारूढो वस्त्रस्यार्धमधः कृतम्। मुखेन धमितं भुङ्क्ते द्विजश्चान्द्रायणं चरेत्॥ (बृहद्यमस्मृति ३। ३१)

आसनो पादरूढस्तु न भुञ्जीत कदाचन। (ब्रह्मोक्तयाज्ञवल्क्यसंहिता २। १८५)

'न भुञ्जीतोत्कटासने' (पद्मपुराण, पाताल० ९। ५४)

आसने पादमारूढं प्रत्यक्षं लवणं तथा। मुखेन धमितं चान्नं तुल्यं गोमांसभक्षणम्॥

(व्याघ्रपादस्मृति २३०)

३२. वामहस्तेन यो भुङ्क्ते पयः पिबति वा द्विजः॥ सुरापानेन तत्तुल्यं मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्। (अत्रिस्मृति ५। ६-७)

'भुञ्जानानां तु सव्येन' (महाभारत, द्रोण० ७३। ३८)

३३. कलहघरट्टोलूखलमुसलानां यावच्छब्दस्तावदभोजनम्।

(धर्मसिन्धु ३ पू० आह्निक०)

३४. पानी पीते, आचमन करते तथा भक्ष्य पदार्थोंको खाते समय मुँहसे आवाज नहीं करनी चाहिये। यदि मनुष्य उस समय मुँहसे आवाज करता है तो उसे मदिरापानका पाप लगता है और वह नरकगामी होता है।

३५. परोसे हुए अन्नकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। वह स्वादिष्ट हो या न हो, प्रेमसे भोजन कर लेना चाहिये। जिस अन्नकी निन्दा की जाती है, उसे राक्षस खाते हैं।

३६. अन्नकी नित्य स्तुति करनी चाहिये और अन्नकी निन्दा न करके भोजन करना चाहिये। उसका दर्शन करके हर्षित एवं प्रसन्न होना चाहिये। सत्कारपूर्वक खाये गये अन्नसे बल तथा तेजकी वृद्धि होती

---

३४. अपोशाने वाचमने अद्यद्रव्येषु च द्विजः। शब्दं न कारयेद्विप्रस्तं कुर्वन्नारकी भवेत्॥ (नारदपुराण, पूर्व० २७। ८०)

न च मुखशब्दं कुर्यात्॥ (वसिष्ठस्मृति १२। १७)

शब्देनापोशनं पीत्वा शब्देन घृतपायसम्। शब्देनापः पयः पीत्वा सुरापानसमं भवेत्॥ (व्याघ्रपादस्मृति २३९)

भक्षणे चापि भक्ष्याणां खाद्यानामपि खादने। भोज्यानां भोजने चापि तथा वै लेह्यचोष्ययोः॥ अशब्दं सर्वतः कुर्वन् तत्तत्कर्म समाचरेत्। यदि शब्दं तथा कुर्वन् सद्यो निरयमृच्छति॥ यदि शब्दः समुत्पन्नः पाने वा भक्षणे यदि। महाननर्थो भवेत्सद्यः तद्द्रव्यं मद्यमेव हि॥ (कण्वस्मृति ९८-९९, १०१)

३५. न निन्द्यादन्नभक्ष्यांश्च स्वाद्वस्वादु च भक्षयेत्॥ (महाभारत, शान्ति० १९३। ६)

जुगुप्सितन्तु यच्चान्नं राक्षसा एव भुञ्जते। (वृद्धगौतमस्मृति १३। ७)

'अन्नं न निन्द्यात्।' (तैत्तिरीयोपनिषद् ३। ७)

'न कुत्सयन्न कुत्सितम्' (चरकसंहिता, सूत्र० ८। २०)

जुगुप्सितं च यच्चान्नं राक्षसा एव भुञ्जते। (महाभारत, आश्व० ९२)

३६. पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्। दृष्ट्वा हृष्येत् प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः॥ (कूर्मपुराण, उ० १२। ६१; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५१। ६४-६५)

तथान्नं पूजयेन्नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्। दर्शनात्तस्य हृष्येद्वै प्रसीदेच्चापि भारत॥

है और निन्दा करके खाया हुआ अन्न उन दोनों (बल और वीर्य)-को नष्ट करता है।

३७. ईर्ष्या, भय, क्रोध, लोभ, रोग, दीनता और द्वेषके समय मनुष्य जिस भोजनको करता है, वह अच्छी तरह पचता नहीं अर्थात् उससे अजीर्ण हो जाता है। इसलिये मनुष्यको चाहिये कि वह भोजनके समय अपनेमें काम-क्रोधादि वृत्तियोंको न आने दे, अपितु शान्त और प्रसन्नचित्तसे भोजन करे।

३८. जो आधे खाये हुए मोदक और फलको पुनः खाता है तथा प्रत्यक्ष नमकको खाता है, वह गोमांसभोजी कहा जाता है।

३९. भोजन करके जिस अन्नको छोड़ दे, उसे फिर ग्रहण न करे अर्थात् छोड़े हुए भोजनको फिर कभी नहीं खाना चाहिये।

४०. भोजन करते समय मौन रहना चाहिये।

अभिनन्द्य ततोऽनीयादित्येवं मनुरब्रवीत्। पूजितं त्वशनं नित्यं बलमोजश्च यच्छति॥ अपूजितं तु तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिदम्। (भविष्यपुराण, ब्राह्म० ३। ३७—३९)

पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति। अपूजितं तु तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिदम्॥ (मनुस्मृति २। ५५)

३७. ईर्ष्याभयक्रोधसमन्वितेन लुब्धेन रुग्दैन्यनिपीडितेन। विद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक् परिपाकमेति॥ (भावप्रकाश, दिनचर्या० ५। २२८)

३८. खादितार्द्धं पुनः खादेन्मोदकांश्च फलानि च। प्रत्यक्षं लवणं चैव गोमांसाशीति गद्यते॥ (नारदपुराण, पूर्व० २७। ७९)

३९. यस्त्वन्नमन्तरा कृत्वा लोभादत्ति नृपोत्तम। विनाशं याति स नर इहलोके परत्र च॥ (भविष्यपुराण, ब्राह्म० ३। ४०)

४०. 'ततो मौनेन भुञ्जीत' (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ५। १४०)

पञ्चार्द्रो भोजनं भुञ्ज्यात् प्राङ्मुखो मौनमास्थितः। (महाभारत, शान्ति० १९३। ६)

४१. भोजनके पहले मीठा पदार्थ खाये, बीचमें नमकीन और खट्टी वस्तुएँ खाये। उसके बाद कड़वे और तिक्त पदार्थोंको ग्रहण करे।

४२. पहले रसदार चीजें खाये, बीचमें गरिष्ठ चीजें खाये और अन्तमें पुनः द्रव-पदार्थ ग्रहण करे। इससे मनुष्य कभी बल और आरोग्यसे हीन नहीं होता।

४३. संन्यासीको आठ ग्रास, वानप्रस्थको सोलह ग्रास और गृहस्थको बत्तीस ग्रास भोजन करने चाहिये। ब्रह्मचारीके लिये ग्रासोंकी कोई नियत संख्या नहीं है।

४४. मुखमें पड़नेलायक ग्रास उठाये। जो ग्रास अपने मुखमें जानेकी अपेक्षा बड़ा होनेके कारण एक बारमें न खाया जा सके, उसमेंसे

---

४१. अश्नीयात्तन्मयो भूत्वा पूर्वं तु मधुरं रसम्। लवणाम्लौ तथा मध्ये कटुतिक्तादिकांस्ततः॥ (विष्णुपुराण ३। ११। ८७)

पूर्वं मधुरमश्नीयात् लवणाम्लौ च मध्यतः। कटुतिक्तकषायांश्च पयश्चैव तथान्ततः॥ (गरुड़पुराण, आचार० २०५। १४४)

४२. प्राग्द्रवं पुरुषोऽश्नीयान्मध्ये कठिनभोजनः। अन्ते पुनर्द्रवाशी तु बलारोग्ये न मुञ्चति॥ (विष्णुपुराण ३। ११। ८८)

४३. अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्ष्याः षोडशाऽरण्यवासिनः। द्वात्रिंशतं गृहस्थस्याऽपरिमितं ब्रह्मचारिणः॥

(आपस्तम्बधर्मसूत्र २। ४। ९। १३); (बौधायनधर्मसूत्र २। ७। १३। ८)

अष्टौ ग्रासा मुनेर्भुक्तं वानप्रस्थस्य षोडशः। द्वात्रिंशत्तु गृहस्थस्य अमितं ब्रह्मचारिणः॥ (वसिष्ठस्मृति ६। १८)

४४. वक्त्राधिकन्तु यत्पिण्डमात्मोच्छिष्टन्तदुच्यते। दष्टावशिष्टमन्नञ्च वक्त्रान्निःसृतमेव च॥ अभोज्यन्तद्विजानीयान् भुक्त्वा चान्द्रायणञ्चरेत्। स्वमुच्छिष्टन्तु यो भुङ्क्ते यो भुङ्क्ते मुक्तभाजने॥ चान्द्रायणञ्च यत्कृच्छ्रं प्राजापत्यमथापि वा। (वृद्धगौतमस्मृति १३। १३—१५)

वक्त्रप्रमाणान् पिण्डांश्च ग्रसेदेकैकशः पुनः। वक्त्राधिकं तु यत् पिण्डमात्मोच्छिष्टं तदुच्यते॥ पिण्डावशिष्टमन्यच्च वक्त्रान्निस्सृतमेव च। अभोज्यं तद् विजानीयाद् भुक्त्वा

बचा हुआ ग्रास अपना उच्छिष्ट (जूठा) कहा जाता है। ग्राससे बचे हुए तथा मुँहसे निकले हुए अन्नको अखाद्य समझे। उसे खा लेनेपर चान्द्रायण व्रत करे। जो अपना जूठा खाता है तथा एक बार खाकर छोड़े हुए भोजनको फिर ग्रहण करता है, उसे चान्द्रायण, कृच्छ्र अथवा प्राजापत्य व्रतका आचरण करना चाहिये।

४५. देवताओं और पितरोंको अर्पित किये बिना खीर, हलवा और पूआ (मालपूआ) नहीं खाना चाहिये। इनको अपने लिये न बनाकर देवताओं अथवा पितरोंको अर्पण करनेके लिये ही बनाना चाहिये।

चान्द्रायणं चरेत्। स्वमुच्छिष्टं तु यो भुङ्क्ते यो भुङ्क्ते मुक्तभोजनम्॥ चान्द्रायणं चरेत् कृच्छ्रं प्राजापत्यमथापि वा। (महाभारत, आश्व० ९२)

न पिण्डशेषं पात्र्यामुत्सृजेत्॥ (बौधायनधर्मसूत्र २। ३। ६। १)

४५. वृथा कृसरसंयावं पायसापूपमेव च।.................देवान्नानि हवींषि च॥ (मनुस्मृति ५। ७)

कृसरापूपसंयावपायसं शष्कुलीति च। नाश्नीयाद्.........अनियुक्तः कथञ्चन॥ (व्यासस्मृति ३। ५३)

वृथा कृषरसंयावपायसापूपशष्कुलीः॥ (याज्ञवल्क्यस्मृति १। १७३)

वृथा कृशरसंयावपायसापूपमेव च।.................देवान्नानि हवींषि च॥

(कूर्मपुराण, उ० १७। २२; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५६। २२-२३)

वृथा कृसरसंयावपायसापूपशष्कुलीः॥ (गरुड़पुराण, आचार० ९६। ६८)

संयावं कृसरं.........शष्कुलीं पायसं तथा। आत्मार्थं न प्रकर्तव्यं देवार्थं तु प्रकल्पयेत्॥ (महाभारत, अनु० १०४। ४१)

पायसं कृसरं.........अपूपाश्च वृथाकृताः॥ अपेयाश्चाप्यभक्ष्याश्च ब्राह्मणैर्गृहमेधिभिः। (महाभारत, शान्ति० ३६। ३३-३४)

.........पायसापूपशष्कुली। अदेवपित्र्यं.........अवत्सागोपयस्त्यजेत्॥

(स्कन्दपुराण, काशी० पू० ४०। १०)

४६. मनुष्यको सदा ऐसे अन्नका भोजन करना चाहिये, जो पथ्य (हितकारी) हो, सीमित हो, शुद्ध हो, रसयुक्त हो, हृदयको आनन्द देनेवाला हो, स्निग्ध (चिकना) हो, देखनेमें प्रिय हो और गर्म हो।

४७. आयु, सत्त्वगुण, बल, आरोग्य, सुख और प्रसन्नता बढ़ानेवाले, स्थिर रहनेवाले, हृदयको शक्ति देनेवाले, रसयुक्त तथा चिकने भोजनके पदार्थ 'सात्त्विक' मनुष्यको प्रिय होते हैं।

अति कड़वे, अति खट्टे, अति नमकीन, अति गरम, अति तीखे, अति रूखे और अति दाहकारक भोजनके पदार्थ 'राजस' मनुष्यको प्रिय होते हैं, जो कि दुःख, शोक और रोगोंको देनेवाले हैं।

जो भोजन सड़ा हुआ, रसरहित, दुर्गन्धित, बासी और जूठा है तथा जो महान् अपवित्र (मांस, मछली, अण्डा आदि) है, वह 'तामस' मनुष्यको प्रिय होता है।

४८. शहद, जल, दूध, दही, घी, खीर और सत्तूको छोड़कर

---

४६. पथ्यं मितं च शुद्धं च रस्यं हृदयनन्दनम्। स्निग्धं दृष्टिप्रियं चोष्णमन्नं भोज्यं मनीषिभिः॥ (शाण्डिल्यस्मृति ४। १४३)

४७. आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः। रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥ कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः। आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः॥ यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्। उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥ (गीता १७। ८—१०)

४८. नाशेषं पुरुषोऽश्नीयादन्यत्र जगतीपते। मध्वम्बुदधिसर्पिर्भ्यस्सक्तुभ्यश्च विवेकवान्॥ (विष्णुपुराण ३। ११। ८६)

सर्वं सशेषमश्नीयान्निःशेषं घृतपायसम्। क्षीरं दधि मधु भुञ्जीत। (धर्मसिन्धु ३ पू० आह्निक)

पात्रमें परोसे हुए अन्य पदार्थोंका भक्षण सम्पूर्ण रूपमें नहीं करना चाहिये।

४९. भोजनके अन्तमें दही नहीं पीना चाहिये।

५०. रात्रिमें भरपेट भोजन नहीं करना चाहिये।

५१. अधिक भोजन करना आरोग्य, आयु, स्वर्ग और पुण्यका नाश करनेवाला तथा लोकमें निन्दा करानेवाला है। इसलिये अति भोजनका परित्याग करना चाहिये।

५२. थोड़ा भोजन करनेवालेको छः गुण प्राप्त होते हैं—आरोग्य, आयु, बल और सुख तो मिलते ही हैं, उसकी सन्तान सुन्दर होती है तथा 'यह बहुत खानेवाला है' ऐसा कहकर लोग उसपर आक्षेप नहीं करते।

'नाशेषभुक् स्यादन्यत्र दधिमधुलवणसक्तुसर्पिभ्यः' (चरकसंहिता, सूत्र० ८। २०)

निःशेषकृत्तथा राम न स्यादन्यत्र माक्षिकात्। क्षीरस्य राम सक्तूनां पायसस्योदकस्य च॥ शेषं तु कार्यमन्यस्य न तु निःशेषकृद्भवेत्। (विष्णुधर्मोत्तर० २। ९३। १६-१७)

४९. दधि चाप्यनुपानं वै न कर्तव्यं भवार्थिना॥ (महाभारत, अनु० १०४। ९९)

५०. 'नाद्यादातृप्ति रात्रिषु' (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ६३)

५१. अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम्। अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात् तत्परिवर्जयेत्॥ (कूर्मपुराण, उ० १२। ६२; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५१। ६५-६६; मनुस्मृति २। ५७; भविष्यपुराण, ब्राह्म० ३। ५०; स्कन्दपुराण, काशी० पू० ३६। १९)

५२. गुणाश्च षण्मितभुक्तं भजन्ते आरोग्यमायुश्च बलं सुखं च। अनाविलं चास्य भवत्यपत्यं न चैनमाद्यून इति क्षिपन्ति॥ (महाभारत, उद्योग० ३७। ३४)

५३. पैरों और हाथोंको भलीभाँति धोकर, आचमन करके, पवित्र तथा चारों ओरसे घिरे स्थानमें बैठकर, प्राप्त अन्नको आदरपूर्वक ग्रहण करके, काम, क्रोध, द्रोह, लोभ और मोहका त्याग करके सभी अँगुलियोंसे अन्नको मुँहमें डालते हुए बिना शब्द किये भोजन करना चाहिये।

५३. सुप्रक्षालितपादपाणिराचान्तश्शुचौ संवृते देशेऽन्नमुपहतमुपसङ्गृह्य कामक्रोधद्रोहलोभमोहानपहत्य सर्वाभिरङ्गुलीभिः शब्दमकुर्वन्प्राश्नीयात्॥
(बौधायनधर्मसूत्र २।३।५।२१)

अन्न

१. केश और कीड़ोंसे युक्त, जिस अन्नके प्रति दूषित भावना हो, कुत्तेद्वारा सूँघा हुआ, दुबारा पकाया गया, चाण्डाल, रजस्वला तथा पतितके द्वारा देखा गया, गौद्वारा सूँघा हुआ, अनादरपूर्वक प्राप्त, बासी तथा पर्यायान्न (जो अन्य स्वामिक है और अन्यको दिया जाय)-का नित्य परित्याग करना चाहिये। जिसे कौए अथवा मुर्गेने छू लिया हो, जो कृमियुक्त हो, जो मनुष्योंद्वारा सूँघा अथवा कोढ़ीसे छू गया हो, जिसे रजस्वला, व्यभिचारिणी अथवा रोगिणी स्त्रीने दिया हो और जिसे मैले वस्त्र धारण करनेवाले व्यक्तिने दिया हो, ऐसे अन्नका त्याग कर देना चाहिये।

२. मतवाले, क्रुद्ध और रोगीके अन्नको एवं केश, कीटसे दूषित अन्नको तथा इच्छापूर्वक पैरसे छुए अन्नको कभी न खाये।

३. गर्भहत्या करनेवालेके देखे हुए, रजस्वला स्त्रीसे छुए हुए, पक्षीसे खाये हुए और कुत्तेसे छुए हुए अन्नको नहीं खाना चाहिये।

१. केशकीटावपन्नं च सहृल्लेखं च नित्यशः। श्वाघ्रातं च पुनः सिद्धं चण्डालावेक्षितं तथा॥ उदक्यया च पतितैर्गवा चाघ्रातमेव च। अनर्चितं पर्युषितं पर्यायान्नं च नित्यशः॥ काककुक्कुटसंस्पृष्टं कृमिभिश्चैव संयुतम्। मनुष्यैरप्यवघ्रातं कुष्ठिना स्पृष्टमेव च॥ न रजस्वलया दत्तं न पुंश्चल्या सरोषया। मलवद्वाससा वापि परवासोऽथ वर्जयेत्॥ (कूर्मपुराण, उ० १७।२६—२९) कृमिकीटावपन्नं च सुहृल्लेदं ...... पुंश्चल्या सरोगया॥ (पद्मपुराण, स्वर्ग० ५६।२६—३०)। केशकीटावपन्नम्॥ (गौतमधर्मसूत्र २।...३)

२. मत्तक्रुद्धातुराणां च न भुञ्जीत कदाचन। केशकीटावपन्नं च पदा स्पृष्टं च कामतः॥
(मनुस्मृति ४। २०७)

३. भ्रूणघ्नावेक्षितं चैव संस्पृष्टं चाप्युदक्यया। पतत्त्रिणावलीढं च शुना संस्पृष्टमेव च॥ (मनुस्मृति ४। २०८)। रजस्वलाकृष्णशकुनिपदोपहतम्।
(गौतमधर्मसूत्र १।८।१०)

४. गौके सूँघे हुए, किसीके लिये घोषित अन्नको, समूहके अन्नको, वेश्याके अन्नको और विद्वान्‌से निन्दित अन्नको नहीं खाना चाहिये।

५. बायें हाथसे लाया गया अथवा परोसा गया अन्न, बासी भात, शराब मिला हुआ, जूठा और घरवालोंको न देकर अपने लिये बचाया हुआ अन्न खानेयोग्य नहीं है।

६. उग्र स्वभाववाले मनुष्यका, समुदायका, श्राद्धका, सूतकका, दुष्ट पुरुषका और शूद्रका अन्न कभी नहीं खाना चाहिये।

७. कुत्तेद्वारा छुआ हुआ, पतितद्वारा देखा हुआ, रजस्वलासे छुआ हुआ, घोषित किया हुआ तथा अन्यके निमित्त रखा हुआ अन्न त्याज्य है। गायसे सूँघा हुआ, पक्षियोंके द्वारा जूठा और जान-बूझकर पैरसे छुआ हुआ अन्न भी त्याज्य है।

८. उन्मत्त, क्रोधी और दुःखसे आतुर मनुष्यका अन्न कभी भोजन नहीं करना चाहिये।

---

४. गवा चान्नमुपाघ्रातं घुष्टान्नं च विशेषतः। गणान्नं गणिकान्नं च विदुषां च जुगुप्सितम्॥ (मनुस्मृति ४। २०९)। गवोपघ्रातम्। (गौतमधर्मसूत्र २। ८। १३)

५. वामहस्ताहृतं चान्नं भक्तं पर्युषितं च यत्॥ सुरानुगतमुच्छिष्टमभोज्यं शेषितं च यत्। (महाभारत, शान्ति० ३६। ३१-३२)

६. उग्रान्नं गर्हितं देवि गणान्नं श्राद्धसूतकम्। दुष्टान्नं नैव भोक्तव्यं शूद्रान्नं नैव कर्हिचित्॥ (महाभारत, अनु० १४३। १७)

७. शुक्तं पर्युषितोच्छिष्टं श्वस्पृष्टं पतितेक्षितम्॥ उदक्यास्पृष्टसंघुष्टं पर्यायान्नञ्च वर्जयेत्। गोघ्रातं शकुनोच्छिष्टं पदा स्पृष्टञ्च कामतः॥ (याज्ञवल्क्यस्मृति १। १६६-१६७)

भक्तं पर्य्युषितोच्छिष्टं श्वस्पृष्टं पतितोक्षितम्। उदक्यास्पृष्टसंघुष्टं अपर्य्याप्तञ्च वर्जयेत्। गोघ्रातं शकुनोच्छिष्टं पादस्पृष्टञ्च कामतः॥

(गरुड़पुराण, आचार० ९६। ६४)

८. मत्तक्रुद्धातुराणां च न भुञ्जीत कदाचन। (अग्निपुराण १६८। २)

९. केश व कीटसे युक्त, जान-बूझकर पैरसे छूआ हुआ, भ्रूणहत्या करनेवालेका देखा हुआ, रजस्वला स्त्रीका छूआ हुआ, कौए आदि पक्षियोंका जूठा किया हुआ, कुत्तेका स्पर्श किया हुआ अथवा गौका सूँघा हुआ अन्न न खाये।

१०. जिसको किसीने लाँघ दिया हो, जो लड़ाई-झगड़ा करते हुए तैयार किया गया हो, जिसपर रजस्वला स्त्रीकी दृष्टि पड़ गयी हो, जिसमें केश या कीड़े पड़ गये हों, जिसपर कुत्तेकी दृष्टि पड़ गयी हो तथा जो रोकर और तिरस्कारपूर्वक दिया गया हो, वह अन्न राक्षसोंका भाग है।

११. जिस भोजनमें बाल या कोई कीड़ा पड़ा हो, जिसे मुँहसे फूँककर ठण्डा किया गया हो, उसको अखाद्य समझना चाहिये। ऐसे अन्नको भोजन कर लेनेपर चान्द्रायण-व्रत करना चाहिये।

१२. जिसके लिये लोगोंमें ढिंढोरा पीटा गया हो, जिसमेंसे किसी व्रतहीन, असत्यवादी मनुष्यने भोजन कर लिया हो तथा जो कुत्तेसे छू गया हो, उस अन्नको राक्षसोंका भाग समझना चाहिये।

---

९. केशकीटावपन्नं च पादस्पृष्टं च कामतः॥ भ्रूणघ्नावेक्षितं चैव संस्पृष्टं वाप्युदक्यया। काकाद्यैरवलीढं च शुनासंस्पृष्टमेव च॥ गवाद्यैरन्नमाघ्रातं भुक्त्वा त्र्यहमुपावसेत्।
(अग्निपुराण १७३। ३२—३४)

१०. लङ्घितं चावलीढं च कलिपूर्वं च यत् कृतम्। रजस्वलाभिदृष्टं च तं भागं रक्षसां विदुः॥ केशकीटावपतितं क्षुतं श्वभिरवेक्षितम्। रुदितं चावधूतं च तं भागं रक्षसां विदुः॥ (महाभारत, अनु० २३। ४, ६)

११. केशकीटोपपन्नं च मुखमारुतवीजितम्। अभोज्यं तद् विजानीयाद् भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥ (महाभारत, आश्व० ९२)

मुखेन धमितं चान्नं तुल्यं गोमांसभक्षणम्॥ (व्याघ्रपादस्मृति २३०)

१२. अवघुष्टं च यद् भुक्तमव्रतेन च भारत। परामृष्टं शुना चैव तं भागं रक्षसां विदुः॥ (महाभारत, अनु० २३। ५)

अवघुष्टं च यद् भुक्तमनृतेन च भारत। परामृष्टं शुना वापि तद् भागं राक्षसं विदुः॥ (महाभारत, आश्व० ९२)

१३. जिस अन्नमें थूक पड़ गयी हो, जिसमें कीड़े पड़े हों, जो जूठा हो, जिसमें बाल गिरा हो, जो तिरस्कारपूर्वक प्राप्त हुआ हो, जो अश्रुपातसे दूषित हो गया हो तथा जिसे कुत्तेने छू दिया हो, वह सारा अन्न राक्षसोंका भाग है। जो ऐसे अन्नको खाता है, वह मानो राक्षसोंका अन्न खाता है।

१४. मनुष्यका सारा पाप उसके अन्नमें स्थित होता है। अतः जो जिसका अन्न खाता है, वह उसका पाप भोजन करता है।

१५. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—इनमेंसे जिसका अन्न मृत्युके समय पेटमें रहता है, उसी योनिकी प्राप्ति होती है।

१६. शत्रु, यज्ञ, गण, वेश्या और सूदखोरका भोजन नहीं करना चाहिये।

१७. पुजारी तथा पुरोहितका अन्न खानेपर चान्द्रायण-व्रत करना चाहिये।

---

१३. क्षुतं कीटावपन्नं च यच्चोच्छिष्टाचितं भवेत्। सकेशमवधूतं च रुदितोपहतं च यत्॥ श्वभिः संसृष्टमन्नं च भागोऽसौ रक्षसामिह। तस्माज्ज्ञात्वा सदा विद्वानेतान् यत्नाद् विवर्जयेत्॥ राक्षसान्नमसौ भुङ्क्ते यो भुङ्क्ते ह्यन्नमीदृशम्।

(महाभारत, शल्य० ४३। २६—२८)

१४. दुष्कृतं हि मनुष्याणामन्नमाश्रित्य तिष्ठति। यो यस्यान्नं समश्नाति स तस्याश्नाति किल्बिषम्॥ (आंगिरसस्मृति ५८)

दुष्कृतं हि मनुष्यस्य सर्वमन्ने व्यवस्थितम्। यो यस्यान्नं समश्नाति स तस्याश्नाति किल्बिषम्॥ (पद्मपुराण, स्वर्ग० १७। १५-१६; कूर्मपुराण, उ० १७। १५)

१५. ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्रस्य च मुनीश्वराः। यस्यान्नेनोदरस्थेन मृतस्तद्योनिमाप्नुयात्॥

(कूर्मपुराण, उ० १७। ३; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५६। ३)

१६. शत्रुसत्रगणाकीर्णगणिकापणिकाशनम्। (अष्टांगहृदय, सूत्र० २। ४३)

१७. कुण्डान्नं गोलकान्नं च देवलान्नं तथैव च। तथा पुरोहितस्यान्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥ (महाभारत, आश्व० ९२)

१८. मरणाशौच तथा जननाशौचका अन्न खा लेनेपर चान्द्रायण-व्रत करना चाहिये।

१९. राजा, नर्तक, बढ़ई, चमार, समुदाय, वेश्या और नपुंसकके अन्नका त्याग करना चाहिये। तेली, धोबी, चोर, शराब बेचनेवाले, गायक, लुहार तथा सूतकके अन्नका भी त्याग करना चाहिये।

२०. बिना सत्कारपूर्वक दिया हुआ, पति-पुत्रहीन स्त्री, शत्रु, नगरपति, पतितके अन्नको तथा जिसके ऊपर छींक दिया गया हो, ऐसे अन्नको न खाये।

२१. चुगलखोर, असत्यभाषी, नट, दर्जी और कृतघ्नके अन्नको न खाये।

२२. कुम्हार, चित्रकार, सूदखोर, पतित, द्वितीय पति स्वीकार करनेवाली स्त्रीके पुत्र, नापित, अभिशापग्रस्त, सुनार, नट, व्याध, बन्धनमें पड़े हुए, रोगी, चिकित्सक, व्यभिचारिणी स्त्री, दण्डधारी, चोर, नास्तिक, देवनिन्दक, सोमरसका विक्रय करनेवाले, चाण्डाल,

---

१८. मृतसूतकयोश्चान्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्। (महाभारत, आश्व० ९२)

१९. राजान्नं नर्तकान्नं च तक्ष्णोऽन्नं चर्मकारिणः। गणान्नं गणिकान्नं च षण्ढान्नं चैव वर्जयेत्॥ चक्रोपजीविरजकतस्करध्वजिनां तथा। गान्धर्वलोहकारान्नं सूतकान्नं च वर्जयेत्॥ (कूर्मपुराण, उ० ७। ४-५)

राजान्नं नर्तकान्नं च षण्ढान्नं चर्मकारिणाम्। गणान्नं गणिकान्नं च षडन्नं च विवर्जयेत्॥.................मृतकान्नं विवर्जयेत्॥ (पद्मपुराण, स्वर्ग० ५६। ४-५)

२०. अनर्चितं.......अवीरायाश्च योषितः। द्विषदन्नं नगर्यन्नं पतितान्नमवक्षुतम्॥

(मनुस्मृति ४। २१३)

२१. पिशुनानृतिनोश्चान्नं क्रतुविक्रयिणस्तथा। शैलूषतुन्नवायान्नं कृतघ्नस्यान्नमेव च॥ (मनुस्मृति ४। २१४)

२२. कुलालचित्रकर्मान्नं वार्धुषेः पतितस्य च। पौनर्भवच्छत्रिकयोरभिशस्तस्य चैव हि॥ सुवर्णकारशैलूषव्याधबद्धातुरस्य च। चिकित्सकस्य चैवान्नं पुंश्चल्या दण्डिकस्य च॥ स्तेननास्तिकयोरन्नं देवतानिन्दकस्य च। सोमविक्रयिणश्चान्नं

स्त्रीके वशीभूत रहनेवाले, स्त्रीके उपपतिको घरमें रखनेवाले, समाजद्वारा परित्यक्त, कृपण और जूठा खानेवाले मनुष्योंका अन्न त्याज्य है।

२३. लोहार, मल्लाह, रंगसाज, सुनार, बाँसके बर्तन बनाकर बेचनेवाला तथा शस्त्र बेचनेवाला—इनका अन्न नहीं खाना चाहिये।

२४. कुत्ता पालनेवाले, मद्य-विक्रेता, धोबी, रंगरेज, नृशंस और जिसके घरमें जार हो, उसके अन्नको नहीं खाना चाहिये।

२५. घरमें स्त्रीके जारको सहन करनेवाले, स्त्रीके वशीभूत तथा बिना दस दिन बीते सूतकके अन्नको और अतुष्टिकारक अन्नको न खाये।

२६. ज्यौतिषी, गणिका, गायक, अभिशप्त, नपुंसक, धोबी, भाट, जुआरी, ढोंगी तपस्वी, चोर, जल्लाद, कुण्डगोलक (व्यभिचारसे पैदा हुए), स्त्रियोंद्वारा पराजित, वेदोंका विक्रय करनेवाले, नट, जुलाहे,

---

श्वपाकस्य विशेषतः॥ भार्याजितस्य चैवान्नं यस्य चोपपतिर्गृहे। उत्सृष्टस्य कदर्यस्य तथैवोच्छिष्टभोजिनः॥

(कूर्मपुराण, उ० १७। ६—९; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५६। ६—९)

२३. कर्मारस्य निषादस्य रङ्गावतारकस्य च। सुवर्णकर्तुर्वेणस्य शस्त्रविक्रयिणस्तथा॥ (मनुस्मृति ४। २१५)

२४. श्ववतां शौण्डिकानां च चैलनिर्णेजकस्य च। रञ्जकस्य नृशंसस्य यस्य चोपपतिर्गृहे॥ (मनुस्मृति ४। २१६)

२५. मृष्यन्ति ये चोपपतिं स्त्रीजितानां च सर्वशः। अनिर्दशं च प्रेतान्नमतुष्टिकरमेव च॥ (मनुस्मृति ४। २१७)

२६. गणान्नं गणिकान्नं च वार्द्धुषेर्गायनस्य च। अभिशस्तस्य षण्डस्य यस्याश्चोपपतिर्गृहे॥ रजकस्य नृशंसस्य वन्दिनः कितवस्य च। मिथ्यातपस्विनश्चैव चौरदण्डिकयोस्तथा॥ कुण्डगोलस्त्रीजितानां वेदविक्रयिणस्तथा। शैलूषतन्तुवायान्नं कृतघ्नस्यान्नमेव च॥ कर्मारस्य निषादस्य चेलनिर्णेजकस्य च। मिथ्याप्रव्रजितस्यान्नं पुंश्चल्यास्तैलिकस्य च॥

कृतघ्न, लोहार, निषाद, रंगरेज, ढोंगी संन्यासी, कुलटा स्त्री, तेली और शत्रुके अन्नका सदैव परित्याग करे।

२७. कृपण, बन्धनमें पड़ा हुआ, चोर, नपुंसक, रंगावतारी (नट आदि), वैण (बाँसको छेदकर जीविका चलानेवाला), अभिशस्त (पातकी), वार्धुषी (कुत्सित सूद कमानेवाला), वेश्या, बहुयाचक, वैद्य, रोगी, क्रोधी, व्यभिचारिणी, अभिमानी, शत्रु, क्रूर, उग्र, पतित, व्रात्य (संस्कारहीन), दाम्भिक, जूठा खानेवाला, पति-पुत्रसे रहित स्त्री, सुनार, स्त्रीके वशीभूत, गाँवभरका यजन करनेवाला, शस्त्र बेचनेवाला, लुहार, जुलाहा या दर्जी, कुत्तोंसे जीविका चलानेवाला, निर्दयी, राजा, कपड़ा रंगनेवाला, कृतघ्न, प्राणियोंके वधसे जीविका चलानेवाले, धोबी, मद्य बेचनेवाला, जिसके घरमें जार रहता हो, पिशुन (दूसरेका दोष प्रकाशित करनेवाला), झूठ बोलनेवाला, तेली या गाड़ीवान्, वन्दीजन तथा सोमविक्रयी—इनका अन्न नहीं खाना चाहिये।

आरूढपतितस्यान्नं विद्विष्टान्नं च वर्जयेत्।

(अग्निपुराण १६८। ३—७)

२७. कदर्यबद्धचौराणां क्लीवरंगावतारिणाम्। वैणाभिशस्तवार्धुष्यगणिकागणदीक्षिणाम्॥ चिकित्सकातुरक्रुद्धपुंश्चलीमत्तविद्विषाम्। क्रूरोग्रपतितव्रात्यदाम्भिकोच्छिष्टभोजिनाम्॥ अवीरास्त्रीस्वर्णकारस्त्रीजितग्रामयाजिनाम्। शस्त्रविक्रयिकर्मारतन्तुवायश्ववृत्तिनाम्॥ नृशंसराजरजककृतघ्नवधजीविनाम्। चैलधावसुराजीवसहोपपतिवेश्मनाम्॥ पिशुनानृतिनोश्चैव तथा चक्रिकबन्दिनाम्। एषामन्नं न भोक्तव्यं सोमविक्रयिणस्तथा॥ (याज्ञवल्क्यस्मृति १। १६१—१६५)

कदर्यं बद्धवैराणां तथाचानग्निकस्य च। वैणाभिशस्तवार्द्धुष्यगणिकागणदीक्षिणाम्। पात्रान्तरचिकित्सानां क्लीवरंगोपजीविनाम्॥ क्रूरोग्रपतितव्रात्यदाम्भिकोच्छिष्टभोजिनाम्। शस्त्रविक्रयिणश्चैव स्त्रीजितग्रामयाजिनाम्॥ नृशंसराजरजककृतघ्नवधजीविनाम्। पिशुनानृतिनोश्चैव सोमविक्रयिणस्तथा॥ वन्दिनां स्वर्णकाराणामन्नमेषां कदाचन। (गरुड़पुराण, आचार० ९६। ५९—६३)

२८. चोर, गायक, बढ़ई, ब्याजखोर, यज्ञमें दीक्षित, कृपण, बन्धनमें पड़े हुए, नपुंसक, व्यभिचारिणी स्त्री, दम्भी, शूद्र, वैद्य, शिकारी, क्रूर, जूठा खानेवाले तथा उग्र-स्वभाववालेके अन्नको न खाये। बासी तथा किसीके भी जूठे अन्नको न खाये।

२९. कंजूस, यज्ञ बेचनेवाले, बढ़ई, चमार, व्यभिचारिणी स्त्री, धोबी, वैद्य तथा चौकीदारका अन्न खानेयोग्य नहीं है। जिन्हें समाज या गाँवने दोषी ठहराया हो, जो नर्तकीके द्वारा अपनी जीविका चलाते हों, छोटे भाईका विवाह हो जानेपर भी कुँआरे रह गये हों, बन्दी (चारण या भाट)-का काम करते हों या जुआरी हों, ऐसे लोगोंका अन्न ग्रहण करनेयोग्य नहीं है।

३०. नपुंसक, संन्यासी, मत्त, उन्मत्त, भयभीत और रोते हुए व्यक्तिके तथा अभिशप्त एवं छींकसे दूषित अन्नको ग्रहण न करे। ब्राह्मणसे द्वेष रखनेवाले, पापबुद्धि, श्राद्ध तथा सूतकका अन्न भी ग्रहण न करे।

---

२८. स्तेनगायनयोश्चान्नं तक्ष्णो वार्धुषिकस्य च। दीक्षितस्य कदर्यस्य बद्धस्य निगडस्य च॥ अभिशस्तस्य षण्ढस्य पुंश्चल्या दाम्भिकस्य च। शुक्तं पर्युषितं चैव शूद्रस्योच्छिष्टमेव च॥ चिकित्सकस्य मृगयोः क्रूरस्योच्छिष्टभोजिनः। उग्रान्नं सूतिकान्नं च पर्याचान्तमनिर्दशम्॥ (मनुस्मृति ४। २१०—२१२)

२९. दीक्षितस्य कदर्यस्य क्रतुविक्रयिकस्य च। तक्ष्णश्चर्मावकर्तुश्च पुंश्चल्या रजकस्य च॥ चिकित्सकस्य यच्चान्नमभोज्यं रक्षिणस्तथा। गणग्रामाभिशस्तानां रङ्गस्त्रीजीविनां तथा॥ परिवित्तीनां पुंसां च बन्दिद्यूतविदां तथा।

(महाभारत, शान्ति० ३६। २९—३१)

३०. क्लीबसंन्यासिनोश्चान्नं मत्तोन्मत्तस्य चैव हि। भीतस्य रुदितस्यान्नमवक्रुष्टं परिक्षुतम्॥ ब्रह्मद्विषः पापरुचेः श्राद्धान्नं सूतकस्य च।

(कूर्मपुराण, उ० १७। १०-११; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५६। १०-११)

३१. राजाका अन्न तेज हर लेता है। शूद्रका अन्न ब्रह्मतेजको नष्ट कर देता है। सुनारका अन्न आयुको और चमारका अन्न यशको ले लेता है। बढ़ई (कारुक, कारीगर, शिल्पी)-का अन्न सन्तानका नाश करता है। धोबी (रंगरेज)-का अन्न बलको क्षीण करता है। किसी समूह (गण)-का अन्न तथा वेश्याका अन्न स्वर्गादि पुण्यलोकोंको नष्ट कर देता है।

३२. पति और पुत्रसे हीन स्त्रीका अन्न आयुका नाश करता है। ब्याजखोरका अन्न विष्ठाके समान और वेश्याका अन्न वीर्यके समान है। स्त्रीके वशीभूत रहनेवाले पुरुषोंका अन्न भी वीर्यके ही समान है।

३३. जबतक अपनी विवाहिता कन्याकी सन्तान न हो, तबतक पिताको उसके घरका अन्न नहीं खाना चाहिये। यदि उसके घरका अन्न खाता है तो नरकमें जाता है।

३४. यदि कोई मनुष्य वन्ध्या स्त्रीके घर भोजन करता है तो वह नरकमें जाता है।

---

३१. राजान्नं तेज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम्। आयुः सुवर्णकारान्नं यशश्चर्मावकर्तिनः॥ कारुकान्नं प्रजां हन्ति बलं निर्णेजकस्य च। गणान्नं गणिकान्नं च लोकेभ्यः परिकृन्तति॥

(मनुस्मृति ४। २१८-२१९; स्कन्दपुराण, प्रभास० २०७। ३७-३८)

राजान्नं तेज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम्। आयुः सुवर्णकारान्नं यशश्चर्मावकृन्तिनः॥ गणान्नं गणिकान्नं च लोकेभ्यः परिकृन्तति। (वृद्धगौतमस्मृति ११। २१-२२)

राजान्नं हरते तेजः शूद्रान्नं ब्रह्मवर्च्चसम्।

(आंगिरसस्मृति ७२; महाभारत, शान्ति० ३६। २७)

३२. आयुः सुवर्णकारान्नमवीरायाश्च योषितः॥ विष्ठा वार्धुषिकस्यान्नं गणिकान्नमथेन्द्रियम्। मृष्यन्ति ये चोपपतिं स्त्रीजितान्नं च सर्वशः॥

(महाभारत, शान्ति० ३६। २७-२८)

३३. स्वसुतान्नं च यो भुङ्क्ते स भुङ्क्ते पृथिवीमलम्॥ स्वसुता अप्रजा तावन्नाश्नीयत्तद्गृहे पिता। अन्नं भुङ्क्ते तु यो मोहात्पूयं स नरकं व्रजेत्॥

(अत्रिसंहिता ३०१-३०२)

३४. अनपत्या तु या नारी नाश्नीयात्तद्गृहेऽपि वै। अथ भुङ्क्ते तु यो मोहात् पूयसं नरकं व्रजेत्॥ (आंगिरसस्मृति ७०)

३५. वैद्यका अन्न पीब, व्यभिचारिणी स्त्रीका अन्न वीर्य, ब्याजखोरका अन्न विष्ठा और हथियार बेचनेवालेका अन्न मलके समान त्याज्य है।

३६. वैद्यका अन्न विष्ठा, व्यभिचारिणी या वेश्याका अन्न मूत्र तथा कारीगरका अन्न रक्तके समान है।

३७. अवहेलना, अनादर तथा दोषपूर्वक मिला हुआ अन्न नहीं खाना चाहिये।

३८. घी अथवा तेलमें पका हुआ अन्न बहुत देरका बना हुआ अथवा बासी भी हो तो वह खानेयोग्य है। गेहूँ, जौ तथा गोरसकी बनी हुई वस्तुएँ तेल-घीमें न बनी हों तो भी वे पूर्ववत् ग्राह्य हैं।

३९. नमक, घी, अन्न तथा सभी प्रकारके व्यञ्जन करछुलसे ही परोसने चाहिये, हाथसे नहीं। हाथसे परोसनेपर ये ग्राह्य नहीं होते।

---

३५. पूयं चिकित्सकस्यान्नं पुंश्चल्यास्त्वन्नमिन्द्रियम्। विष्ठा वार्धुषिकस्यान्नं शस्त्रविक्रयिणो मलम्॥ (मनुस्मृति ४। २२०; स्कन्दपुराण, प्रभास० २०७। ३९)

पूयश्चिकित्सकस्यान्नं शूकन्तु वृषलीपते॥ विष्ठा वार्धुषिकस्यान्नं तस्मात् तत्परिवर्जयेत्। (वृद्धगौतमस्मृति ११। २२-२३)

३६. भुङ्क्ते चिकित्सकस्यान्नं तदन्नं च पुरीषवत्। पुंश्चल्यन्नं च मूत्रं स्यात् कारुकान्नं च शोणितम्॥ (महाभारत, अनु० १३५। १४)

३७. अवज्ञातं चावधूतं सरोषं विस्मयान्वितम्।
(कूर्मपुराण, उ० १७। १४; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५६। १४)

३८. भोज्यमन्नं पर्युषितं स्नेहाक्तं चिरसम्भृतम्॥ अस्नेहाश्चापि गोधूमयवगोरसविक्रियाः।
(मार्कण्डेयपुराण ३५। १-२; ब्रह्मपुराण २२१। ११०)

भोज्यमन्नं.............................। अस्नेहा व्रीहयः श्लक्ष्णा विकाराः पयसस्तथा॥ तद्वद् द्विदलकादीनि भोज्यानि मनुरब्रवीत्॥ (वामनपुराण १४। ५९-६०)

३९. लवणं व्यञ्जनं चैव घृतं तैलं तथैव च। लेह्यं पेयं च विविधं हस्तदत्तं न भक्षयेत्॥ (धर्मसिन्धु ३पू० आह्निक०)

जल

१. अंजलिसे जल नहीं पीना चाहिये।

२. बायें हाथसे जल उठाकर अथवा जलमें मुँह लगाकर (पशुकी तरह) नहीं पीना चाहिये।

३. बायें हाथसे पीया हुआ जल आदि मदिराके समान माना गया है, जिसकी शुद्धि चान्द्रायण-व्रतसे होती है।

४. खड़े होकर जल नहीं पीना चाहिये।

---

१. 'न वार्यञ्जलिना पिबेत्'
(मनुस्मृति ४। ६३; स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ६२)

'जलं पिबेनाञ्जलिना' (याज्ञवल्क्यस्मृति १। १३८)

'नाञ्जलिपुटेनापः पिबेत्' (सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। ९८)

'कुर्यान्नाञ्जलिना पिबेत्'
(कूर्मपुराण, उ० १६। ६०; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ६०)

'न चापोऽञ्जलिना पिबेत्' (वसिष्ठस्मृति ६। ३२)। नाञ्जलिना पिबेत्॥
(गौतमधर्मसूत्र १। ९। १०)

'जलं नाञ्जलिना पिबेत्'
(मार्कण्डेयपुराण ३४। १११; ब्रह्मपुराण २२१। १०२)

'पिबेन्नाञ्जलिना तोयम्' (गरुड़पुराण, आचार० ९६। ४१)

२. न वामहस्तेनैकेन पिबेद्वक्त्रेण वा जलम्॥ (नारदपुराण, पूर्व० २६। ३६)

न वामहस्तेनोद्धृत्य पिबेद्वक्त्रेण वा जलम्।
(कूर्मपुराण, उ० १६। ७४; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ७४)

३. उद्धृत्य वामहस्तेन यत्किञ्चित्पिबते द्विजः। सुरापानेन तत्तुल्यं पीत्वा चान्द्रायणं चरेत्॥ (बृहत्पराशरस्मृति ८। २०१)

उत्थाय वामहस्तेन यत्तोयं पिबति द्विजः। सुरापी च स विज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्म० २७। २४)

४. 'न जलं चोत्थितः पिबेत्' (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ७४)

५. यदि पानी पीते-पीते उसकी बूँद मुँहसे निकलकर भोजनमें गिर पड़े तो वह खानेयोग्य नहीं रहता। पीनेसे बचा हुआ पानी पुनः पीनेके योग्य नहीं रहता।

६. पैर धोने, सन्ध्या करने तथा पीनेसे शेष बचा हुआ जल कुत्तेके मूत्रके समान अपवित्र होता है। उसे पी लेनेपर चान्द्रायण-व्रत करना चाहिये।

७. यदि जलपात्रको ग्रहण करके मल-मूत्रका त्याग किया जाय तो वह जल मूत्रके समान पीनेयोग्य नहीं रहता। उसे पीनेपर चान्द्रायण-व्रत करना चाहिये।

---

५. पिबतः पतिते तोये भोजने मुखनिस्सृते। अभोज्यं तद् विजानीयाद् भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥ पीतशेषं तु तन्नाम न पेयं पाण्डुनन्दन।

(महाभारत, आश्व० ९२)

६. पाद्यपीतावशेषं च सन्ध्याशेषं तथैव च। श्वानमूत्रसमं तोयं पीत्वा चान्द्रायणं चरेत्॥ (चाणक्यनीति० १७। ११)

७. गृहीत्वा जलपात्रं तु विण्मूत्रं कुरुते यदि। तज्जलं मूत्रसदृशं पीत्वा चान्द्रायणं चरेत्॥ (भगवन्तभास्कर, आचारमयूख)
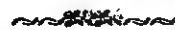
दूध

१.ब्यानेके दिनसे जिसको दस दिन न बीते हों—ऐसी गायका दूध तथा ऊँटनी, एक खुरवाले पशु (घोड़ी आदि), भेड़, गर्भिणी, जंगली पशु, स्त्री और मरे हुए बछड़ेवाली गायका दूध नहीं पीना चाहिये।

२. गाय, भैंस और बकरीके दूधके सिवाय अन्य पशुओंके दूधका त्याग करना चाहिये। इनके भी ब्यानेके दस दिनके अन्दरका दूध काममें नहीं लेना चाहिये।

---

१. अनिर्दशाया गोः क्षीरमौष्ट्रमैकशफं तथा। आविकं सन्धिनीक्षीरं विवत्सायाश्च गोः पयः॥ (मनुस्मृति ५। ८)। विवत्साऽन्यवत्सयोश्च।

(बौधायनधर्मसूत्र १। ५। १२। १०)

सन्धिन्यनिर्दशाऽवत्सगोः पयः परिवर्जयेत्। औष्ट्रमैकशफं स्त्रैणमारण्यकमथाविकम्॥ (याज्ञवल्क्यस्मृति १। १७०)। आविकमौष्ट्रिकमैकशफम्॥

(बौधायनधर्मसूत्र १। ५। १२। ११)

'गोश्च क्षीरमनिर्दशायाः सूतके चाजामहिष्योश्च नित्यमाविकमपेयमौष्ट्रमैकशफञ्च स्यन्दिनीयमसूसन्धिनीनाञ्च याश्च व्यपेतवत्साः' (गौतमस्मृति १७)

उष्ट्रीक्षीरमृगीक्षीरसन्धिनीक्षीरयमसूक्षीराणीति॥

(आपस्तम्बधर्मसूत्र १। ५। १७। २३)

विवत्सायाश्च गोः क्षीरमौष्ट्रं वानिर्दशं तथा। आविकं सन्धिनीक्षीरमपेयं मनुरब्रवीत्॥ (कूर्मपुराण, उ० १७। ३०)। विवत्सायाश्च गोः क्षीरं मेषस्यानिर्दशस्य च॥ आविकं..................................। (पद्मपुराण, स्वर्ग० ५६। ३०-३१)

..................अवत्सागोपयस्त्यजेत्॥ पय ऐकशफं हेय तथाक्रामेलकाविकम्।

(स्कन्दपुराण, काशी० पू० ४०। १०-११)

अभोज्यं चाप्यपेयं च धेनोर्दुग्धमनिर्दशम्॥ (महाभारत, शान्ति० ३६। २६)

धेनोश्चाऽनिर्दशायाः॥ (आपस्तम्बधर्मसूत्र १। ५। १७। २४)

अनिर्दशाहसन्धिनीक्षीरमपेयम्॥ (बौधायनधर्मसूत्र १। ५। १२। ९)

गोश्च क्षीरमनिर्दशायाः सूतके। अजामहिष्योश्च। नित्यमाविकमपेयमौष्ट्रमैकशफं च। स्यन्दिनीयमसूसन्धिनीनां च। विवत्सायाश्च।

(गौतमधर्मसूत्र २। ८। २२—२६)

२. गवां च महिषीणां च वर्जयित्वा तथाप्यजाम्॥ सर्वक्षीराणि वर्ज्याणि तासां चैवाप्यनिर्दशम्। (अग्निपुराण १६८। १९-२०)

३. जिस गायको ब्याये हुए दस दिन भी न हुए हों, उसका दूध तथा ऊँटनी और भेड़का दूध पी जानेपर चान्द्रायण-व्रत करना चाहिये।

४. ब्राह्मणोंको भैंसका दूध, दही, घी, स्वस्तिक और मक्खन नहीं खाना चाहिये।

५. जो मनुष्य छोटे बछड़ेवाली गौओंका दूध दुहकर पी जाते हैं, उनकी सन्तान नष्ट हो जाती है तथा उनके वंशका क्षय हो जाता है।

६. जिस दूधमेंसे चिकनाई निकाल दी हो, जो दूध फट गया हो और जो बासी हो, वह दूध नहीं पीना चाहिये।

७. लक्ष्मी चाहनेवाला मनुष्य भोजन और दूधको बिना ढके न छोड़े।

---

३. अनिर्दशाया गोः क्षीरमौष्ट्रमाविकमेव च। मृतसूतकयोश्चान्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥ (महाभारत, आश्व० ९२)

४. अभक्ष्यं महिषीणां च दुग्धं दधि घृतं तथा। स्वस्तिकं च तथा तत्र विप्राणां नवनीतकम्॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण० ८५। २०)

५. क्षीरं तु बालवत्सानां ये पिबन्तीह मानवाः॥ न तेषां क्षीरपाः केचिज्जायन्ते कुलवर्धनाः। प्रजाक्षयेण युज्यन्ते कुलवंशक्षयेण च॥

(महाभारत, अनु० १२५। ६६-६७)

६. न भुञ्जीतोद्धृतस्नेहं नष्टं पर्युषितं पयः।

(सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। ९९)

७. 'भक्ष्यमासीदनावृतम्' (महाभारत, शान्ति० २२८। ५८)

अपावृतं पयोऽतिष्ठदुच्छिष्टाश्चास्पृशन् घृतम्॥ (महाभारत, शान्ति० २२८। ५९)

भक्ष्य-अभक्ष्य

१. प्रतिपदाको कूष्माण्ड न खाये; क्योंकि उस दिन यह धनका नाश करनेवाला है।

द्वितीयाको बृहती (छोटा बैंगन या कटेहरी) निषिद्ध है।

तृतीयाको परवल शत्रुओंकी वृद्धि करनेवाला है।

चतुर्थीको मूली धनका नाश करनेवाली है।

पंचमीको बेल खानेसे कलंक लगता है।

षष्ठीको नीमकी पत्ती, फल या दातुन मुँहमें डालनेसे नीच योनियोंकी प्राप्ति होती है।

सप्तमीको ताड़का फल खानेसे रोग बढ़ता है तथा शरीरका नाश होता है।

अष्टमीको नारियलका फल खानेसे बुद्धिका नाश होता है।

नवमीको लौकी त्याज्य है।

दशमीको कलम्बीका शाक त्याज्य है।

एकादशीको शिम्बी (सेम) खानेसे पुत्रका नाश होता है,

द्वादशीको पूतिका (पोई) खानेसे पुत्रका नाश होता है।

त्रयोदशीको बैंगन खानेसे पुत्रका नाश होता है।

---

१. प्रतिपत्सु च कुष्माण्डमभक्ष्यमर्थनाशनम्। द्वितीयायां च बृहती भोजने न स्मरेद्धरिम्॥ अभक्ष्यं च पटोलं च शत्रुवृद्धिकरं परम्। तृतीयायां चतुर्थ्यां च मूलकं धननाशनम्॥ कलङ्ककारणं चैव पञ्चम्यां बिल्वभक्षणम्। तिर्यग्योनिं प्रापयेत्तु षष्ठ्यां च निम्बभक्षणम्॥ रोगवृद्धिकरं चैव नराणां तालभक्षणम्। सप्तम्यां च तथातालं शरीरस्य च नाशकम्॥ नारिकेलफलं भक्ष्यमष्टम्यां बुद्धिनाशनम्। तुम्बी नवम्यां गोमांसं दशम्यां च कलम्बिका॥ एकादश्यां तथा शिम्बी द्वादश्यां पूतिका तथा। त्रयोदश्यां च वार्त्ताकी भक्षणं पुत्रनाशनम्॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्म० २७। २९—३४)

२. अमावस्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति, चतुर्दशी और अष्टमी तिथि, रविवार, श्राद्ध और व्रतके दिन तिलका तेल निषिद्ध है।

३. रविवारके दिन अदरख और लाल रंगका शाक नहीं खाना चाहिये।

४. कार्तिकमासमें बैंगन और माघमासमें मूलीका त्याग कर देना चाहिये।

५. सूर्यास्तके बाद कोई भी तिलयुक्त पदार्थ नहीं खाना चाहिये।

६. लक्ष्मीकी इच्छा रखनेवालेको रातमें दही और सत्तू नहीं खाना चाहिये। यह नरककी प्राप्ति करानेवाला है।

---

२. **कुहूपूर्णेन्दुसंक्रान्तिचतुर्दश्यष्टमीषु च॥ रवौ श्राद्धे व्रताहे च दुष्टं स्त्री तिलतैलकम्।** (ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्म० २७। ३७-३८)

३. **आर्द्रकं रक्तशाकं च रवौ च परिवर्जयेत्॥** (ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण० ७५। ६०)

अभक्ष्यमार्द्रकं चैव सर्वेषां च रवेर्दिने। (ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण० ८५। २२)

४. **वातिङ्गणफलश्चैव गोमांसं कार्त्तिके स्मृतम्। माघे च मूलकं चैव कलम्बी शयने तथा॥** (ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्म० २७। २६)

'माघे च मूलकं तथा' (ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण० ८५। ९)

५. **सर्वं च तिलसम्बद्धं नाद्यादस्तमिते रवौ।** (मनुस्मृति ४। ७५; विष्णुधर्मोत्तर० ३। २३३। ४१)

रात्रौ च तिलसम्बद्धं प्रयत्नेन दधि त्यजेत्॥ (कूर्मपुराण, उ० १७। २४; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५६। २५)

६. **रात्रौ दधि च सक्तूंश्च नित्यमेव व्यवर्जयन्॥** (महाभारत, शान्ति० २२८। ३७)

न पाणौ लवणं विद्वान् प्राश्नीयान्न च रात्रिषु। दधिसक्तून् न भुञ्जीत..........। (महाभारत, अनु० १०४। ९३)

'रात्रौ न दधि भोक्तव्यम्' (स्कन्दपुराण, काशी० पू० ४०। ११)

'न नक्तं दधि भुञ्जीत' (सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। ९९; चरकसंहिता, सूत्र० ८। २०)

'भक्षयेद्दधि नो निशि' (पद्मपुराण, पाताल० ९। ५७)

रात्रौ च दधिभक्ष्यं च शयनं सन्ध्ययोर्दिने। (ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्म० २७। ४०)

७. दूधके साथ मट्ठा नहीं लेना चाहिये।

८. मधु मिला हुआ घी, तेल और गुड़ अभक्ष्य हैं। गुड़सहित दही और गुड़मिश्रित अदरख भी मदिराके समान अभक्ष्य है।

९. पीनेका जल, खीर, चूर्ण, घी, नमक, स्वस्तिक, गुड़, दूध, मट्ठा तथा मधु—ये एक हाथसे दूसरे हाथपर ग्रहण करनेसे तत्काल अभक्ष्य हो जाते हैं।

१०. ताँबेके पात्रमें दूध पीना, जूठी वस्तुमें घी खाना और नमकके साथ दूध पीना गोमांस-भक्षणके समान अभक्ष्य और पापकारक है।

११. लोहेके बर्तनमें जलपान, उसमें रखा हुआ गायका दूध, दही, घी, उसमें पकाया हुआ अन्न (चावल), भुना हुआ पदार्थ, मधु, गुड़, नारियलका जल, फल, मूल आदि सभी पदार्थ अभक्ष्य हो जाते हैं।

---

७. **'नाश्नीयात् पयसा तक्रम्'** (कूर्मपुराण, उ० १७। २५; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५६। २५)

८. **अभक्ष्यं मधुमिश्रं च घृतं तैलं गुडं तथा। आर्द्रकं गुडसंयुक्तमभक्ष्यं श्रुतिसम्मतम्॥** (ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण० ८५। ८)

'सगुडं दधि सगुडमार्द्रकं च मद्यसमम्।' (धर्मसिन्धु० ३ पू० आह्निक०)

९. **पानीयं पायसं चूर्णं घृतं लवणमेव च। स्वस्तिकं गुडकं चैव क्षीरं तक्रं तथा मधु॥ हस्ताद्धस्तगृहीतं च सद्यो गोमांसमेव च।** (ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण० ८५। ११-१२)

१०. **ताम्रपात्रे पयःपानमुच्छिष्टं घृतभोजनम्। दुग्धं सलवणं चैव सद्यो गोमांसभक्षणम्॥** (ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण० ८५। ७)

ताम्रपात्रे पयःपानमुच्छिष्टे घृतभोजनम्। दुग्धं लवणसार्द्धं च सद्यो गोमांसभक्षणम्॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्म० २७। २२)

११. **अयःपात्रे पयःपानं गव्यं सिद्धान्नमेव च। भ्रष्टादिकं मधु गुडं नारिकेलोदकं तथा॥ फलं मूलं च यत्किञ्चिदभक्ष्यं मनुरब्रवीत्।** (ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण० ८५। ४-५)

१२. हाथमें दिया हुआ नमक, तेल व व्यञ्जन और लोहेके पात्रमें दिया हुआ तथा बायें हाथसे दिया हुआ अन्न अभक्ष्य है। लोहेके पात्रमें पकाया हुआ अन्न (चावल) भी अभक्ष्य है। परन्तु ताँबेके पात्रमें घी और लोहेके पात्रमें तेल दूषित नहीं होता।

१३. काँसेके बर्तनमें नारियलका जल और ताँबेके बर्तनमें ईखका रस एवं सभी गव्य पदार्थ (घीके सिवाय दूध, दही आदि) मदिरातुल्य अभक्ष्य हो जाते हैं।

---

१२. हस्तदत्तास्तु ये स्नेहा लवणव्यञ्जनानि च। दातारं नोपतिष्ठन्ति भोक्ता भुञ्जीत किल्बिषम्॥ प्रदद्यान्न तु हस्तेन नाऽऽयासेन कदाचन। (वसिष्ठस्मृति १४। २६-२७)

हस्तदत्तं तु यत् स्नेहलवणव्यञ्जनादिकम्॥ दातुश्च नोपनिष्ठेत भोक्ता भुञ्जीत किल्बिषम्। (दाल्भ्यस्मृति ४०-४१)

हस्तदत्तास्तु ये स्नेहा लवणव्यञ्जनादयः। दातारं नोपतिष्ठन्ति भोक्ता भुङ्क्ते च किल्बिषम्॥ (लघुशंखस्मृति २६)

हस्तदत्तास्तु ये स्नेहाल्लवणव्यञ्जनादि च॥ दातारं नोपतिष्ठन्ति भोक्ता भुञ्जीत किल्बिषम्। (अत्रिस्मृति ५।७-८)

हस्ते दत्त्वा तु वै स्नेहाल्लवणं व्यञ्जनानि च॥ आयसेन च पात्रेण तद्वै रक्षांसि भुञ्जते। (स्कन्दपुराण, प्रभास० २०६।३९)

आयसेन तु पात्रेण यदन्नमुपदीयते। अन्नं विष्ठासमं भोक्तुर्दाता च नरकं व्रजेत्॥ (लघुशंखस्मृति २७)

इतरेण तु पात्रेण दीयमानं विचक्षणः। न दद्याद्वामहस्तेन आयसेन कदाचन॥ (अत्रिसंहिता १५२-१५३)

लोहपात्रेषु यत्पक्वं तदन्नं काकमांसवत्। भुक्त्वा चान्द्रायणं कुर्याच्छ्राद्धेनान्येषु कर्मसु॥ ताम्रपात्रे न गोक्षीरं पचेदन्नं न लोहजे। क्रमेण घृततैलाक्ते ताम्रलोहे न दुष्यतः॥ (प्रजापतिस्मृति ११३-११४)

आयसेनैव पात्रेण यदन्नमुपदीयते। भोक्ता तद्विट्समं भुङ्क्ते दाता च नरकं व्रजेत्॥ (स्कन्दपुराण, काशी० पू० ४०।१२)

१३. नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रपात्रे स्थितं मधु। गव्यं च ताम्रपात्रस्थं सर्वं मद्यं घृतं विना॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण० ८५।६)

नारिकेलोदकं........ऐक्षवं ताम्रपात्रस्थं सुरातुल्यं न संशयः॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्म० २७।२३)

१४. चाँदीके पात्रमें रखा हुआ कपूर अभक्ष्य हो जाता है।

१५. हाथमें नमक लेकर चाटना नहीं चाहिये।

१६. लहसुन, प्याज, गाजर, शलगम, कुकुरमुत्ता, सफेद बैंगन, लाल मूली और अपवित्र स्थान (श्मशानादि)-में उत्पन्न शाक जात्या दूषित हैं और द्विजातियोंके लिये अभक्ष्य हैं।

१७. पेड़ोंका लाल गोंद, वृक्ष काटनेसे निकलनेवाला गोंद, लसोढ़ा और गायका पेयूष त्याज्य हैं। (गाय ब्यानेके दिनसे सात दिनोंतकका दूध पेयूष कहलाता है।)

१८. प्रत्यक्ष नमक तथा मिट्टी खाना गोमांसके समान अभक्ष्य हैं।

---

१४. कर्पूरं रौप्यपात्रस्थमभक्ष्यं श्रुतिसम्मतम्॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण० ८५।१२)

१५. नोत्सङ्गे भक्षयेद्भक्ष्यान्न पाणौ लवणं तथा। (विष्णुधर्मोत्तर० २।९३।१२)

'न पाणौ लवणं विद्वान् प्राश्नीयात्' (महाभारत, अनु० १०४।९३)

१६. लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च। अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च॥ (मनुस्मृति ५।५)

लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च। वार्ताकं नालिकेरं तु मूलकं जातिदुष्टकम्॥ (भविष्यपुराण, ब्राह्म० १८६।२२)

१७. लोहितान्वृक्षनिर्यासान्व्रश्चनप्रभवांस्तथा। शेलुं गव्यं च पेयूषं प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥ (मनुस्मृति ५।६)

'लोहितान्व्रश्चनांस्तथा' (याज्ञवल्क्यस्मृति १।१७१)

१८. अङ्गुल्या दन्तकाष्ठं च प्रत्यक्षं लवणं तथा। मृत्तिकाभक्षणं चैव तुल्यं गोमांसभक्षणम्॥ (अत्रिसंहिता ३१४; बृहत्पराशरस्मृति ८।२८८)

अङ्गुल्या दन्तधावेन प्रत्यक्षलवणेन च॥ मृत्तिकाभक्षणं........। (दाल्भ्यस्मृति ५५-५६)

१९. द्विजातियोंके लिये मदिरा किसीको देना, स्वयं उसे पीना, उसका स्पर्श करना तथा उसकी ओर देखना भी पाप है। उससे सदा दूर ही रहना चाहिये—यही सनातन मर्यादा है। इसलिये पूर्ण प्रयत्न करके सर्वदा मदिराका त्याग करे। जो द्विज मद्यपान करता है, वह द्विजोचित कर्मोंसे भ्रष्ट हो जाता है। उससे बात भी नहीं करनी चाहिये।

२०. मदिरा पीनेसे मनुष्यके धैर्य, लज्जा और बुद्धिका नाश हो जाता है। उसे निश्चय ही नरककी प्राप्ति होती है।

२१. मदिराके पात्रमें जल पीनेपर चान्द्रायण-व्रत करना चाहिये।

२२. मदिराका स्पर्श करके द्विज तीन प्राणायाम करनेसे शुद्ध होता है।

२३. जो मनुष्य पापसे मोहित होकर मांस पकाता है, वह उस पशुके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक नरकमें निवास करता है। जो दूषित बुद्धिवाले मनुष्य पराये प्राणोंसे अपने प्राणोंका पोषण

---

१९. अदेयं चाप्यपेयं च तथैवास्पृश्यमेव च। द्विजातीनामनालोक्यं नित्यं मद्यमिति स्थितिः॥ तस्मात् सर्वप्रकारेण (सर्वप्रयत्नेन) मद्यं नित्यं विवर्जयेत्। पीत्वा पतति कर्मभ्यस्त्वसम्भाष्यो भवेद् द्विजः॥

(कूर्मपुराण, उ० १७। ४२-४३; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५६। ४३-४४)

२०. धृतिं लज्जां च बुद्धिं च पानं पीतं प्रणाशयेत्।……एवं बहुविधा दोषाः पानपे सन्ति शोभने। केवलं नरकं यान्ति नास्ति तत्र विचारणा॥

(महाभारत, अनु० १४५)

२१. सुराभाण्डोदरे वारि पीत्वा चान्द्रायणं चरेत्। (कूर्मपुराण, उ० ३३। ३५)

२२. सुरां स्पृष्ट्वा द्विजः कुर्यात् प्राणायामत्रयं शुचिः।

(कूर्मपुराण, उ० ३३। ७१)

२३. यः स्वार्थं मांसपचनं कुरुते पापमोहितः। यावन्त्यस्य तु रोमाणि तावत्स नरके वसेत्॥ परप्राणैस्तु ये प्राणान् स्वान् पुष्णन्ति हि दुर्धियः। आकल्पं नरकान् भुक्त्वा ते

करते हैं, वे एक कल्पतक नरक भोगकर इस संसारमें जन्म लेते और उन्हीं प्राणियोंके खाद्य बनते हैं। यदि भूखसे प्राण निकलकर कण्ठतक आ गये हों तो भी मांस नहीं खाना चाहिये।

२४. ताम्बूल (पान)-के पत्तेके अग्रभागमें पत्नीके साथ तथा डंठलमें पुत्रके साथ दारिद्र्य निवास करता है। रात्रिके समय ये तीनों कत्थेमें निवास करते हैं। सुरती (तम्बाकू, खैनी)-में सदा दारिद्र्य निवास करता है। इसलिये पानके पत्तेका अग्रभाग और डंठल तोड़कर केवल दिनमें बिना सुरतीके देवताको अर्पण करके पान खाना चाहिये।

२५. विधवा स्त्री, संन्यासी, ब्रह्मचारी तथा तपस्वीके लिये ताम्बूल गोमांस अथवा मदिराके समान अभक्ष्य है।

२६. यदि परोसनेवाला व्यक्ति भोजन करनेवालेको छू दे तो वह अन्न अभक्ष्य हो जाता है।

भुज्यन्तेऽत्र तैः पुनः॥ जातु मांसं न भोक्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि।

(स्कन्दपुराण, काशी० पू० ३। ५१—५३)

२४. चूर्णपत्रे त्वया वासः सदा कार्यो दरिद्र भोः। ताम्बूलस्य तु पर्णाग्रे भार्यया मम वाक्यतः॥ पर्णानां चैव वृन्तेषु सर्वेषु त्वत्सुतेन च। रात्रौ खदिरसारे च त्वं ताभ्यां सर्वदा वस॥ (स्कन्दपुराण, नागर० २१०। ७४-७५)

२५. ताम्बूलं विधवास्त्रीणां यतीनां ब्रह्मचारिणाम्। तपस्विनां च विप्रेन्द्र गोमांससदृशं ध्रुवम्॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्म० २७। २०)

ताम्बूलं……………………॥ संन्यासिनां च गोमांससुरातुल्यं श्रुतौ श्रुतम्।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण० ८३। ९९-१००)

२६. परिवेषणकारी चेद्भोक्तारं स्पृशते यदि। अभक्ष्यं च तदन्नं च सर्वेषामेव सम्मतम्॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण० ८५। १३)

न करनेयोग्य शारीरिक चेष्टाएँ

१. दोनों हाथोंसे अपना सिर नहीं खुजलाना चाहिये।

२. दाँतोंसे नाखून, रोम अथवा केश नहीं चबाना चाहिये।

३. अकारण मिट्टीके ढेलेको नहीं फोड़ना चाहिये और तिनके नहीं तोड़ना चाहिये।

---

१. न संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः।

(मनुस्मृति ४। ८२; कूर्मपुराण, उ० १६। ६४; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ६४; शुक्रनीति ३। २८; महाभारत, अनु० १०४। ६९; विष्णुधर्मोत्तर० २। ८९। ३४)

न संहताभ्यां पाणिभ्यां शिर उदरं च कण्डूयेत। (विष्णुस्मृति ७१)

'न कण्डूयेद् द्विहस्तकम्' (अग्निपुराण १५५। २१)

न संहताभ्यां हस्ताभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः॥ (नारदपुराण, पूर्व० २६। २३)

उभाभ्यामपि पाणिभ्यां कण्डूयेन्नात्मनः शिरः॥

(स्कन्दपुराण, मा० कौ० ४१। १३६)

२. न छिन्द्यान्नखलोमानि दन्तैर्नोत्पाटयेन्नखान्॥ (मनुस्मृति ४। ६९)

न दन्तैर्नखलोमानिच्छिन्द्यात्। (विष्णुस्मृति ७१)

'न दन्तैर्नखरोमाणि छिन्द्यात्'

(कूर्मपुराण, उ० १६। ६६; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ६६)

'नखं न वदने क्षिपेत्' (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। ९७)

असच्छास्त्रार्थमननं खादन नखकेशयोः। तथैव नग्नशयनं सर्वदा परिवर्जयेत्॥

(नारदपुराण, पूर्व० २६। ३४)

नोत्पाटयेल्लोमनखं दशनेन कदाचन॥ (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ६९)

३. न मृल्लोष्टं च मृद्नीयान्न छिन्द्यात्करजैस्तृणम्। (मनुस्मृति ४। ७०)

न लोष्टमर्दी स्यात्। न तृणच्छेदी स्यात्। (विष्णुस्मृति ७१)

'न काष्ठलोष्टतृणादीनभिहन्याच्छिन्द्याद्भिन्द्याद्वा'

(सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। ९५)

तृणच्छेदनलोष्टविमर्दनष्ठेवनानि चाऽकारणात्।

(आपस्तम्बधर्मसूत्र १। ११। ३२। २८)

तृणच्छेदं न कुर्वीत न च लोष्टाभिमर्दनम्॥ (विष्णुधर्मोत्तर० २। ८९। २२)

'न लोष्टं मृद्नीयात्' (चरकसंहिता, सूत्र० ८। १९)

४. जो मनुष्य ढेला मसलता है, नाखूनसे तृण काटता है, दाँतोंसे नख काटता है, दूसरोंकी निन्दा करता है तथा अशुद्ध रहता है, वह शीघ्र नष्ट हो जाता है।

५. अपने शरीर और मुख, नख आदिको न बजाये अर्थात् उनसे बाजेका काम न करे।

६. यदि शुभकी इच्छा हो तो नखसे नखको नहीं काटना चाहिये।

७. पैरसे आसनको खींचकर नहीं बैठना चाहिये।

---

४. लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः। स विनाशं व्रजत्याशु सूचकोऽशुचिरेव च॥ (मनुस्मृति ४। ७१)

लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः। नित्योच्छिष्टः शंकुशुको (संकुसुको) नेहायुर्विन्दते महत्॥ (महाभारत, शान्ति० १९३। १३, अनु० १०४। १५)

नखान्न खादयेच्छिन्द्यान्न तृणं न महीं लिखेत्॥ न श्मश्रु भक्षयेल्लोष्टं न मृद्नीयाद्विचक्षणः। (विष्णुपुराण ३। १२। १०-११)

लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादी विनश्यति। (अग्निपुराण १५५। १८)

(वसिष्ठस्मृति ६। ३१)

५. नाङ्गनखवादनं कुर्यान्नखैश्च भोजनादौ॥

'न गात्रनखवक्त्रवादित्रं कुर्यात्' (सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। ९५)

'गात्रवक्त्रनखैर्वाद्यम्' (अष्टांगहृदय, सूत्र० २। ४३), **'न नखान् वादयेत्'** (चरकसंहिता, सूत्र ८। १९)

'न चाङ्गनखवादं वै' (कूर्मपुराण, उ० १६। ६०; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ६०)

'स्वगात्रासनयोर्वाद्यम्' (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। ९८)

'नात्मनो देहताडनम्' (मार्कण्डेयपुराण ३४। ७२; ब्रह्मपुराण २२१। ७०)

'मुखादिवादनं नेहेद्' (अग्निपुराण १५५। १८)

६. करजैः करजच्छेदं विवर्जयेच्छुभाय तु। (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ७०)

७. 'न पदासनमाकर्षेत्' (गौतमस्मृति ९); (गौतमधर्मसूत्र १। ९। ४९)

'नाकर्षेच्च पदासनम्' (कूर्मपुराण, उ० १६। ६१; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ६१)

आसनं तु पदाऽऽकृष्य न प्रसज्जेत् तथा नरः॥ (महाभारत, अनु० १०४। ५०)

तद्वन्नोपविशेत्प्राज्ञः पादेनाऽऽकृष्य (पादेनाक्रम्य) चाऽऽसनम्।

(ब्रह्मपुराण २२१। ४७; मार्कण्डेयपुराण ३४। ४८)

वर्जयेदासनं चैव पदा नाकर्षयेद्बुधः॥ (स्कन्दपुराण, मा० कौ० ४१। १२५)

'नाकर्षेदासनं पदा' (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ६८)

८. पैरसे कभी पैर न धोये।

९. काँसेके बर्तनमें पैर न धोये और कुल्ला न करे।

१०. दाँतोंको परस्पर रगड़ना नहीं चाहिये।

११. सिर, हाथ, पैर आदिको कँपाना (हिलाना) नहीं चाहिये।

१२. पैरसे पैरको न दबाये अर्थात् पैरके ऊपर पैर न रखे।

---

८. न पादप्रक्षालनं कुर्यात् पादेनैव कदाचन॥
(कूर्मपुराण, उ० १६। ६८; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ६८)
'न पादं पादेन' (विष्णुस्मृति ७१)

९. गण्डूषं पादशौचं च न कुर्यात् कांस्यभाजने। (आंगिरसस्मृति ४१)
वर्जयेद्धावनं चैव पादयोः कांस्यभाजने। (बृहत्पराशरस्मृति ६। २७४)
नाग्नौ प्रतापयेत् पादौ न कांस्ये धावयेद् बुधः।
(कूर्मपुराण, उ० १६। ६९; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ६९)
'कांस्ये पादौ न धावयेत्' (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ६४)

१०. 'न दन्तान् विघट्टयेत्' (चरकसंहिता, सूत्र० ८। १९)
'न कुर्याद्दन्तसंघर्षम्'
(मार्कण्डेयपुराण ३४। ७२; ब्रह्मपुराण २२१। ७०; विष्णुपुराण ३। १२। ९)
'न कुर्याद्दन्तघर्षणम्' (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ५। १४०)

११. न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलो भवेत्। न चाङ्गचपलो विप्र इति शिष्टस्य गोचरः॥ (वसिष्ठस्मृति ६। ३८)
'न वीजयेत् केशमुखनखवस्त्रगात्राणि' (सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। ९५)
'न चापि विक्षिपेत् पादौ' (मार्कण्डेयपुराण ३४। ४५; ब्रह्मपुराण २२१। ४३)
न पादपाणिचपलो न नेत्रचपलो द्विजः। (विष्णुधर्मोत्तर० ३। २३३। १८२)
न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलोऽनृजुः॥ न च वागङ्गचपलो न चाशिष्टस्य गोचरः। (स्कन्दपुराण, मा० कौ० ४१। १३९-१४०)
'हस्तौ शिरो न धुनुयात्' (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ६८)

१२. न पादं पादेन। (विष्णुस्मृति ७१)
'पादं पादेन नाक्रमेत्'
(महाभारत, अनु० १०४। २९; मार्कण्डेयपुराण ३४। ४५; ब्रह्मपुराण २२१। ४३; अग्निपुराण १५५। २८)
'पादेन नाक्रमेत्पादम्' (विष्णुपुराण ३। १२। २५; नारदपुराण, पू० २६। २३)

१३. स्नान, दान, जप, होम, भोजन, देवपूजन, स्वाध्याय और पितृतर्पण—ये कार्य प्रौढ़पाद होकर (उकड़ूँ बैठकर) नहीं करने चाहिये।

१४. सिरके बाल पकड़कर खींचना और सिरपर प्रहार करना वर्जित है।

१५. बुद्धिमान् मनुष्यको मल, मूत्र, अपानवायु, डकार, वमन, छींक, जम्हाई, भूख, प्यास, आँसू, निद्रा, शुक्र और परिश्रमसे उत्पन्न श्वासके वेगोंको नहीं रोकना चाहिये। इनके वेगोंको रोकनेसे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।

१६. भोजन, देवपूजा, मांगलिक कार्य और जप-होमादिके समय तथा श्रेष्ठ पुरुषोंके सामने थूकना और छींकना नहीं चाहिये।

१७. वायु, अग्नि, जल, सूर्य, चन्द्रमा, ब्राह्मण आदि पूज्योंके सामने थूकना नहीं चाहिये। जहाँ जनसमूह एकत्र हो, भोजनका समय

---

१३. स्नानं दानं जपं होमं भोजनं देवतार्चनम्। प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम्॥ (अत्रिसंहिता ३२३)

१४. केशग्रहं प्रहारांश्च शिरस्येतान् विवर्जयेत्॥ (महाभारत, अनु० १०४। ६८)
केशग्रहान्प्रहारांश्च शिरस्येतां तथैव च। (विष्णुधर्मोत्तर० २। ८९। ७८)

१५. न वेगान् धारयेद्धीमाञ्जातान् मूत्रपुरीषयोः। न रेतसो न वातस्य न च्छर्द्याः क्षवथोर्न च॥ नोद्गारस्य न जृम्भाया न वेगान् क्षुत्पिपासयोः। न वाष्पस्य न निद्राया निःश्वासस्य श्रमेण च॥ एतान् धारयतो जातान् वेगान् रोगा भवन्ति ये।
(चरकसंहिता, सूत्र० ७। ३—५)
वेगान्न धारयेद्वातविण्मूत्रक्षवतृट्क्षुधाम्। निद्राकासश्रमश्वासजृम्भाश्रुच्छर्दिरेतसाम्॥ (अष्टांगहृदय, सूत्र० ४। १)
न वेगान् धारयेद् वातमूत्रपुरीषादीनाम्। (सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। ९३)

१६. श्लेष्मशिङ्घाणिकोत्सर्गो नान्नकाले प्रशस्यते। बलिमङ्गलजप्यादौ न होमे न महाजने॥ (विष्णुपुराण ३। १२। २९)

१७. 'न वाय्वग्निसलिलसोमार्कद्विजगुरुप्रतिमुखं निष्ठीविका न जनवति नान्नकाले

उपस्थित हो, जप, होम, अध्ययन और अन्य मांगलिक कार्य होनेवाले हों, वहाँ उस समय मुख या नाकसे कफका त्याग नहीं करना चाहिये।

१८. बहुत ज़ोरसे न हँसे और शब्द करते हुए अधोवायु न छोड़े।

१९. मुखको बिना ढके सभामें न जोरसे हँसे, न जम्हाई ले, न खाँसे, न छींके और न डकार ही ले।

२०. अकारण थूकना नहीं चाहिये।

२१. अपने दोनों हाथोंको पीठके पीछे जोड़कर न रखे।

२२. गुरु, देवता और अग्निके सम्मुख पैर फैलाकर नहीं बैठना चाहिये।

न जपहोमाध्ययनबलिमङ्गलक्रियासु श्लेष्मसिङ्घाणकं मुञ्चेत्' (चरकसंहिता, सूत्र० ८। २१)

१८. नोच्चैर्हसेत्सशब्दं च न मुञ्चेत्पवनं बुधः। (विष्णुपुराण ३। १२। १०)
'नोच्चैर्हसेत् न शब्दवन्तं मारुतं मुञ्चेत्' (चरकसंहिता, सूत्र० ८। १९)

१९. नासंवृतमुखो जृम्भेच्छ्वासकासौ विसर्जयेत्॥ (विष्णुपुराण ३। १२। ९)
नासंवृतमुखः कुर्याद् हासं जृम्भा तथा क्षुतम्॥
(अग्निपुराण १५५। २५; विष्णुधर्मोत्तर० २। ८९। ४९)
नासंवृतमुखः कुर्यात्क्षुतिहास्यविजृम्भणम्॥ (अष्टांगहृदय, सूत्र० २। ३५)
'नानावृतमुखो जृम्भां क्षवथुं हास्यं वा प्रवर्तयेत्' (चरकसंहिता ८। १९)
'नासंवृतमुखः सदसि जृम्भोद्गारकासश्वासक्षवथूनुत्सृजेत्'
(सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। ९४)

२०. 'नाकारणाद् वा निष्ठीवेत्'
(कूर्मपुराण, उ० १६। ६८; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ६८)

२१. 'पृष्ठतश्चाऽऽत्मनः पाणी न संश्लेषयेत्॥' (आपस्तम्बधर्मसूत्र २। ५। १२। १२)

२२. पादौ प्रसारयेन्नैव गुरुदेवाग्निसम्मुखौ।
(स्कन्दपुराण, मा० कौ० ४१। १२७)

स्पर्शास्पर्श

१. देवयात्रा, विवाह आदि उत्सव, यज्ञ, युद्ध, बाढ़, पलायन और वनमें स्पर्शदोष नहीं लगता।

२. जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर गाय, घी, दही, सरसों और राईका स्पर्श करता है, वह पापसे मुक्त हो जाता है।

३. जो मनुष्य प्रतिदिन स्नान करके गौका स्पर्श करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

४. जिस कपड़ेको पहनकर स्नान किया गया हो, उसी कपड़ेसे सिरका स्पर्श नहीं करना चाहिये।

५. बिना कारण अपनी इन्द्रियोंका स्पर्श न करे। गुप्त रोमोंका भी स्पर्श न करे।

---

१. देवयात्राविवाहेषु यज्ञप्रकरणेषु च। उत्सवेषु च सर्वेषु स्पृष्टास्पृष्टिर्न विद्यते॥
(अत्रिसंहिता २४८)

विवाहोत्सवयज्ञेषु संग्रामे जलसम्प्लवे। पलायने तथारण्ये स्पर्शदोषो न विद्यते॥
(बृहत्पराशरस्मृति ८। ३०६)

२. कल्य उत्थाय यो मर्त्यः स्पृशेद् गां वै घृतं दधि। सर्षपं च प्रियंगुं च कल्मषात् प्रतिमुच्यते॥ (महाभारत, अनु० १२६। १८)

३. 'स्पृष्टाश्च गावः शमयन्ति पापम्' (बृहत्पराशरस्मृति ५। १०)
गां च स्पृशति यो नित्यं स्नातो भवति नित्यशः। अतो मर्त्यः प्रपुष्टैस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ५०। १६४)

४. 'न स्नानशाट्या स्पृशेदुत्तमाङ्गम्' (चरकसंहिता, सूत्र० ८। १९)

५. अनातुरः स्वानि खानि न स्पृशेदनिमित्ततः। रोमाणि च रहस्यानि सर्वाण्येव विवर्जयेत्॥ (मनुस्मृति ४। १४४)
'स्वानि खानि न संस्पृशेत्'
(कूर्मपुराण, उ० १६। ५८; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ५८)

६. उच्छिष्ट अवस्थामें (जूठे मुँह-हाथोंसे) गौ, ब्राह्मण, अग्नि, देव-प्रतिमा, गुरु, आसन, पुष्पवाले वृक्ष, यज्ञोपयोगी वृक्ष तथा अपने मस्तकका स्पर्श नहीं करना चाहिये।

७. जूठे हाथसे अपने मस्तकका स्पर्श न करे; क्योंकि समस्त प्राण मस्तकके ही आश्रित हैं।

८. जूठे मुँह-हाथोंसे अथवा पैरसे कभी गौ, ब्राह्मण और अग्निका स्पर्श नहीं करना चाहिये।

---

६. उच्छिष्टो न स्पृशेदग्निं ब्राह्मणं दैवतं गुरुम्। स्वशीर्षं पुष्पवृक्षं च यज्ञवृक्षमधार्मिकम्॥
(पद्मपुराण, सृष्टि० ५१।९२)

न स्पृशेत् पाणिनोच्छिष्टो विप्रो गोब्राह्मणानलान्। न चासनं पदा वापि न देवप्रतिमां स्पृशेत्॥ (कूर्मपुराण, उ० १६।७२; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५।७२-७३)

७. उच्छिष्टो न स्पृशेच्छीर्षं सर्वे प्राणास्तदाश्रयाः।
(महाभारत, अनु० १०४।६८; विष्णुधर्मोत्तर० ३।२३३।१५)

'न स्पृशेच्चैतदुच्छिष्टो' (मनुस्मृति ४।८२)

'नोच्छिष्टः संस्पृशेच्छिरः' (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६।७५)

८. 'ब्राह्मणमग्निं गां च नोच्छिष्टः स्पृशेत्' (सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४।१०१)

गोब्राह्मणानलान्नानि नोच्छिष्टानि पदास्पृशेत्। (याज्ञवल्क्यस्मृति १।१५५)

न स्पृशेत्पाणिनोच्छिष्टो विप्रो गोब्राह्मणानलान्।
(मनुस्मृति ४।१४२); (कूर्मपुराण, उ० १६।७२)

त्रीणि तेजांसि नोच्छिष्ट आलभेत कदाचन॥ अग्निं गां ब्राह्मणं चैव तथा ह्यायुर्न रिष्यते। (महाभारत, अनु० १०४।६२-६३)

तस्माद् गावो न पादेन स्पृष्टव्या वै कदाचन। ब्राह्मणश्च महातेजा दीप्यमानस्तथानलः॥

श्रद्दधानेन मर्त्येन आत्मनो हितमिच्छता। एते दोषा मया प्रोक्तास्त्रिषु यः पादमुत्सृजेत्॥ (महाभारत, अनु० १२६।३३-३४)

ब्राह्मणस्य गोरिति पदोपस्पर्शनं वर्जयेत्॥ (आपस्तम्बधर्मसूत्र १।११।३१।६)

उच्छिष्टो नालपेत् किञ्चित् स्वाध्यायं च विवर्जयेत्। गां ब्राह्मणं तथा चाग्निं स्वमूर्धानं च स्पृशेत्॥ (मार्कण्डेयपुराण ३४।३०; ब्रह्मपुराण २२१।३०)।

गोब्राह्मणाग्नयः स्पृष्टा यैरुच्छिष्टैर्नरेश्वर। तेषामेतेग्निकुम्भेषु लेलिह्यन्तेग्निना कराः॥ (मार्कण्डेयपुराण १४।५७)

९. गौ, अग्नि, माता, ब्राह्मण, बड़े भाई, पिता, बहिन, कुटुम्बकी स्त्री, गुरु, शिशु तथा बड़े-बूढ़ोंका कभी पैरसे स्पर्श नहीं करना चाहिये।

१०. पतित, कोढ़ी, चाण्डाल, गोभक्षी, कुत्ता, रजस्वला स्त्री और भीलका स्पर्श हो जानेपर स्नान करना चाहिये।

११. कुत्तेका स्पर्श होनेपर वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये।

१२. श्मशान-वृक्ष, चिता, यूप, चाण्डाल, शिवनिर्माल्यका भक्षण करनेवाले तथा वेदोंको बेचनेवालेका स्पर्श कर लेनेपर वस्त्रसहित जलमें प्रवेश करके स्नान करना चाहिये।

१३. गीली हड्डी, पतित, सर्प, मुर्दा और कुत्तेको छूकर वस्त्रसहित स्नान करे। चिता, चिताकी लकड़ी, यूप तथा चाण्डालका स्पर्श कर लेनेपर मनुष्य वस्त्रसहित जलमें प्रवेश करे।

---

९. गावोग्निर्जननी विप्रो ज्येष्ठभ्राता पिता स्वसा। जामयो गुरवो वृद्धा ये स्पृष्टास्तु पदा नृभिः॥ बद्धांघ्रयस्ते निगडैर्लौहैरग्नि प्रतापितैः। (मार्कण्डेयपुराण १४।५९-६०)

पादाभ्यां न स्पृशेदग्निं गुरुं ब्राह्मणमेव च। नैव गां न कुमारीं च न वृद्धं न शिशुं तथा॥ (चाणक्यनीति० ७।६)

१०. पतितं कुष्ठसंयुक्तं चाण्डालं च गवाशिनम्। श्वानं रजस्वलां भिल्लं स्पृष्ट्वा स्नानं समाचरेत्॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ५०।३२)

११. शुनोपहतः सचेलोऽवगाहेत॥
(आपस्तम्बधर्मसूत्र १।५।१५।१६); (बौधायनधर्मसूत्र १।५।११।३७)

१२. चैत्यवृक्षं चितायूपं (धूमं) चाण्डालं वेदविक्रयम्। अज्ञानात्स्पृशते यस्तु सचैलो जलमाविशेत्॥ (वाधूलस्मृति १८७)

वेदविक्रयिणं यूपं पतितं चितिमेव च। स्पृष्ट्वा समाचरेत्स्नानं श्वानं चाण्डालमेव च॥ (बौधायनस्मृति १।५।१४०); (बौधायनधर्मसूत्र १।५।११।३४)

चैत्यवृक्षञ्चितिं यूपं शिवनिर्माल्य भोजनम्। वेदविक्रयिणं स्पृष्ट्वा सचैलो जलमाविशेत्॥ (स्कन्दपुराण, काशी० पू० ४०।१३०)

१३. आर्द्रास्थि च तथोच्छिष्टं शूद्रं च पतितं तथा। सर्पं च भषणं स्पृष्ट्वा सचैलं स्नानमाचरेत्॥ चितिं च चितिकाष्ठं च यूपं चाण्डालमेव च। स्पृष्ट्वा देवलकं चैव सवासा जलमाविशेत्॥ (नारदपुराण, पूर्व० २६।३०-३१)

१४. चाण्डाल, रजस्वला स्त्री, पतित, सूतिका, मुर्दा तथा मुर्देका स्पर्श करनेवालोंका स्पर्श कर लेनेपर स्नान करनेसे शुद्धि होती है।

१५. अभक्ष्य पदार्थ, नवप्रसूता स्त्री, नपुंसक, बिलाव, चूहा, कुत्ता, मुर्गा, पतित, जाति-बहिष्कृत, चाण्डाल, मुर्दा ढोनेवाले, रजस्वला स्त्री, ग्रामीण सूअर तथा सूतक (जननाशौच-मरणाशौच)-से दूषित मनुष्यका स्पर्श करनेपर स्नान करनेसे शुद्धि होती है।

१६. कुत्ता, मुर्गा तथा चाण्डाल—ये तीनों समान अस्पृश्य होते हैं। गधा और ऊँट उनसे भी अधिक अस्पृश्य होते हैं। अतः इनका कभी स्पर्श नहीं करना चाहिये।

१७. आसन, शय्या, सवारी, नाव तथा मार्गके तृण—ये यदि कुत्ते, चाण्डाल अथवा पतितसे छुए जाते हैं तो वायुके लगनेसे ही शुद्ध हो जाते हैं।

---

१४. दिवाकीर्तिमुदक्यां च पतितं सूतिकां तथा। शवं तत्स्पृष्टिनं चैव स्पृष्ट्वा स्नानेन शुद्ध्यति॥ (मनुस्मृति ५। ८५)

१५. अभोज्यसूतिकाषण्ढमार्जाराखुश्वकुक्कुटान्। पतिताविद्धचण्डालमृतहारांश्च धर्मवित्॥

संस्पृश्य शुद्ध्यते स्नानादुदक्या ग्रामसूकरौ। तद्वच्च सूतिकाशौचदूषितौ पुरुषावपि॥ (मार्कण्डेयपुराण ३५। ३६-३७)।

अभोज्यभिक्षुपाखण्डमार्जारखरकुक्कुटान्

(ब्रह्मपुराण २२१। १४३—१४५)

१६. श्वानकुक्कुटचाण्डालाः समस्पर्शाः प्रकीर्तिताः। रासभोष्ट्रौ विशेषेण तस्मात्तान्नैव संस्पृशेत्॥ (पञ्चतन्त्र, काको० ११५)

१७. आसनं शयनं यानं नावः पथि तृणानि च। श्वचण्डालपतितस्पृष्टं मारुतेनैव शुध्यति॥ (बौधायनस्मृति १। ५। ६२)

१८. स्नान किया हुआ वस्त्र तथा घड़ेसे छलकता हुआ जल—इन दोनोंके स्पर्शसे बचना चाहिये। इनका स्पर्श पुण्योंका नाश करनेवाला है।

१९. भेड़ोंकी धूलि, सूपकी वायु, नख-जलका स्पर्श और घड़ेसे छलके हुए जलकी छींटें—इनसे दूर रहना चाहिये।

२०. चिताके धुएँसे बचकर रहना चाहिये।

२१. तेल-मालिश किये हुए किसीके शरीरका स्पर्श नहीं करना चाहिये।

२२. सिरपर तेल लगानेके बाद उसी हाथसे दूसरे अंगोंका स्पर्श नहीं करना चाहिये।

२३. लक्ष्मी चाहनेवाला मनुष्य घीको जूठे हाथोंसे न छुए।

---

१८. वर्जयेन्मार्जनीरेणुं स्नानवस्त्रघटोदकम्।

(कूर्मपुराण, उ० १६। ९३; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ९४)

मार्जनीरजमेषाण्डं स्नानवस्त्रघटोदकम्। नवाम्भसि तथा चैव हन्ति पुण्यं दिवाकृतम्॥ (लिखितस्मृति ९४)

१९. अवीरजोऽनुगमनं ब्रह्महत्या कृताथ वा। (विष्णुपुराण ५। ३८। ३७)

कच्चिन्नु शूर्पवातस्य गोचरत्वं गतोऽर्जुन (" ५। ३८। ४०)

स्पृष्टो नखाम्भसा वाथ घटवार्युक्षितोऽपि वा। (" ५। ३८। ४१)

२०. 'विरुद्धं वर्जयेत् कर्म प्रेतधूमं नदीतटम्'

(याज्ञवल्क्यस्मृति १। १३९; गरुड़पुराण, आचार० ९६। ४२)

'प्रेतधूमं विवर्जयेत्' (कूर्मपुराण, उ० १६। ६७; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ६७)

'वर्जयेच्छवधूमं च' (विष्णुधर्मोत्तर० २। ८९। ५६)

२१. 'नाभ्यङ्गितं कायमुपस्पृशेच्च' (वामनपुराण १४। ५४)

२२. शिरःस्नातस्तु तैलैश्च नाङ्गं किञ्चिदपि स्पृशेत्। (महाभारत, अनु० १०४। ७०)

शिरःस्नातस्तु तैलेन नाङ्गं किञ्चिदपि स्पृशेत्। (विष्णुधर्मोत्तर० ३। २३३। २३८)

२३. 'उच्छिष्टश्चास्पृशन् घृतम्' (महाभारत, शान्ति० २२८। ५९)

'उच्छिष्टश्चास्पृशद् घृतम्' (" " २२५। १३)

शुद्धि-अशुद्धि

१. शय्या, आसन, सवारी (गाड़ी), स्त्री, बालक (सन्तान), वृद्ध, वस्त्र, यज्ञोपवीत और कमण्डलु—ये वस्तुएँ अपनी हों तभी अपने लिये शुद्ध होती हैं। ये वस्तुएँ दूसरोंकी हों तो अपने लिये शुद्ध नहीं होतीं।

२. नाभिसे ऊपरकी इन्द्रियाँ स्पर्शमें शुद्ध हैं; परन्तु नाभिसे नीचेकी इन्द्रियाँ अशुद्ध हैं। देहसे निकलनेवाले मल भी अशुद्ध हैं।

३. बहुत-से इकट्ठे हुए पदार्थोंमेंसे एकके अशुद्ध होनेसे केवल वह एक ही अशुद्ध होता है, अन्य नहीं।

---

१. आत्मस्त्रीह्यात्मबालश्च आत्मवृद्धस्तथैव च। आत्मनः शुचयः सर्वे परेषामशुचीनि तु॥ (बृहत्पराशरस्मृति ८। ३०४)

आत्मशय्या च वस्त्रं च जायापत्यं कमण्डलुः। आत्मनः शुचिरेतानि परेषामशुचीनि तु॥ (आपस्तम्बस्मृति २। ४)

आत्मशय्याऽऽसनं वस्त्रं जायाऽपत्यं कमण्डलुः। शुचीन्यात्मन एतानि परेषामशुचीनि तु॥ (बौधायनस्मृति १। ५। ६१); (बौधायनधर्मसूत्र १। ६। ९। ६)

शय्या भार्या शिशुर्वस्त्रमुपवीतं कमण्डलुः। आत्मनः कथितं शुद्धं न शुद्धं हि परस्य च॥ (शंखस्मृति १६। १५)

शय्या भार्या शिशुर्वस्त्रमुपवीतं कमण्डलुः। आत्मनः कथिताश्शुद्धा न परेषां कदाचन॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। ८५)

आसनं शयनं यानं जायाऽपत्यं कमण्डलुः॥ आत्मनः शुचिरेतानि परेषां न शुचिर्भवेत्। (अग्निपुराण १५५। १३-१४)

२. ऊर्ध्वं नाभेर्यानि खानि तानि मेध्यानि सर्वशः। यान्यधस्तान्यमेध्यानि देहाच्चैव मलाश्च्युताः॥ (मनुस्मृति ५। १३२; विष्णुस्मृति २३)

३. बहूनामेकलग्नानामेकश्चेदशुचिर्भवेत्। अशौचमेकमात्रस्य नेतरेषां कथञ्चन॥ (अत्रिसंहिता २४२)

४. कभी भी अशुद्ध अवस्थामें शयन, भोजन, स्नान, स्वाध्याय, यात्रा तथा घरसे बाहर निकलना नहीं चाहिये।

५. कहींसे आया हुआ मनुष्य अपने दोनों पैरोंको धोये बिना शुद्ध नहीं होता।

६. जिस भूमिपर एक बार भी नीलकी खेती की जाय, वह भूमि बारह वर्षोंतक अशुद्ध रहती है, उसके बाद शुद्ध होती है।

७. सोने और चाँदीके पात्र यदि चिकने पदार्थ (घी आदि)-के लेपसे रहित हों तो जलसे धोनेमात्रसे शुद्ध हो जाते हैं। शंखकी शुद्धि भी जलसे धोनेमात्रसे हो जाती है।

---

४. अशुद्धं शयनं यानं स्वाध्यायं स्नानवाहनम्। बहिर्निष्क्रमणं चैव न कुर्वीत कथञ्चन॥ (कूर्मपुराण, उ० १६। ७०)

अशुद्धः शयनं पानं स्वाध्यायं स्नानभोजनम्॥ बहिर्निष्क्रमणं चैव न कुर्वीत कदाचन। (पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ७०-७१)

५. अकृत्वा पादयोः शौचं मार्गतो न शुचिर्भवेत्। (पद्मपुराण, स्वर्ग० ५२। १०)

अकृत्वा पादयोः शौचमाचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत्॥ (कूर्मपुराण, उ० १३। ९)

६. वापिता यत्र नीली स्यात्तावद्भूम्यशुचिर्भवेत्। यावद्द्वादशवर्षाणि अत ऊर्ध्वं शुचिर्भवेत्॥ (आंगिरसस्मृति २४)

यावत्यां वापिता नीली तावती चाशुचिर्मही। प्रमाणं द्वादशाब्दानि अत ऊर्ध्वं शुचिर्भवेत्॥ (आपस्तम्बस्मृति ६। १०)

७. निर्लेपं काञ्चनं भाण्डमद्भिरेव विशुद्ध्यति। अब्जमश्ममयं चैव राजसं चानुपस्कृतम्॥ (मनुस्मृति ५। ११२)

स्वर्णरौप्यादिपात्रं तु जलमात्रेण शुध्यति। (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। ८२)

अद्भिरेव काञ्चनं पूयते तथा राजसम्। (वसिष्ठस्मृति ३। ५७)

अब्जानां चैव भाण्डानां सर्वस्याश्ममयस्य च। शाकरज्जुमूलफलवैदलानां तथैव च॥ मार्जनाद्यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि। (अग्निपुराण १५६। ३-४)

सौवर्णराजताब्जानां शंखरज्ज्वादिचर्मणाम्। पात्राणाञ्चासनाञ्च वारिणा शुद्धिरिष्यते (गरुड़पुराण, आचार० ९७। १)

८. काँसे व लोहेका पात्र राखसे और ताँबेका पात्र खटाईसे शुद्ध होता है।

९. मिट्टीका पात्र पुनः पकानेसे शुद्ध होता है। परन्तु मल, मूत्र, मदिरा, थूक, रक्त आदिसे स्पर्श हो जानेपर वह पुनः पकानेसे भी शुद्ध नहीं होता।

१०. नारियल, तूँबी आदि फलनिर्मित पात्रोंकी शुद्धि गोपुच्छके बालोंद्वारा रगड़नेसे होती है।

११. स्त्री रजोधर्मसे और नदी वेग (प्रवाह)-से शुद्ध होती है।

---

८. भस्मना शुध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुध्यति॥
(वसिष्ठस्मृति ३। ५४; आंगिरसस्मृति ४१; पाराशरस्मृति ७। ३)
'भस्मना शुध्यते कांस्यम्' (अत्रिस्मृति ५। ३८)
भस्मना कांस्यपात्रं तु ताम्रमम्लेन शुद्ध्यति। (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। ८१)
भस्माद्भिर्लोहकांस्यानामज्ञातं च सदा शुचि॥ (गरुड़पुराण, आचार० ९७। ५)
९. 'पुनः पाकेन मृण्मयम्' (मनुस्मृति ५। १२२; अत्रिस्मृति ५। ३८)
'पुनः पाकान्महीमयम्' (गरुड़पुराण, आचार० ९७। ३)
'मृन्मये दहनाच्छुद्धिः' (पाराशरस्मृति ७। २९)
मद्यैर्मूत्रैः पुरीषैर्वा ष्ठीवनैः पूयशोणितैः। संस्पृष्टं नैव शुद्ध्येत पुनः पाकेन मृन्मयम्॥ (मनुस्मृति ५। १२३)
मृण्मयं भाजनं सर्वं पुनः पाकेन शुध्यति। मद्यैर्मूत्रैः पुरीषैश्च ष्ठीवनैः पूयशोणितैः॥ संस्पृष्टं नैव शुध्येत पुनः पाकेन मृण्मयम्। (शंखस्मृति १६। १-२)
मद्यैर्मूत्रैः पुरीषैर्वा श्लेष्मपूयाश्रुशोणितैः। संस्पृष्टं नैव शुध्येत पुनः पाकेन मृण्मयम्॥ (वसिष्ठस्मृति ३। ५५)
१०. 'गोबालैः फलसम्भुवाम्' (याज्ञवल्क्यस्मृति १। १८५)
'गोबालैः फलमयानाम्' (वसिष्ठस्मृति ३। ५०)
'गोबालैः फलपात्राणाम्' (अग्निपुराण १५६। ८)
फलमयानां गोबालरज्ज्वा। (बौधायनधर्मसूत्र १। ५। ८। ३२)
११. रजसा शुध्यते नारी नदी वेगेन शुध्यति।
(वसिष्ठस्मृति ३। ५४; आंगिरसस्मृति ४२; अत्रिस्मृति ५। ३८)
संशुद्धी रजसा नार्यास्तटिन्यावेगतः शुचिः॥
(स्कन्दपुराण, काशी० पू० ४०। ४८)

१२. सम्मार्जन (झाड़ना), लीपना (गोबर आदिसे), सींचना (गंगाजल-गोमूत्र आदिसे), खोदना (ऊपरकी कुछ मिट्टी खोदकर फेंकना) और (एक दिन-रात) गायोंको ठहराना—इन पाँच प्रकारोंसे भूमिकी शुद्धि होती है।

१३. अन्न (धान्य) और वस्त्र यदि थोड़ी मात्रामें हों तो जलसे धोनेसे शुद्ध होते हैं और अधिक मात्रामें हों तो जल छिड़कनेसे शुद्ध होते हैं।

१४. ऊन, कपास, गोंद, गुड़ और नमककी शुद्धि धूपमें तपानेसे होती है।

१५. घी, दूध, तेल आदि यदि थोड़े हों तो अशुद्ध होनेपर उनका त्याग कर दे। यदि वे अधिक हों तो उनमेंसे थोड़ेको हटाकर शेष घी या तेलको (दो कुशपत्रोंसे) उछालनेसे तथा दूध आदिको गर्म करनेसे उनकी शुद्धि हो जाती है।

---

१२. सम्मार्जनोपाञ्जनेन सेकेनोल्लेखनेन च। गवां च परिवासेन भूमिः शुद्ध्यति पञ्चभिः॥ (मनुस्मृति ५। १२४)
भूमेस्तु सम्मार्जनप्रोक्षणोपलेपनावस्तरणोल्लेखनैर्यथास्थानं दोषविशेषात् प्रायत्यम्।
(बौधायनधर्मसूत्र १। ६। ९। ११)
१३. अद्भिस्तु प्रोक्षणं शौचं बहूनां धान्यवाससाम्। प्रक्षालनेन त्वल्पानामद्भिः शौचं विधीयते॥ (मनुस्मृति ५। ११८)
शोधनान् स्त्रक्षणाद्वस्त्रे मृत्तिकाद्भिर्विशोधनम्। बहुवस्त्रे प्रोक्षणाच्च दारवाणां च तक्षणात्॥ (अग्निपुराण १५६। ५)
१४. निर्यासानां गुडानां च लवणानां च शोषणात्॥ कुशुम्भकुसुमानां च ऊर्णाकार्पासयोस्तथा। शुद्धं नदीगतं तोयं पुण्यं तद्वत्प्रसारितम्॥
(अग्निपुराण १५६। ८-९)
१५. स्नेहो वा गोरसो वापि तत्र शुद्धिः कथं भवेत्॥ अल्पं परित्यजेत्तत्र स्नेहस्योत्पवनेन च। अनलज्वालया शुद्धिर्गोरसस्य विधीयते॥
(पाराशरस्मृति ६। ७४-७५)
प्रोक्षणात् संहतानां तु द्रवाणां च तथोत्प्लवात्। (अग्निपुराण १५६। ६)

१६. कुआँ, बावड़ी, जलाशयके किसी प्रकार दूषित होनेपर सौ घड़े जल निकालकर पंचगव्य डालनेसे शुद्धि हो जाती है।

१७. अत्यन्त अशुद्ध वस्तु छः मासतक भूमिमें गाड़नेसे शुद्ध हो जाती है।

१८. शंख, पत्थर, सोना, चाँदी, रस्सी, कपड़ा, साग, मूल, फल, बाँससे बनी वस्तुएँ, मणि, हीरा, मूँगा, मोती तथा मनुष्योंके शरीरकी शुद्धि जलसे होती है।

१९. मक्खी, मुखसे निकली (लारकी) छोटी-छोटी बूँदें, वृक्षकी

---

१६. वापीकूपतडागेषु दूषितेषु कथञ्चन। उद्धृत्य वै कुम्भशतं पञ्चगव्येन शुद्ध्यति॥ (पाराशरस्मृति ७।५)

वापीकूपतडागानां दूषितानाञ्च शोधनम्। कुम्भानां शतमुद्धृत्य पञ्चगव्यं ततः क्षिपेत्॥ (आपस्तम्बस्मृति २।११)

वापीकूपतडागानां दूषितानां विशोधनम्। अपां घटशतोद्धारः पञ्चगव्यं च निक्षिपेत्॥ (संवर्तस्मृति १८६)

१७. भूमौ निःक्षिप्य षण्मासमत्यन्तोपहतं शुचि। (आंगिरसस्मृति ४२)

१८. हेमराजतशङ्खानां पात्राणां वैणवस्य च। चर्मणो रज्जुवस्त्राणां शुद्धिर्जायेत वारिणा॥ (बृहत्पराशरस्मृति ६।३३२)

सौवर्णराजताब्जानामूर्ध्वपात्रग्रहाश्मनाम्। शाकरज्जुमूलफलवासोविदलचर्मणाम्॥ पात्राणां चमसानां च वारिणा शुद्धिरिष्यते। (याज्ञवल्क्यस्मृति १।१८२-१८३)

शङ्खाश्मस्वर्णरूप्याणां रज्जूनामथ वाससाम्। शाकमूलफलानां च तथा द्विदलचर्मणा। मणिवज्रप्रवालानां तथा मुक्ताफलस्य च॥ गात्राणां च मनुष्याणामम्बुना शौचमिष्यते। (मार्कण्डेयपुराण ३५।५-६)

शंखाश्मस्वर्णरूप्याणां रज्जूनामथ वाससाम्। शाकमूलफलानां च तथा विदलचर्मणाम्॥ मणिवस्त्रप्रवालानां तथा मुक्ताफलस्य च। पात्राणां चमसानां च अम्बुना शौचमिष्यते॥ (ब्रह्मपुराण २२१।११३-११४)

१९. मक्षिका विप्रुषश्छाया गौरश्वः सूर्यरश्मयः। रजो भूर्वायुरग्निश्च स्पर्शे मेध्यानि निर्दिशेत्॥ (मनुस्मृति ५।१३३)

गौर्वह्निभानवच्छाया जलमश्वं वसुन्धरा। विप्रुषो मक्षिका वायुर्न दुष्यन्ति कदाचन॥ (बृहत्पराशरस्मृति ६।३४०)

छाया, गाय, घोड़ा, सूर्यकी किरण, धूलि, भूमि, वायु तथा अग्निको स्पर्शमें शुद्ध जानना चाहिये।

२०. निरन्तर प्रवाहवाली जलधारा, वायुसे उड़ाई गयी धूलि, बालक, स्त्री और वृद्ध कभी दूषित नहीं होते।

२१. गायको पेन्हानेमें बछड़ेका मुख शुद्ध है। फल गिरानेमें पक्षीकी चोंच शुद्ध है। गौएँ मुखसे अशुद्ध और पीठसे शुद्ध हैं।

रश्मिरग्नी रजच्छाया गौरश्वो वसुधानिलः। विप्रुषो मक्षिका स्पर्शे वत्सः प्रस्त्रवणे शुचिः॥ (याज्ञवल्क्यस्मृति १।१९३)

रजोग्निरश्वो गौश्छाया रश्मयः पवनो मही। विप्रुषो मक्षिकाद्याश्च दुष्टसङ्गाददोषिणः॥ (मार्कण्डेयपुराण ३५।२१; ब्रह्मपुराण २२१।१२८-१२९)

रश्मिरग्निरजच्छाया गौश्चैव वसुधानि च॥ अश्वाजविप्रुषो मेध्यास्तथा च मलविन्दवः। (गरुड़पुराण, आचार० ९७।७-८)

न मुख्या विप्रुष उच्छिष्टं कुर्वन्ति। न चेदङ्गे निपतन्ति। (गौतमधर्मसूत्र १।१।४४)

२०. मक्षिकां सन्ततीर्धारा विप्रुषो ब्रह्मविन्दवः। स्त्रीमुखं बालवृद्धौ च न दुष्यन्ति कदाचन॥ (बृहत्पराशरस्मृति ८।३०३)

अदुष्टा सन्तता धारा वातोद्धूताश्च रेणवः। स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च न दुष्यन्ति कदाचन॥ (पाराशरस्मृति ७।३६)

न दुष्येत् सन्तता धारा वातोद्धूताश्च.................कदाचन॥ (आपस्तम्बस्मृति २।३)

अदुष्टाः सन्तताधाराः वातोद्धूताश्च रेणवः। स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च न दुष्यन्ति कदाचन॥ (गरुड़पुराण, आचार० २१४।२२)

२१. वत्सः प्रस्त्रवणे मेध्यः शकुनिः फलपातने। स्त्रियश्च रतिसंसर्गे......... (वसिष्ठस्मृति २८।८)

नित्यमास्यं शुचिः स्त्रीणां शकुनिः फलपातने। प्रस्त्रवे च शुचिर्वत्सः......... (मनुस्मृति ५।१३०; विष्णुस्मृति २३)

'वत्सः प्रस्त्रवणे शुचिः' (याज्ञवल्क्यस्मृति १।१९३)

'स्त्रीमुखं च सदा शुद्धम्' (बृहत्पराशरस्मृति ६।३३७)

अजाश्वं मुखतो मेध्यं न गौर्न नरजा मलाः। (याज्ञवल्क्यस्मृति १।१९४; विष्णुस्मृति २३)

बकरे और घोड़ेका मुख शुद्ध है। ब्राह्मणोंके चरण शुद्ध हैं। माताका स्तन शुद्ध है। स्त्रीका मुख शुद्ध है। प्रसवकालमें बछड़ा शुद्ध है।

२२. आसन, शय्या, सवारी, नाव, रास्तेका कीचड़ और जल, मार्गके तृण तथा पक्की ईंटोंसे बने स्थान—ये सब वस्तुएँ सूर्यकी किरणों तथा वायुके स्पर्शसे शुद्ध हो जाते हैं।

शुचिः प्रस्थापने वत्सो अजाश्वौ मुखतस्तथा। शुचिः प्रस्त्रवणे वतसस्तथाजाश्वौ मुखे शुची। न तु गौर्मुखतो मेध्या न च गोमुखजा मलाः॥ (बृहत्पराशरस्मृति ६। ३४१)

अजाश्वौ मुखतो मेध्यौ न गोर्वत्सस्य चाननम्। मातुः प्रस्त्रवणे मेध्यं शकुनिः फलपातने॥ (मार्कण्डेयपुराण ३५। २२; ब्रह्मपुराण २२१। १२९-१३०)

मुखवर्जं च गौः शुद्धाशुद्धमश्वाजयोर्मुखम्। नारीणां चैव वत्सानां शकुनीनां शुनोमुखम्॥ (अग्निपुराण १५६। १०)

वत्सः प्रस्त्रवणे मेध्यः शुकुनिः फलपातने। (स्कन्दपुराण, काशी० पू० ४०।४५)

नित्यमास्यं शुचिः स्त्रीणां शकुनैः पातितं फलम्। प्रस्त्रवे च शुचिर्वत्सः .... (गरुड़पुराण, आचार० २१४। २३)

अजाश्वा मुखतो मेध्या गावो मेध्यास्तु पृष्ठतः। ब्राह्मणाः पादतो मेध्याः स्त्रियो मेध्यास्तु सर्वतः॥ (वसिष्ठस्मृति २८। ९) ब्राह्मणाः पादतो मेध्या गावो मेध्याश्च पृष्ठतः। अजाश्वा मुखतो मेध्याः स्त्रियो मेध्यास्तु सर्वतः॥ (बृहत्संहिता ७४। ८)। अजाश्वयोर्मुखं मेध्यं गावो मेध्यास्तु पृष्ठतः। पादतो ब्राह्मणा मेध्याः स्त्रियो मेध्यास्तु सर्वतः॥ (स्कन्दपुराण, काशी० पू० ४०। ४६)

२२. रथ्याकर्दमतोयानि नावः पन्थास्तृणानि च। मारुतार्केण शुद्ध्यन्ति पक्वेष्टकचितानि च॥ (पाराशरस्मृति ७। ३५)

रथ्याकर्दमतोयानि स्पृष्टान्यन्त्यश्ववायसैः। मारुतेनैव शुद्ध्यन्ति पक्वेष्टकचितानि च॥ (याज्ञवल्क्यस्मृति १। १९७; विष्णुस्मृति २३)

आसनं शयनं यानं नावः पथि तृणानि च। श्वचण्डालपतितस्पृष्टं मारुतेनैव शुध्यति॥ (बौधायनस्मृति १। ५। ६२); (बौधायनधर्मसूत्र १। ६। ९। ७)

आसनं शयनं यानं नावः पथि तृणानि च। सोमसूर्यांशुपवनैः शुद्ध्यन्ते तानि पण्यवत्॥ (मार्कण्डेयपुराण ३५। २३)। आसनं शयनं यानं तटौ नद्यास्तृणानि च। सोमसूर्यांशुपवनैः शुद्ध्यन्ते तानि पण्यवत्॥ (ब्रह्मपुराण २२१। १३०-१३१)

२३. कारीगरका हाथ, बाजारमें बेचनेके लिये फैलायी हुई वस्तु और ब्रह्मचारीको प्राप्त भिक्षा सर्वदा शुद्ध हैं।

२४. श्राद्ध, व्रत, दान, प्रतिष्ठा तथा देवपूजनके लिये तुलसीपत्र बासी होनेपर भी तीन राततक पवित्र रहता है। भूमिपर अथवा जलमें गिरा हुआ तथा भगवान् विष्णुको अर्पित तुलसीपत्र भी धो देनेपर दूसरे कार्यके लिये शुद्ध माना जाता है।

२५. अपवित्र स्थानमें उत्पन्न हुए वृक्षोंके फल-फूल दूषित नहीं होते।

२६. मशकका जल, धाराका जल और यन्त्रसे निकाला हुआ जल शुद्ध होता है। खानोंसे निकली हुई वस्तुएँ शुद्ध होती हैं। मदिराकी

---

२३. नित्यं शुद्धः कारुहस्तः पण्ये यच्च प्रसारितम्। ब्रह्मचारिगतं भैक्ष्यं नित्यं मेध्यमिति स्थितिः॥ (मनुस्मृति ५। १२९)। नित्यं शुद्धः .... मेध्यमिति श्रुतिः॥ (बौधायनस्मृति १। ५। ५६)

शुद्ध्येत कारुहस्तस्थं पण्यं यत्स्यात्प्रसारितम्। भैक्ष्यं च प्रोक्षणाच्छुद्ध्येत्स्पृष्टिः साक्षान्न यस्य तु॥ (बृहत्पराशरस्मृति ६। ३३६)

नित्यं शुद्धः कारुहस्तः पण्यं यच्च प्रसारितम्। ब्राह्मणान्तरितं भैक्ष्यमाकराः सर्व एव च॥ (विष्णुस्मृति २३)

२४. त्रिरात्रं तुलसीपत्रं शुद्धं पर्युषितं सति। श्राद्धे व्रते वा दाने वा प्रतिष्ठायां सुरार्चने॥ भूगतं तोयपतितं यद्दत्तं विष्णवे सति। शुद्धं तु तुलसीपत्रं क्षालनादन्यकर्मणि॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृति० २१। ५२-५३; देवीभागवत ९। २४। ५१-५२)

२५. अमेध्येषु च ये वृक्षा उप्ताः पुष्पफलोपगाः। तेषामपि न दुष्यन्ति पुष्पाणि च फलानि च॥

(बौधायनस्मृति १। ५। ५९); (बौधायनधर्मसूत्र १। ६। ९। ४)

२६. चर्मभाण्डैस्तु धाराभिस्तथा यन्त्रोद्धृतं जलम्॥ (अत्रिसंहिता २३७)

आकराहतवस्तूनि नाशुचीनि कदाचन। आकराः शुचयः सर्वे वर्जयित्वा सुराकरम्॥ भृष्टाभृष्टयवाश्चैव तथैव चणकाः स्मृताः। खर्जूरं चैव कर्पूरमन्यभृष्टतरं शुचिः॥ (अत्रिसंहिता २३९-२४०)

खानको छोड़कर सब खान शुद्ध होते हैं। भूंजे हुए जौ और चने शुद्ध हैं। खजूर, कपूर और भूंजे हुए अन्य पदार्थ भी शुद्ध हैं।

२७. आपत्तिकालमें शुद्धि-अशुद्धिका विचार न करे, पीछे स्वस्थ होनेपर ही विचार करे।

२८. जबतक मनुष्यमें मल-मूत्रका वेग (हाजत) रहता है, तबतक वह अशुद्ध रहता है।

२९. लकड़ीसे बने पात्रोंकी शुद्धि छीलनेसे, बाँससे बने पात्रोंकी शुद्धि गोबरसे, रेशमी वस्त्रोंकी शुद्धि पीली सरसोंके लेपसे और ऊनी वस्त्रोंकी शुद्धि सूर्यकी किरणोंसे होती है।

शुद्धं नदीगतं तोयं सर्वदैव तथाऽऽकरः। (शंखस्मृति १६। १३)

'आकराः सर्व एव च' (विष्णुस्मृति २३)

आकराः शुचयः सर्वे वर्जयित्वा सुराकरम्।

(बौधायनस्मृति १। ५। ५८); (बौधायनधर्मसूत्र १। ६। ९। ३)

२७. आपत्काले तु निस्तीर्णे शौचाचारं न चिन्तयेत्॥ शुद्धिं समुद्धरेत्पश्चात्स्वस्थो धर्मं समाचरेत्॥ (पाराशरस्मृति ७। ४२)

स्वस्थकाले त्विदं सर्वमशौचं परिकीर्तितम्। आपद्गतस्य सर्वस्य सूतके न तु सूतकम्॥ (दक्षस्मृति ६। १८)

२८. यावत्तु धारयेद्वेगाः तावदप्रयतो भवेत्॥ (वृद्धगौतमस्मृति १२। १६)

यावत् तु धारयेद् वेगं तावदप्रयतो भवेत्॥ (महाभारत, आश्व० ९२)

२९. दारवाणां तक्षणम्। वैणवानां गोमयेन। और्णानामादित्येन। क्षौमाणां गौरसर्षपकल्केन। (बौधायनधर्मसूत्र १। ५। ८। ३०-३१, ३५-३६)

सूतक (जननाशौच-मरणाशौच)

१. घरमें किसीका जन्म या मृत्यु होनेपर ब्राह्मण दस दिनोंमें, क्षत्रिय बारह दिनोंमें, वैश्य पन्द्रह दिनोंमें और शूद्र एक मासमें शुद्ध होता है।

२. प्रसूता बकरी, गाय, भैंस तथा ब्राह्मणी और भूमिस्थित वर्षाका नवीन जल—ये सब दस दिनोंमें शुद्ध होते हैं।

---

१. शुद्ध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः। वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति॥ (मनुस्मृति ५। ८३; कूर्मपुराण, उ० २३। ३८)

ब्राह्मणस्य सपिण्डानां जननमरणयोर्दशाहमशौचम्। द्वादशाहं राजन्यस्य। पञ्चदशाहं वैश्यस्य। मासं शूद्रस्य। (विष्णुस्मृति २२)

विप्रो दशाहमासीत दानाध्ययनवर्जितः। क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पञ्चदशैव तु। शूद्रः शुद्ध्यति मासेन संवर्त्तवचनं यथा॥ (संवर्त्तस्मृति ३८)

जातिविप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः। वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति॥ (दक्षस्मृति ६। ७)

ब्राह्मणो दशरात्रेण द्वादशाहेन भूमिपः। वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति॥ (अत्रिसंहिता ८५)

नामधारकविप्रस्तु दशाहेन विशुद्ध्यति॥ क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पक्षेण शुद्ध्यति। मासेन तु तथा शूद्रः शुद्धिमाप्नोति नान्तरा॥

(शंखस्मृति १५। २-३)

दशाहे ब्राह्मणः शुद्धो द्वादशाहेन क्षत्रियः। वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति॥ (ब्रह्मपुराण २२०। ६३)

दशरात्रेण शुद्ध्यन्ति द्वादशाहेन भूमिपाः। वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन भार्गव॥ (विष्णुधर्मोत्तर० २। ७५। २२)

२. अजा गावो महिष्यश्च ब्राह्मणी च प्रसूतिका। दशरात्रेण संशुद्ध्येद् भूमिष्ठं च नवोदकम्॥ (पाराशरस्मृति ३। ७)

अजा गावो महिष्यश्च ब्राह्मणस्य च प्रसूतिका। दशरात्रेण शुद्ध्यन्ति भूमिस्थं च नवोदकम्॥ (व्याघ्रपादस्मृति ३५७)

३. शिल्पी, कारीगर, वैद्य, दासी, दास, नाई, राजा, संन्यासी, व्रती, ब्रह्मचारी और श्रोत्रिय ब्राह्मणोंकी तत्काल शुद्धि बतायी गयी है।

४. एक सूतकमें दूसरा सूतक उपस्थित हो जाय तो दूसरेमें दोष नहीं लगता। पहले सूतकके साथ ही उसकी शुद्धि हो जाती है। यदि मरणाशौचके भीतर जननाशौच अथवा जननाशौचके भीतर

---

३. शिल्पिनः कारुका वैद्या दासीदासाश्च नापिताः। राजानः श्रोत्रियाश्चैव सद्यः शौचाः प्रकीर्त्तिताः॥ (पाराशरस्मृति ३।२२)

कारवः शिल्पिनो वैद्यदासीदासास्तथैव च॥ राजानो राजभृत्याश्च सद्यः शौचाः प्रकीर्तिताः। (औशनसस्मृति ६।५५-५६)

यतिव्रतिब्रह्मचारिनृपकारुकदीक्षिताः। नाशौचभाजः कथिता राजाज्ञाकारिणश्च ये॥ (शंखस्मृति १५।२१-२२)

सती व्रती ब्रह्मचारी नृपकारकदीक्षिताः। नाशौचभाजः कथिता राजकार्यकराश्च ये॥ (विष्णुधर्मोत्तर० २।७५।२४)

कारवः शिल्पिनो वैद्या दासीदासास्तथैव च। राजानो राजभृत्याश्च सद्यः शौचानुकारिणः॥ (गरुड़पुराण, उत्तर० २९।७)

४. जननाशौचमध्ये यद्यपरं जननाशौचं स्यात्तदा पूर्वाशौचव्यपगमे शुद्धिः। (विष्णुस्मृति २२)

अन्तरा जन्ममरणे शेषाहोभिर्विशुद्ध्यति। (याज्ञवल्क्यस्मृति ३।२०)

सूतके तु समुत्पन्ने द्वितीये समुपस्थिते। द्वितीये नास्ति दोषस्तु प्रथमेनैव शुध्यति॥ (लघुयमस्मृति ७५; नारदपुराण, पूर्व० १४।७१-७२)

सूतके यदि सूतिश्च मरणे वा गतिर्भवेत्॥ शेषेणैव भवेच्छुद्धिरहः शेषे द्विरात्रकम्। मरणोत्पत्तियोगे तु मरणेन समाप्यते॥ (औशनसस्मृति ६।१९-२०)

सूतके मृतके चैव तथा च मृतसूतके। एतत्संहतशौचानां मृतशौचेन शुद्ध्यति॥ (दक्षस्मृति ६।११)

जातेन शुध्यते जातं मृतेन मृतकं तथा॥ (नारदपुराण, पूर्व० १४।७२)

मरणाशौच हो जाय तो मरणाशौचके साथ दोनों अशौचकी शुद्धि हो जाती है।

५. विवाह और यज्ञ-जैसे कार्योंके बीचमें मृतक-सूतक होनेपर देनेयोग्य पूर्वसंकल्पित द्रव्य दूषित नहीं होता।

६. दान, विवाह, यज्ञ, युद्ध, देशमें विप्लव तथा कष्टदायी आपत्तिकालमें सद्यः शौच होता है अर्थात् सूतक नहीं लगता।

सपिण्डानां सपिण्डस्तु मृतेऽन्यस्मिन् मृतो यदि। पूर्वाशौचसमाख्यातैः कार्यास्त्वत्र दिनैः क्रियाः॥ एष एव विधिर्दृष्टो जन्मन्यपि हि सूतके। सपिण्डानां सपिण्डेषु यथावस्तोदकेषु च॥ (मार्कण्डेयपुराण ३५।४७-४८)

सपिण्डानां सपिण्डस्तु मृतेऽन्यस्मिन् मृतो यदि। पूर्वशौचं समाख्यातं कार्यास्तत्र दिनक्रियाः॥ एष एव विधिर्दृष्टो.................. (ब्रह्मपुराण २२१।१५४-१५६)

५. विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरा मृतसूतके। पूर्वसंकल्पितं द्रव्यं दीयमानं न दुष्यति॥ (पाराशरस्मृति ३।२९)

विवाहोत्सवयज्ञेष्वनन्तरामृतसूतके। पूर्वसंकल्पितार्थस्य न दोषश्चात्रिरब्रवीत्॥ (अत्रिसंहिता ९८)

विवाहोत्सवयज्ञेषु अन्तरा मृतसूतके। पूर्वसंकल्पितादन्यवर्जनञ्च विधीयते॥ (गरुड़पुराण, आचार० १०७।२०)

६. दाने विवाहे यज्ञे च संग्रामे देशविप्लवे। आपद्यपि च कष्टायां सद्यः शौचं विधीयते॥ (याज्ञवल्क्यस्मृति ३।२९)

..................आपद्यपि हतानाञ्च सद्यः शौचं विधीयते। (गरुड़पुराण, आचार० १०६।१८-१९)

यज्ञकाले विवाहे च देशभङ्गे तथैव च। हूयमाने तथाग्नौ च नाशौचं मृतसूतके॥ स्वस्थकाले त्विदं सर्वमशौचं परिकीर्तितम्। आपद्गतस्य सर्वस्य सूतके न तु सूतकम्॥ (दक्षस्मृति ६।१७-१८)

७. आत्महत्या करनेवालेका सूतक (मरणाशौच) नहीं लगता।

८. जो मनुष्य सदा रोगी, कृपण, ऋणग्रस्त, क्रियाहीन, मूर्ख, स्त्रीके वशीभूत, व्यसनमें आसक्त चित्तवाले, पराधीन, स्वाध्याय-व्रतसे हीन तथा श्रद्धा-त्यागसे रहित हैं, उन्हें सदा सूतक लगा रहता है।

---
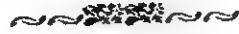
७. 'आत्मत्यागिन्यो नाशौचोदकभाजनाः' (याज्ञवल्क्यस्मृति ३। ६)

आत्मत्यागिनः पतिताश्च नाशौचोदकभाजः। (विष्णुस्मृति २२)

सुरापाः स्वात्मघातिन्यो न शौचोदकभाजनाः। (गरुड़पुराण, आचार० १०६। ६)

व्यापादयेत्तथात्मानं स्वयं योऽग्निविषादिभिः। विहितं तस्य नाशौचं न च स्यादुदकादिकम्॥ (औशनसस्मृति ७। २) .... नाग्निर्नाप्युदकादिकम्॥ (कूर्मपुराण, उ० २३। ७३)

भृग्वग्न्यनशनाम्भोभिमृतानामात्मघातिनाम्। पतितानां च नाशौचं शस्त्रविद्युद्धताश्च ये॥ (शंखस्मृति १५। २१) .... विद्युच्छस्त्रहताश्च ये॥ (विष्णुधर्मोत्तर० २। ७५। २३)

८. व्याधितस्य कदर्यस्य ऋणग्रस्तस्य सर्वदा। क्रियाहीनस्य मूर्खस्य स्त्रीजितस्य विशेषतः॥ व्यसनासक्तचित्तस्य पराधीनस्य नित्यशः। स्वाध्यायव्रतहीनस्य सततं सूतकं भवेत्॥ (अत्रिसंहिता १०२-१०३) .... श्रद्धात्यागविहीनस्य भस्मान्तं सूतकं भवेत्॥ (दक्षस्मृति ६। ८-९)

शुभाशुभ धूलि

१. झाड़की धूलिसे तथा गदहे आदिकी धूलिसे बचकर रहना चाहिये।

२. बकरीकी, झाड़की और बिल्लीकी धूलि शुभ प्रारब्धको हर लेती है।

३. हाथी, घोड़ा, रथ, धान्य तथा गौकी धूलि शुभ होती है। किन्तु कुत्ता, गधा, ऊँट, बकरी तथा भेड़की धूलि अशुभ होती है।

४. गौकी धूलि, धान्यकी धूलि तथा पुत्रके अंगमें लगी हुई धूलि अत्यन्त शुभ तथा महापातकोंकी विनाशक होती है।

५. जो मनुष्य गौओंके खुरसे उड़ी हुई धूलिको सिरपर धारण करता है, वह मानो तीर्थके जलमें स्नान कर लेता है और सभी पापोंसे छुटकारा पा जाता है।

---

१. 'वर्जयेन्मार्जनीरेणुम्' (कूर्मपुराण, उ० १६। ९३; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ९४)

'खरादिकरजस्त्यजेत्' (अग्निपुराण १५५। २३)

२. अजामार्जनिमार्जाररेणुर्दैवं शुभं हरेत्॥ (नारदपुराण, पूर्व० २६। ३२)

३. रथाश्वगजधान्यानां गवां चैव रजः शुभम्। अप्रशस्तं समूहन्याः श्वाजाविखरवाससाम्॥ (बौधायनस्मृति २। ३। ६१); (बौधायनधर्मसूत्र २। ३। ६। ३४)

सम्मार्जनं रजोवर्ज्यः खराश्वादेस्तथैव च॥ मेध्यानि च तथा राम गोगजाश्वरजांसि च। (विष्णुधर्मोत्तर० २। ८९। ४१-४२)

४. गवां रजो धान्यरजः पुत्रस्याङ्गभवं रजः। एतद्रजो महाशस्तं महापातकनाशनम्॥ (गरुड़पुराण, आचार० ११४। ४२)

५. गवां रजः खुरोद्भूतं शिरसा यस्तु धारयेत्। स च तीर्थजले स्नातः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ५०। १६५)

पशुपालन

१. गौओंका सदा दान करना चाहिये, सदा उनकी रक्षा करनी चाहिये और सदा उनका पालन-पोषण करना चाहिये।

२.जो मनुष्य गौओंकी सेवा करता है, उसे गौएँ अत्यन्त दुर्लभ वर प्रदान करती हैं। वह गौभक्त मनुष्य पुत्र, धन, विद्या, सुख आदि जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है, वह सब उसे प्राप्त हो जाती है। उसके लिये कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं होती।

३. गौओंका समुदाय जहाँ बैठकर निर्भयतापूर्वक साँस लेता है, उस स्थानके सारे पापोंको खींच लेता है।

४. जिसके घरमें बछड़ेसहित एक भी गौ नहीं है, उसका मंगल कैसे होगा और उसके पापोंका नाश कैसे होगा?

---

१. गावो देयाः सदा रक्ष्याः पाल्याः पोष्याश्च सर्वदा। (बृहत्पराशरस्मृति ५। २३)

२. गाश्च शुश्रूषते यश्च समन्वेति च सर्वशः। तस्मै तुष्टाः प्रयच्छन्ति वरानपि सुदुर्लभान्॥ (महाभारत, अनु० ८१। ३३)

गोषु भक्तश्च लभते यद् यदिच्छति मानवः। स्त्रियोऽपि भक्ता या गोषु ताश्च काममवाप्नुयुः॥ पुत्रार्थी लभते पुत्रं कन्यार्थी तामवाप्नुयात्। धनार्थी लभते वित्तं धर्मार्थी धर्ममाप्नुयात्॥ विद्यार्थी चाप्नुयाद् विद्यां सुखार्थी प्राप्नुयात् सुखम्। न किञ्चिद् दुर्लभं चैव गवां भक्तस्य भारत॥

(महाभारत, अनु० ८३। ५०—५२)

३. निविष्टं गोकुलं यत्र श्वासं मुञ्चति निर्भयम्। विराजयति तं देशं पापं चास्यापकर्षति॥

(महाभारत, अनु० ५१। ३२)

४. यस्यैकापि गृहे नास्ति धेनुर्वत्सानुचारिणी॥ मङ्गलानि कुतस्तस्य कुतस्तस्य तमः क्षयः। (अत्रिसंहिता २१८-२१९)

५. बिल्ली, मुर्गा, बकरा, कुत्ता, सूअर तथा पक्षियोंको पालनेवाला मनुष्य नरक (कृमिपूय या पूयवह)-में गिरता है।*

६. कुत्ता रखनेवालोंके लिये स्वर्गलोकमें स्थान नहीं है। उनके यज्ञ करने और कुआँ, बावड़ी आदि बनवानेका जो पुण्य होता है, उसे 'क्रोधवश' नामक राक्षस हर लेते हैं।

७. घरमें मुर्गे और कुत्तेके रहनेपर देवता उस घरमें हविष्य ग्रहण नहीं करते।

८. यदि कुत्ते, सूअर और मुर्गेकी दृष्टि पड़ जाय तो देवपूजन, श्राद्ध-तर्पण, ब्राह्मण-भोजन, दान और होम—ये सब निष्फल हो जाते हैं।

---

५. मार्जारकुक्कुटच्छागश्ववराहविहङ्गमान्। पोषयन्नरकं याति तमेव द्विजसत्तम॥

(विष्णुपुराण २। ६। २१; ब्रह्मपुराण २२। २०)

कुक्कुटश्वानमार्जारान् पोषयन्ति दिनत्रयम्। इह जन्मनि शूद्रत्वं मृतः श्वा चाभिजायते॥ (वाधूलस्मृति १७०)

६. स्वर्गे लोके श्ववतां नास्ति धिष्ण्यमिष्टापूर्तं क्रोधवशा हरन्ति। ततो विचार्य क्रियतां धर्मराज त्यज श्वानं नात्र नृशंसमस्ति॥ (महाभारत, महाप्रस्थानिक० ३। १०)

७. कुक्कुटे शुनके चैव हविर्नाश्नन्ति देवताः। (महाभारत, अनु० १२७। १६)

८. चाण्डालश्च वराहश्च कुक्कुटः श्वा तथैव च। रजस्वला च षण्ढश्च नेक्षेरन्नश्नतो द्विजान्॥ होमे प्रदाने भोज्ये च यदेभिरभिवीक्ष्यते। दैवे कर्मणि पित्र्ये वा तद् गच्छत्ययथातथम्॥ (मनुस्मृति ३। २३९-२४०)

---

* वास्तवमें कुत्ते आदिका पालन करना, उनकी रक्षा करना दोष नहीं है, प्रत्युत प्राणिमात्रका पालन-पोषण करना मनुष्यका खास कर्तव्य है। परन्तु कुत्ते आदिके साथ घुल-मिलकर रहना, उनको साथमें रखना, मर्यादारहित छुआछूत करना, उनमें आसक्ति करना, उनसे अपनी जीविका चलाना दोष है।

धन

१. मनुष्योंका अधिकार केवल उतने ही धनपर है, जितनेंसे उनका पेट भर जाय। इससे अधिक धनको जो अपना मानता है, वह चोर है, उसे दण्ड मिलना चाहिये।

२. हृदयके अन्दर उदारता रखकर तथा बाहरसे कृपणता रखकर समयके अनुसार उचित धन खर्च करना चाहिये।

३. अन्यायसे उपार्जित धनके द्वारा जो पुण्यकर्म किया जाता है, उसका परलोकमें कोई फल नहीं मिलता।

४. किसी विशेष कामनापूर्तिकी आशासे जो धन संचित करके रखा गया है, उसका उपभोग दुःखपूर्वक ही किया जाता है। अतः विद्वान् पुरुष उसकी प्रशंसा नहीं करते; क्योंकि मृत्यु किसीकी कामनापूर्तिके अवसरकी प्रतीक्षा नहीं करती।

---

१. यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्। अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥ (श्रीमद्भा० ७। १४। ८)

२. कृत्वा स्वान्ते तथौदार्यं कार्पण्यं बहिरेव च॥ उचितं तु व्ययं काले नरः कुर्यान्न चान्यथा। (शुक्रनीति ३। १९५-१९६)

३. अधर्मोपार्जितैरर्थैर्यः करोत्यौर्ध्वदेहिकम्। न स तस्य फलं प्रेत्य भुङ्क्तेऽर्थस्य दुरागमात्॥ (महाभारत, उद्योग० ३९। ६६)

अन्यायोपार्जितेनैव द्रव्येण सुकृतं कृतम्। न कीर्तिरिह लोके च परलोके न तत्फलम्॥ (देवीभागवत ३। १२। ८)

४. आशया सञ्चितं द्रव्यं दुःखेनैवोपभुज्यते। तद् बुधा न प्रशंसन्ति मरणं न प्रतीक्षते॥ (महाभारत, शान्ति० १९३। ३०)

दान

१. अपने न्यायपूर्वक उपार्जित धनका दसवाँ भाग भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये किसी सत्कर्ममें लगाना चाहिये।

२. जो मनुष्य अपने स्त्री-पुत्रादि पालनीय परिवारको दुःखी करके दान देता है, उसका वह दान जीते हुए तथा मरनेपर भी दुःखदायी होता है।

३. स्वयं जाकर दिया गया दान उत्तम, अपने यहाँ बुलाकर दिया गया दान मध्यम और माँगनेपर दिया गया दान अधम होता है। परन्तु सेवा कराकर दिया गया दान निष्फल होता है।

४. गौओं, ब्राह्मणों तथा रोगियोंको जब कुछ दिया जाता हो, उस समय जो न देनेकी सलाह देते हैं, वे मरकर प्रेत होते हैं।

५. तिल, अक्षत (चावल), कुश और जल—इनको हाथमें लेकर दान देना चाहिये, अन्यथा उस दानपर दैत्यलोग अधिकार कर लेते हैं। पितरोंको तिलके साथ तथा देवताओंको अक्षतके साथ दान देना चाहिये; परन्तु जल और कुशका सम्बन्ध सर्वत्र रहना चाहिये।

---

१. न्यायोपार्जितवित्तेन दशमांशेन धीमता। कर्तव्यो विनियोगश्च ईशप्रीत्यर्थहेतवे॥ (स्कन्दपुराण, मा० के० १२। ३२)

२. भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौर्ध्वदेहिकम्। तद्भवत्यसुखोदर्कं जीवतश्च मृतस्य च॥ (मनुस्मृति ११। १०)

३. अभिगम्योत्तमं दानमाहूयैव तु मध्यमम्। अधमं याचमानाय सेवादानं तु निष्फलम्॥ (पाराशरस्मृति १। २९)

४. दीयमानं तु विप्राणां गोषु विप्रातुरेषु च। मा देहीति प्रजल्पन्तस्ते च प्रेता भवन्ति च॥ (स्कन्दपुराण, प्रभास० २२३। ४९)

५. तिलैर्युक्तं पितृणां च देवानामक्षतैः सह॥ तोयं दर्भांश्च सर्वत्र एवं गृह्णन्ति नासुराः। एतान्विना प्रदत्तं यत्फलं दैत्यैः प्रगृह्यते॥ (स्कन्दपुराण, मा० कौ० ४०। १६९-१७०)

६. देनेवाला पूर्वाभिमुख होकर दान दे और लेनेवाला उत्तराभिमुख होकर उसे ग्रहण करे। ऐसा करनेसे दान देनेवालेकी आयु बढ़ती है और लेनेवालेकी भी आयु क्षीण नहीं होती।

७. अन्न, जल, घोड़ा, गाय, वस्त्र, शय्या, छत्र और आसन—इन आठ वस्तुओंका दान यमलोकके मार्गके लिये उत्तम माना गया है।

८. गौ, घर, वस्त्र, शय्या तथा कन्या—ये वस्तुएँ अनेक मनुष्योंको नहीं देनी चाहिये अर्थात् एक वस्तु एक ही व्यक्तिको देनी चाहिये।

९. थके हुए व्यक्तिको आराम देना, रोगीकी सेवा करना, देवताका पूजन करना, ब्राह्मणोंके पैर धोना तथा जूठन साफ करना—ये कार्य गोदानके समान पुण्यप्रद हैं।

१०. दीन, अन्धे, निर्धन, अनाथ, गूँगे, जड़, बौने, लँगड़े आदि विकलांगोंकी तथा रोगी मनुष्योंकी सेवाके लिये जो धन दिया जाता है, उसका महान् फल होता है।

---

६. दद्यात्पूर्वमुखो दानं गृह्णीयादुत्तरामुखः। आयुर्विवर्धते दातुर्ग्रहीतुः क्षीयते न तत्॥ (अग्निपुराण २०९। २१)

७. अन्नपानाश्वगोवस्त्रशय्याच्छत्रासनानि च। प्रेतलोके प्रशस्तानि दानान्यष्टौ विशेषतः॥ (शिवपुराण, उमा० ११। ५०)

८. बहूनां न प्रदातव्या गौर्वस्त्रं शयनं स्त्रियः। तादृक् भूतन्तु यद्दानं दातारं नोपतिष्ठति॥ (वृद्धगौतमस्मृति १४। ३९)। बहूनां न .... तादृग्भूतं तु तद् दानं दातारं नोपतिष्ठति॥ (महाभारत, आश्व० ९२)

बहुभ्यो न प्रदेयानि गौर्गृहं शयनं स्त्रियः॥ कुलानां तु शतं हन्यादप्रयच्छन् प्रतिश्रुतम्। (अग्निपुराण २०९। २८-२९)। बहुभ्यो न .... विभक्ता दक्षिणा ह्येषा दातारं नोपतिष्ठति॥ (स्कन्दपुराण, प्रभास० २०८। २८)

९. श्रान्तसंवाहनं रोगिपरिचर्या सुरार्चनम्। पादशौचं द्विजोच्छिष्टमार्जनं गोप्रदानवत्॥ (याज्ञवल्क्यस्मृति १। २०९)

१०. दीनान्धकृपणानाथवाग्विहीनेषु यत्तथा॥ विकलेषु तथान्येषु जडवामनपङ्गुषु। रोगार्त्तेषु च यद्दत्तं तत्स्यादबहुफलं धनम्॥ (विष्णुधर्मोत्तर० ३। ३००। ३०-३१)

११. जो ब्राह्मण विद्या और तपसे हीन हो, उसे दान नहीं लेना चाहिये। यदि वह लेता है तो दाताको तथा अपनेको भी अधोगतिमें ले जाता है।

१२. मूर्ख (तप और विद्यासे हीन) ब्राह्मण यदि सुवर्ण, भूमि, घोड़ा, गौ, अन्न, वस्त्र, तिल और घीका दान लेता है तो वह काष्ठके समान भस्म हो जाता है। दानमें लिया हुआ सुवर्ण और अन्न उसकी आयुको, भूमि और गौ उसके शरीरको, घोड़ा उसके नेत्रको, वस्त्र उसकी त्वचाको, घी उसके तेजको और तिल उसकी सन्तानको नष्ट कर देता है। इसलिये मूर्ख ब्राह्मण किसी भी वस्तुका दान लेनेसे डरे; क्योंकि थोड़ा भी दान लेनेसे वह कीचड़में फँसी गौके समान दुःख पाता है।

---

११. विद्यातपोभ्यां हीनेन न तु ग्राह्यः प्रतिग्रहः। गृह्णन् प्रदातारमधो नयत्यात्मानमेव च॥ (याज्ञवल्क्यस्मृति १। २०२)

अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः। अम्भस्यश्मप्लवेनेव सह तेनैव मज्जति॥ (मनुस्मृति ४। १९०)

१२. हिरण्यं भूमिमश्वं गामन्नं वासस्तिलान्घृतम्। प्रतिगृह्णन्नविद्वांस्तु भस्मी भवति दारुवत्॥ हिरण्यमायुरन्नं च भूर्गौश्चाप्योषतस्तनुम्। अश्वश्चक्षुस्त्वचं वासो घृतं तेजस्तिलाः प्रजाः॥ (मनुस्मृति ४। १८८-१८९)

एवं गां च हिरण्यं च वस्त्रमश्वं महीं तिलान्। अविद्वान्प्रतिगृह्णानो भस्मी भवति दारुवत्॥ (वसिष्ठस्मृति ६। ३०)

एवं गां च हिरण्यं च वस्त्रमन्नं महीं तिलान्॥ अविद्वान् प्रतिगृह्णाति भस्मी भवति काष्ठवत्। (बृहस्पतिस्मृति ५९-६०)

भूरापो गौस्तथा भोगाः सुवर्णं देहमेव च। अश्वश्चक्षुस्तथा वासो घृतं तेजस्तिलाः प्रजाः॥ घ्नन्ति तस्मादविद्वांस्तु बिभियाच्च प्रतिग्रहात्। स्वल्पकेनाप्यविद्वांस्तु पङ्के गौरिव सीदति॥ (स्कन्दपुराण, मा० कौ० ५। १४-१५)

१३. रात्रिमें कोई दान नहीं करना चाहिये। परन्तु खलिहान-यज्ञ, विवाह, संक्रान्ति, चन्द्र या सूर्यग्रहण, पुत्रजन्म, यज्ञ और मृतककर्ममें रात्रिमें भी दान कर सकते हैं। अभय दक्षिणा, विद्या, कन्या, दीपक, अन्न तथा आश्रयका भी रात्रिमें दान कर सकते हैं।

१४. गौ, सुवर्ण, चाँदी, रत्न, विद्या, तिल, कन्या, हाथी, घोड़ा, शय्या, वस्त्र, भूमि, अन्न, दूध, छत्र तथा आवश्यक सामग्री-सहित गृह—इन सोलह वस्तुओंके दानको 'महादान' कहते हैं।

---

१३. खलयज्ञे विवाहे च संक्रान्तौ ग्रहणे तथा। शर्वर्यां दानमस्त्येव नाऽन्यत्र तु विधीयते॥ पुत्रजन्मनि यज्ञे च तथा चाऽत्ययकर्मणि। राहोश्च दर्शने दानं प्रशस्तं नान्यदा निशि॥ (पाराशरस्मृति १२। २२-२३)

रात्रौ दानं न दातव्यं दातव्यमभयं द्विजैः। इमानि त्रीणि देयानि विद्याकन्या-प्रतिग्रहः॥ (बृहत्पराशरस्मृति १०। २८०)

रात्रौ दानं न शंसन्ति विना त्वभयदक्षिणाम्। विद्यां कन्यां द्विजश्रेष्ठा दीपमन्नं प्रतिश्रयम्॥ (विष्णुधर्मोत्तर० ३। ३०१। ३)

१४. गावः सुवर्णं रजतं रत्नानि च सरस्वती। तिलाः कन्या गजोऽश्वश्च शय्या वस्त्रं तथा मही॥ धान्यं पयश्च च्छत्रं च गृहं चोपस्करान्वितम्। एतान्येव महादेवि महादानानि षोडश॥ (स्कन्दपुराण, प्रभास० २०८। ११-१२)

तीर्थ

१. जिसकी तीर्थोंमें श्रद्धा नहीं है, जो पापी है, नास्तिक है, संशय करनेवाला तथा तर्कवादी है—ये पाँच प्रकारके मनुष्य तीर्थफलके भागी नहीं होते।

२. पैदल चलनेकी सामर्थ्य होनेपर भी गोयान (बैलगाड़ी आदि)-पर तीर्थमें जानेसे गोवधका पाप लगता है। अश्वयान (घोड़े, ताँगे आदि)-पर जानेसे तीर्थयात्रा निष्फल होती है। नरयान (पालकी, रिक्शा आदि)-पर जानेसे तीर्थका आधा फल मिलता है। पैदल चलकर जानेसे चौगुने फलकी प्राप्ति होती है।

३. तीर्थक्षेत्रमें जानेपर मनुष्यको सदा स्नान, दान, जप आदि करना चाहिये, अन्यथा वह रोग, दरिद्रता, मूकता आदि दोषोंका भागी होता है।

४. अन्य जगह किया हुआ पाप तीर्थमें जानेसे नष्ट हो जाता है, पर तीर्थमें किया हुआ पाप वज्रलेप हो जाता है।

---

१. अश्रद्दधानः पापार्तो नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः॥ हेतुनिष्ठश्च पञ्चैते न तीर्थफलभागिनः। (नारदपुराण, उत्तर० ६२। १६-१७)

अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकश्छिन्नमानसः। हेतुवादी च पञ्चैते न तीर्थफलभागिनः॥ (स्कन्दपुराण, वैष्णव० कार्तिक० ४। ७७)

२. गोयाने गोवधः प्रोक्तो हययाने तु निष्फलम्। नरयाने तदर्द्धं स्यात्पद्भ्यां तच्च चतुर्गुणम्॥ (नारदपुराण, उत्तर० ६२। ३४)

३. तीर्थे क्षेत्रे सदा कार्यं स्नानदानजपादिकम्। अन्यथा रोगदारिद्र्यमूकत्वाद्याप्नुयान्नरः॥ (शिवपुराण, वि० १२। ५)

४. अन्यत्र हि कृतं पापं तीर्थमासाद्य नश्यति। तीर्थेषु यत्कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति॥ (स्कन्दपुराण, वैष्णव० मार्गशीर्ष० १७। १७)

यदन्यत्र कृतं पापं तीर्थे तद्याति लाघवम्। न तीर्थकृतमन्यत्र क्वचित्पापं व्यपोहति॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ३४। २३०)

५. जब कोई अपने माता, पिता, भाई, सुहृद् अथवा गुरुको फल मिलनेके उद्देश्यसे तीर्थमें स्नान करता है, तब उसे स्नानके फलका बारहवाँ भाग प्राप्त हो जाता है।

६. ज़ो दूसरेके धनसे तीर्थयात्रा करता है, उसे पुण्यका सोलहवाँ अंश प्राप्त होता है तथा जो दूसरे कार्यके प्रसंगसे तीर्थमें जाता है, उसे उसका आधा फल प्राप्त होता है।

---

५. मातरं पितरं वापि भ्रातरं सुहृदं गुरुम्। यमुद्दिश्य निमज्जते द्वादशांशफलं भवेत्॥ (अत्रिसंहिता ५१)

मातरं पितरं चापि भ्रातरं सुहृदं गुरुम्। यमुद्दिश्य निमज्जेत द्वादशांशं लभेत् तु सः॥ (गरुड़पुराण, आचार० २०५। १२१)

६. षोडशांशं स लभते यः परार्थेन गच्छति। अर्द्धं तीर्थफलं तस्य यः प्रसङ्गेन गच्छति॥ (नारदपुराण, उत्तर० ६२। ३७)

उपवास

१. अनेक बार जल पीनेसे, पान खानेसे, दिनमें सोनेसे और मैथुन करनेसे उपवास (व्रत) दूषित हो जाता है।

२. जल, फल, मूल, दूध, हविष्य (घी), ब्राह्मणकी इच्छापूर्ति, गुरुका वचन तथा औषध—ये आठ व्रतके नाशक नहीं हैं।

३. क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रिय-संयम, देवपूजा, अग्निहोत्र, सन्तोष तथा चोरी न करना—ये दस नियम सम्पूर्ण व्रतोंमें आवश्यक माने गये हैं।

४. उपवास करनेवाले मनुष्यको काँसेका बर्तन, मसूर, चना, कोदो, साग, मधु, पराया अन्न तथा स्त्रीसंगका त्याग करना चाहिये। उसे फूल, अलंकार, सुन्दर वस्त्र, सुगन्ध, दातुन आदिका भी त्याग कर

---

१. असकृज्जलपानाच्च ताम्बूलस्य च भक्षणात्। उपवासः प्रदुष्येत दिवास्वप्नाच्च मैथुनात्॥ (अग्निपुराण १७५। ९)

२. अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपोमूलं घृतं पयः। हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम्॥ (वृद्धगौतमस्मृति १४। ८)

अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपोमूलफलं पयः॥ हविर्ब्राह्मणकामाय गुरोर्वचनमौषधम्। (ब्रह्मोक्त याज्ञवल्क्यसंहिता ९। २७-२८)

अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः। हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम्॥ (महाभारत, उद्योग० ३९। ७०; अग्निपुराण १७५। ४३)

३. क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। देवपूजाग्निहरणं सन्तोषोऽस्तेयमेव च॥ सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः। (अग्निपुराण १७५। १०-११)

४. कांस्यं मांसं मसूरं च चणकं कोरदूषकम्॥ शाकं मधुपरान्नं च त्यजेदुपवसन् स्त्रियम्। पुष्पालङ्कारवस्त्राणि धूपगन्धानुलेपनम्॥ उपवासे न शस्यन्ति दन्तधावनमञ्जनम्। (अग्निपुराण १७५। ६—८)

देना चाहिये।

५. उपवासके दिन शरीरमें तेल लगाकर नहाना छोड़ दे; क्योंकि यह कुरूप बनानेवाला (सौन्दर्यका विनाशक) है।

६. उपवासके दिन लकड़ीकी दातुन नहीं करनी चाहिये, अन्यथा नरककी प्राप्ति होती है।

---

५. उपोषितैर्नरैस्तस्मात् स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम्। वर्जनीयं प्रयत्नेन रूपघ्नं तत्परं नृप॥ (मत्स्यपुराण ११५। १४)

६. उपवासदिने यस्तु दन्तधावनकृन्नरः। स घोरं नरकं याति व्याघ्रभक्षश्चतुर्युगम्॥ (वाधूलस्मृति ३३)

प्रणाम

१. नित्य वृद्धजनोंको प्रणाम करनेसे तथा उनकी सेवा करनेसे मनुष्यकी आयु, विद्या (बुद्धि, कीर्ति), यश और बल बढ़ते हैं।

२. प्रतिदिन प्रातःकाल, सोकर उठनेके बाद पहले माता-पिताको प्रणाम करे। फिर आचार्य तथा अन्य गुरुजनोंका अभिवादन करे। इससे दीर्घायु प्राप्त होती है।

३. स्वयं आसनपर बैठा हो तो उठकर और सवारीपर बैठा हो तो उससे उतरकर गुरुजनोंको प्रणाम करना चाहिये।

४. वृद्ध पुरुषके आनेपर युवा मनुष्यके प्राण ऊपर उठने लगते हैं और जब वह उठकर प्रणाम करता है, तब वह पुनः प्राणोंको वास्तविक स्थितिमें प्राप्त कर लेता है।

५. यह मानकर कि जीवरूप अपने अंशसे साक्षात् भगवान् ही सबमें अनुगत हैं, समस्त प्राणियोंको बड़े आदरके साथ मनसे प्रणाम करना चाहिये।

---

१. अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः। चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥ (मनुस्मृति २। १२१)

......चत्वारि सम्यग्वर्धन्ते आयुः प्रज्ञा यशो बलम्॥ (भविष्यपुराण, ब्राह्म० ४। ५०)

......चत्वारि सम्प्रवर्धन्ते कीर्तिरायुर्यशो बलम्॥ (महाभारत, उद्योग० ३९। ७४)

२. मातापितरमुत्थाय पूर्वमेवाभिवादयेत्॥ आचार्यमथवाप्यन्यं तथायुर्विन्दते महत्। (महाभारत, अनु० १०४। ४३-४४)

३. शय्यासनस्थश्चैवैनं प्रत्युत्थायाभिवादयेत्॥ (मनुस्मृति २। ११९)

यानासनस्थश्चैवैनमवरुह्याभिवादयेत्॥ (मनुस्मृति २। २०२)

४. ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति। प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते॥

(मनुस्मृति २। १२०; महाभारत, उद्योग० ३८। १, अनु० १०४। ६४-६५)

५. मनसैतानि भूतानि प्रणमेद्बहु मानयन्। ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति॥ (श्रीमद्भा० ३। २९। ३४)

६. जो व्यक्ति देवप्रतिमाको, संन्यासीको और त्रिदण्डी स्वामीको देखकर भी उन्हें प्रणाम नहीं करता, वह प्रायश्चित्तका भागी होता है।

७. जो एक हाथसे प्रणाम करता है, उसके जीवनभरका किया हुआ पुण्य निष्फल हो जाता है।

८. बैठना, भोजन करना, सोना, गुरुजनोंका अभिवादन करना और (अन्य श्रेष्ठ पुरुषोंको) प्रणाम करना—ये सब कार्य जूते पहने हुए न करे।

९. जूते पहने हुए, सिरको ढके हुए अथवा हाथमें कुछ लिये हुए प्रणाम न करे। (स्त्री सिर ढककर ही प्रणाम करे)

१०. जो स्त्री पतिकी हत्या करनेवाली हो, रजस्वला हो, परपुरुषसे सम्बन्ध रखनेवाली हो, सूतिका हो, गर्भपात करनेवाली हो, कृतघ्न हो और क्रोधिनी हो, उसे कभी प्रणाम नहीं करना चाहिये।

११. जो नास्तिक, धर्ममर्यादाको तोड़नेवाला, कृतघ्न, ग्राम-पुरोहित, चोर और शठ हो, उसे (ब्राह्मण होनेपर भी) प्रणाम न करे।

---

६. देवताप्रतिमां दृष्ट्वा यतिं दृष्ट्वा त्रिदण्डिनम्। नमस्कारं न कुर्वीत प्रायश्चित्ती भवेन्नरः॥ (व्याघ्रपादस्मृति ३६६)

७. जन्मप्रभृति यत्किञ्चित्सुकृतं समुपार्जितम्। तत्सर्वं निष्फलं याति एकहस्ताभिवादनात्॥ (व्याघ्रपादस्मृति ३६७)

८. सोपानत्कश्चाशनासनशयनाभिवादननमस्कारान् वर्जयेत्। (गौतमस्मृति ९)

९. न सोपानद्वेष्टितशिरा अवहितपाणिर्वाभिवादयीत। (आपस्तम्बधर्मसूत्र १।४।१४।१९)

१०. भर्तृघ्नीं पुष्पिणीं जारां सूतिकां गर्भपातिनीम्॥ कृतघ्नीं च तथा चण्डीं कदाचिन्नाभिवादयेत्। (नारदपुराण, पूर्व० २५।४०-४१)

उदक्यां सूतिकां नारीं भर्तृघ्नीं गर्भघातिनीम्। (व्याघ्रपादस्मृति ३६१)

११. नास्तिकं भिन्नमर्यादं कृतघ्नं ग्रामयाजकम्॥ स्तेनं च कितवं चैव कदाचिन्नाभिवादयेत्। (नारदपुराण, पूर्व० २५।३६-३७)

१२. जो तेल लगाये हुए हो (किन्तु स्नान न किये हो), जिसके मुँह और हाथ जूठे हों, जो भीगे वस्त्र पहने हो, रोगी हो, समुद्रमें घुसा हो, उद्विग्न हो, भार ढो रहा हो, यज्ञकार्यमें लिप्त हो, स्त्रियोंके साथ क्रीड़ामें आसक्त हो, बालकके साथ खेल रहा हो तथा जिसके हाथोंमें फूल और कुश हों, ऐसे व्यक्तिको प्रणाम नहीं करना चाहिये।

१३. पाखण्डी, पतित, संस्कार-भ्रष्ट, पागल, नक्षत्रजीवी, पापी, शठ, धूर्त, दौड़ते हुए, अपवित्र, सिरमें तेल लगाये हुए, मन्त्रजप करते हुए, झगड़ालू, क्रोधी, वमन करते हुए, पानीमें खड़े हुए, दन्तधावन करते हुए, भोजन करते हुए, दौड़ते हुए, जूता पहने हुए, हाथमें भिक्षाका अन्न लिये हुए, सोते हुए, श्राद्ध-तर्पण करते हुए, देवपूजा करते हुए और यज्ञ करते हुए पुरुषको प्रणाम न करे। कारण कि प्रणाम करनेपर जो शास्त्रीय विधिसे आशीर्वाद न दे सके, वह प्रणाम करनेयोग्य नहीं।

---

१२. तैलाभ्यक्तं ततोच्छिष्टमार्द्रवस्त्रं च रोगिणम्। पारावारगतोद्विग्नं वहन्तं नाभिवादयेत्॥ यज्ञस्यान्तर्गतं नष्टं क्रीडन्तं स्त्रीजनैः सह। बालक्रीडागतं चापि पुष्पयुक्तं कुशैर्युतम्॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१।११४-११५)

१३. पाषण्डं पतितं व्रात्यं तथा नक्षत्रजीविनम्॥ तथा पातकिनं चैव कदाचिन्नाभिवादयेत्। उन्मत्तं च शठं धूर्तं धावन्तमशुचिं तथा॥ अभ्यक्तशिरसं चैव जपन्तं नाभिवादयेत्। विवादशीलिनं चण्डं वमन्तं जलमध्यगम्॥ भिक्षान्नधारिणं चैव शयानं नाभिवादयेत्। (नारदपुराण, पूर्व० २५।३७—४०)

श्राद्धं व्रतं तथा दानं देवताभ्यर्चनं तथा। यज्ञं च तर्पणं चैव कुर्वन्तं नाभिवादयेत्। कृतेऽभिवादने यस्तु न कुर्यात्प्रतिवादनम्॥ (नारदपुराण, पूर्व० २५।४२-४३)

पाखण्डं पतितं व्रात्यं महापातकिनं शठम्॥ सोपानत्कं कृतघ्नं च मन्त्रोच्चारकृतं रिपुम्। भुञ्जानमशुचिमन्तं धावन्तं नास्तिकं तथा॥ वमन्तं जृम्भमाणं च कुर्वन्तं दन्तधावनम्। अभिवाद्य द्विजो मोहादहोरात्रेण शुद्ध्यति॥ जपयज्ञजलस्थं च समित्पुष्पकुशान्तिलान्। उदपात्रार्थभैक्ष्यं च वहन्तं नाभिवादयेत्॥ (व्याघ्रपादस्मृति ३६१—३६४)

दूसरेकी वस्तु

१. दूसरोंके पहने हुए वस्त्र और जूते स्वयं नहीं पहनने चाहिये।

२. दूसरोंके उपयोगमें आये हुए यज्ञोपवीत, आभूषण, माला, छाता, वस्त्र और कमण्डलुका त्याग करे।

३. दूसरोंकी सवारी, शय्या, आसन, कुआँ, उद्यान और घरको बिना कुछ दिये उपभोग करनेवाला उनके स्वामीके चतुर्थांश पापका भागी होता है।

४. दूसरेका अन्न, दूसरेका वस्त्र, दूसरेका धन, दूसरेकी शय्या, दूसरेकी गाड़ी, दूसरेकी स्त्रीका सेवन और दूसरेके घरमें वास—ये इन्द्रके भी ऐश्वर्यको नष्ट कर देते हैं।

---

१. उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत्। (मनुस्मृति ४। ६६)
न धारयेत्परस्यैवं स्नानवस्त्रं कदाचन॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। ८६)
'अन्यधृतं वा वासोविभृयान्न स्त्रगुपानहौ' (गौतमस्मृति ९)
उपानहौ च वस्त्रं च धृतमन्यैर्न धारयेत्॥ (महाभारत, अनु० १०४। २८; विष्णुधर्मोत्तर० ३। २३३। ४७)। न स्त्रगुपानहौ॥ (गौतमधर्मसूत्र १। ९। ६)
उपानद्वस्त्रमाल्यादि धृतमन्यैर्न धारयेत्॥
(ब्रह्मपुराण २२१। ४१; मार्कण्डेयपुराण ३४। ४२)
न धारयेदन्यभुक्तं वासश्चोपानहावपि॥ (स्कन्दपुराण, ब्रह्म०, धर्मा० ६। ६५)

२. उपवीतमलङ्कारं स्त्रजं करकमेव च॥ (मनुस्मृति ४। ६६)
वस्त्रोपानहमाल्योपवीतान्यन्यधृतानि न धारयेत्। (विष्णुस्मृति ७१)
'स्त्रजं छत्रोपानहौ कनकमतीतवासांसि न चान्यैर्धृतानि धारयेत्'
(सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। १०१)
उपवीतमलङ्कारं करकं चैव वर्जयेत्। (मार्कण्डेयपुराण ३४। ४३)

३. यानशय्यासनान्यस्य कूपोद्यानगृहाणि च। अदत्तान्युपभुञ्जान एनसः स्यात्तुरीयभाक्॥ (मनुस्मृति ४। २०२)
परशय्यासनोद्यानगृहयानानि वर्जयेत्। (याज्ञवल्क्यस्मृति १। १६०)

४. परान्नं परवस्त्रं च परयानं परस्त्रियः। परवेश्मनि वासश्च शक्रस्यापि श्रियं हरेत्॥ (शंखलिखितस्मृति १७)
परान्नं च परस्वं च परशय्याः परस्त्रियः। परवेश्मनि वासश्च शक्रादपि श्रियं हरेत्॥ (गरुड़पुराण, आचार० ११५। ५)

५. जो मनुष्य अमावस्याको दूसरेका अन्न खाता है, उसका महीनेभरका किया हुआ पुण्य दूसरेको (अन्नदाताको) मिल जाता है। अयनारम्भके दिन दूसरेका अन्न खाये तो छः महीनोंका और विषुवकाल (जब सूर्य मेष अथवा तुला राशिपर आये)-में दूसरेका अन्न खानेसे तीन महीनोंका पुण्य चला जाता है। चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके अवसरपर दूसरेका अन्न खाये तो बारह वर्षोंसे एकत्र किया हुआ सब पुण्य नष्ट हो जाता है। संक्रान्तिके दिन दूसरेका अन्न खानेसे महीनेभरसे अधिक समयका पुण्य चला जाता है।

६. दूसरेका अन्न खानेसे जिसकी जीभ जल चुकी है, दूसरेसे दान लेनेसे जिसके हाथ जल चुके हैं और दूसरेकी स्त्रीका चिन्तन करनेसे जिसका मन जल चुका है, उसे (जप, तप आदि करनेसे) सिद्धि कैसे मिल सकती है?

७. व्रत, तीर्थ, अध्ययन तथा श्राद्धमें दूसरेका अन्न नहीं खाना चाहिये; क्योंकि जिसका अन्न खायगा, उसीको फल मिलेगा।

८. अनिन्द्य निमन्त्रणके बिना दूसरेके पकाये अन्नमें रुचि नहीं रखनी चाहिये।

वर्जयेत् परशय्यादि न चाश्नीयादनापदि। (गरुड़पुराण, आचार० ९६। ५९)

५. अमावस्यां नरो यस्तु परान्नमुपभुञ्जते। तस्य मासकृतं पुण्यमन्नदातुः प्रजायते॥ षण्मासमयने भुङ्क्ते त्रीन्मासान्विषुवे स्मृतम्। वर्षैर्द्वादशभिश्चैव यत्पुण्यं समुपार्जितम्। तत्सर्वं विलयं याति भुक्त्वा सूर्येन्दुसंप्लवे॥ साग्रं मासं रवेः क्रान्तावाद्यश्राद्धे त्रिवत्सरम्। (स्कन्दपुराण, प्रभास० २०७। ११—१३)

६. जिह्वा दग्धा परान्नेन करौ दग्धौ प्रतिग्रहात्। मनो दग्धं परस्त्रीभिः कार्यसिद्धिः कथं भवेत्॥ (कुलार्णवतन्त्र १५। ७७)

७. व्रते च तीर्थेऽध्ययने श्राद्धेऽपि च विशेषतः। परान्नं भोजनाद्देवि यस्यान्नं तस्य तत्फलम्। (निर्णयसिन्धु १)

९. किसीके घरका अन्न या तो प्रेमके कारण खाना चाहिये या आपत्तिमें पड़नेपर (भूखों मरनेपर)!

१०. जो निर्बुद्धि गृहस्थ अतिथि-सत्कारके लोभसे दूसरेके घर जाकर उसका अन्न खाता है, वह मरनेके बाद उस अन्नदाताके यहाँ पशु बनता है।

११. दूसरोंकी कोई भी वस्तु, चाहे वह सरसोंके बराबर भी छोटी क्यों न हो, अपहरण करनेपर मनुष्य पापी और नरकगामी होता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

---

८. परपाकरुचिर्न स्यादनिन्द्यामन्त्रणादृते। (याज्ञवल्क्यस्मृति १। ११२)

९. सम्प्रीतिभोज्यान्यन्नानि आपद्भोज्यानि वा पुनः।
न च सम्प्रीयसे राजन् न चैवापद्गता वयम्॥ (महाभारत, उद्योग० ९१। २५)

१०. उपासते ये गृहस्थाः परपाकमबुद्धयः। तेन ते प्रेत्य पशुतां व्रजन्त्यन्नादिदायिनाम्॥ (मनुस्मृति ३। १०४)

११. यद्वा तद्वा परद्रव्यमपि सर्षपमात्रकम्। अपहृत्य नरः पापो नारकी नात्र संशयः॥ (स्कन्दपुराण, मा० कु० ४१। ७६)

किनको न देखें?

१. बिना किसी निमित्त (प्रयोजन)-के उदय और अस्त होते समय तथा मध्याह्नके समय सूर्यको नहीं देखना चाहिये। इसी प्रकार जल, दर्पण आदिमें प्रतिबिम्बित और ग्रहण लगे हुए सूर्य (तथा चन्द्रमा)-को भी नहीं देखना चाहिये।

२. अस्तके समय सूर्य और चन्द्रमाको देखनेसे रोगोंकी उत्पत्ति होती है।

---

१. नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नास्तं यन्तं कदाचन। नोपसृष्टं न वारिस्थं न मध्यं नभसो गतम्॥ (मनुस्मृति ४। ३७)। नेक्षेतादित्यमुद्यन्तं नास्तं यान्तं.......................... (महाभारत, अनु० १०४। १७-१८)

सूर्यमुदयास्तसमये न निरीक्षेत॥ (बौधायनस्मृति २। ३। ३७)

नोद्यन्तमादित्यं पश्येत्॥ नास्तमयन्तम्॥ (वसिष्ठस्मृति १२। ६-७)

'नास्तं गच्छन्तमुद्यन्तं वाऽऽदित्यं वीक्षेत' (सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। ९२)

उद्यन्तमस्तं यस्तं चाऽऽदित्यं दर्शने वर्जयेत्। (आपस्तम्बधर्मसूत्र १। ११। ३१। २०)

नादित्यमुद्यन्तमीक्षेत। नास्तं यान्तम्। न वाससा तिरोहितम्। न चादर्श जलमध्यगतम्। न मध्याह्ने। (विष्णुस्मृति ७१)

'नेक्षेतादित्यमुद्यन्तम्' (महाभारत, शान्ति० १९३। १७)

नोदयास्तमने बिम्बमुदीक्षेत विवस्वतः॥ (मार्कण्डेयपुराण ३४। २०)

नोदयास्तमने चैवमुदीक्षेत विवस्वतः॥ (ब्रह्मपुराण २२१। २०)

'सूर्यं चास्तमयोदये' (विष्णुपुराण ३। १२। १२)

न पश्येच्चार्कमुद्यन्तन्नास्तं यान्तं न चाम्भसि। (अग्निपुराण १५५। १५)

उदयन्तं न वीक्षेत नास्तं यन्तं न मस्तके। (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ५१)

नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं शशिनं चानिमित्ततः। नास्तं यान्तं न वारिस्थं नोपसृष्टं न मध्यगम्। तिरोहितं वाससा वा नादर्शान्तरगामिनम्॥ (कूर्मपुराण, उ० १६। ४५)

नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं शशिनं वाऽनिमित्ततः.........तिरोहितं समीक्षेत नादर्शाद्यनुगामिनम्॥ (पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ४३-४४)

२. अस्तकाले रविं चन्द्रं न पश्येद् व्याधिकारणम्। (ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण० ७५। २४)

३. कृष्णपक्षमें खण्डित चन्द्रमाको उदयकालमें देखनेसे रोग होता है।

४. सूर्यकी ओर सर्वथा नहीं देखना चाहिये।

५. जब आकाशमें एक ही तारा उगा हो, उस समय उधर नहीं देखना चाहिये, अन्यथा रोगोंका भय प्राप्त होता है। यदि उस एक तारेको देख ले तो देवताओंके दर्शन और भगवान्‌का स्मरण करके सात बार नारदजीका नाम जपना चाहिये।

६. जूठे मुँह अथवा अशुद्ध अवस्थामें सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, तारे आदिको नहीं देखना चाहिये। इसी तरह ब्राह्मण, गुरु, देवता, राजा,

---

३. खड्गं समुदितं चन्द्रं न पश्येद् व्याधिकारणम्॥
(ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण० ७५। २४)

४. 'सर्वथेक्षेत नादित्यम्' (शुक्रनीति ३। ३१; अष्टांगहृदय, सूत्र० २। ३९)
'नेक्षेतार्कम्' (याज्ञवल्क्यस्मृति १। १३५)

५. एकतारं च गगनं न पश्येत्तुरुजां भयात्। देवान् दृष्ट्वा हरिं स्मृत्वा सप्तधा नारदं जपेत्॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण० ७५। २३)

६. न चापि पश्येदशुचिः सुस्थो ज्योतिर्गणान्दिवि॥ (मनुस्मृति ४। १४२)
'नाशुचीराहुतारकाः' (याज्ञवल्क्यस्मृति १। १३५)
नाशुचिः सूर्यसोमादीन् ग्रहानालोकयेद् बुधः॥
(कूर्मपुराण, उ० १६। ४६; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ४६)
त्रीणि तेजांसि नोच्छिष्ट उदीक्षेत कदाचन। सूर्याचन्द्रमसावेवं नक्षत्राणि च सर्वशः॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। ९३)
त्रीणि तेजांसि.................. सूर्याचन्द्रमसौ चैव नक्षत्राणि च सर्वशः।
(महाभारत, अनु० १०४। ६३-६४)
'नोच्छिष्टस्तारकादिदृक्' (अग्निपुराण १५५। २१)
न च पश्येद् रविं नेन्दुं न नक्षत्राणि कामतः। (मार्कण्डेयपुराण ३४। ३१)
न पश्येच्च रविं चेन्दुं नक्षत्राणि च कामतः॥ (ब्रह्मपुराण २२१। ३०)

श्रेष्ठ संन्यासी, योगी, देवकार्य करनेवाले तथा धर्मका उपदेश देनेवाले द्विजके पास भी जूठे मुँह अथवा अशुद्ध अवस्थामें नहीं जाना चाहिये।

७. मल-मूत्रकी ओर नहीं देखना चाहिये।

८. चमकीली, सूक्ष्म, अस्थिर, अपवित्र और अप्रिय वस्तुओंको निरन्तर नहीं देखना चाहिये।*

९. जलमें और तेलमें अपनी परछाईं नहीं देखनी चाहिये।

सूर्येन्दुतारका दृष्ट्वा यैरुच्छिष्टैस्तु कामतः। तेषां याम्यैर्नरैर्नेत्रे न्यस्तो वह्निः समिध्यते॥
(मार्कण्डेयपुराण १४। ५८)
नेक्षेद्विप्रं गुरुं देवं राजानं यतिनां वरम्। योगिनं देवकर्माणं धर्माणां कथकं द्विजम्॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। ९४)

७. 'न विण्मूत्रमुदीक्षेत' (मनुस्मृति ४। ७७)
'न च मूत्रपुरीषं वा' (याज्ञवल्क्यस्मृति १। १३५)
'न च मूत्रं पुरीषं वा' (कूर्मपुराण, उ० १६। ४६; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ४५)
'न पश्येदात्मनः शकृत्' (महाभारत, शान्ति० १९३। २४; मार्कण्डेयपुराण ३४। २३; ब्रह्मपुराण २२१। २३)
'पुरीषमूत्रे नोदीक्षेत्' (महाभारत, अनु० १०४। २४)

८. नेक्षेत सततं सूक्ष्मं दीप्तामेध्याप्रियाणि च॥
(शुक्रनीति ३। ३१; अष्टांगहृदय, सूत्र० २। ३९)
'न प्रततमीक्षेत विशेषाज्ज्योतिर्भास्करसूक्ष्मचलभ्रान्तानि'
(सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। ९६)
'ज्योतींष्यनिष्टममेध्यमशस्तं न नाभिवीक्षेत' (चरकसंहिता, सूत्र० ८। १९)

९. न चोदके निरीक्षेत स्वं रूपमिति धारणा॥ (मनुस्मृति ४। ३८)
'न तैलोदकयोश्छायाम्' (कूर्मपुराण, उ० १६। ४८; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ४७)
'नात्मानमुदके पश्येत्' (सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। १००)
न तैलोदकयोः स्वच्छायाम्। (विष्णुस्मृति ७१)
'नोदके चात्मनो रूपम्' (कूर्मपुराण, उ० १६। ५०; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ४९)
तैले जले तथा वक्त्रमादर्शे च मलान्विते॥ न पश्येन्न तथा पश्येदुपरक्तं दिवाकरम्। (विष्णुधर्मोत्तर० २। ८९। ३२-३३)
'न वीक्षेतात्मनो रूपमप्सु' (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ५२)

---

* चमकीली वस्तुओंके अन्तर्गत टेलिविजन, सिनेमा आदिको भी ले लेना चाहिये।

१०. शवका स्पर्श किये हुए व्यक्तिको, क्रुद्ध गुरुके मुखको, तेल और जलमें पड़नेवाली छायाको, भोजन करती हुई पत्नीको, खुले हुए अंगोंवाली स्त्रीको, पागल एवं मतवाले व्यक्तिको नहीं देखना चाहिये।

११. पत्नीके साथ भोजन नहीं करना चाहिये और उसे भोजन करते हुए, छींकते हुए, जम्हाई लेते हुए तथा आसनपर स्वेच्छासे बैठे रहनेकी अवस्थामें नहीं देखना चाहिये।

१२. जलमें अपना रूप, नदी आदिका किनारा और गहरे गड्ढेको नहीं देखना चाहिये।

१३. जलमें सूर्य और चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब देखनेसे मनुष्यको शोककी प्राप्ति होती है।

१४. पराया मैथुन देखनेसे बन्धु (भाई)-का वियोग होता है, इसलिये उसे नहीं देखना चाहिये।

---

१०. न पश्येत् प्रेतसंस्पर्शं न क्रुद्धस्य गुरोर्मुखम्। न तैलोदकयोश्छायां न पत्नीं भोजने सति। नामुक्तबन्धनाङ्गीं वा नोन्मत्तं मत्तमेव वा॥
(कूर्मपुराण, उ० १६। ४८)

न क्रुद्धस्य गुरोर्मुखम्। न तैलोदकयोः स्वच्छायाम्। न पत्नीं भोजनसमये।
(विष्णुस्मृति ७१)

११. नाश्नीयात् भार्यया सार्धं नैनामीक्षेत चाश्नतीम्। क्षुवन्तीं जृम्भमाणां वा नासनस्थां यथासुखम्॥
(कूर्मपुराण, उ० १६। ४९; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ४८-४९)

१२. नोदके चात्मनो रूपं न कूलं श्वभ्रमेव वा। (कूर्मपुराण, उ० १६। ५०)

नोदके चात्मनो रूपं शुभं वाऽशुभमेव वा॥ (पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ४९)

१३. जलस्थं च रविं चन्द्रं दृष्ट्वा शोकं लभेन्नरः।
(ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण० ७५। २५)

१४. बन्धुविच्छेदहेतुं च पश्येत् परमैथुनम्॥ (,, ,, ,,)

'न च संस्पृष्टमैथुनम्' (याज्ञवल्क्यस्मृति १। १३५; कूर्मपुराण, उ० १६। ४६; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ४५)

१५. नग्न परस्त्री अथवा परपुरुषकी ओर कभी नहीं देखना चाहिये।

१६. जो दूषित हृदयसे किसी नग्न स्त्रीकी ओर देखते हैं, वे पापी मनुष्य रोगसे पीड़ित होते हैं।

---

१५. 'नग्नां नेक्षेत च स्त्रियम्' (मनुस्मृति ४। ५३)

'नेक्षेतार्कं न नग्नां स्त्रीम्' (याज्ञवल्क्यस्मृति १। १३५)

'न स्त्रियं नग्नाम्।' (विष्णुस्मृति ७१)। न नग्नां परयोषितमीक्षेत।
(गौतमधर्मसूत्र १। ९। ४८)

न नग्नां स्त्रियमीक्षेत पुरुषं वा कदाचन।
(कूर्मपुराण, उ० १६। ४६; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ४५)

नेक्षेतादित्यमुद्यन्तं न च नग्नां परस्त्रियम्। (महाभारत, शान्ति० १९३। १७)

'नग्नां परस्त्रियं चैव' (विष्णुपुराण ३। १२। १२)

नग्नां परस्त्रियं नेक्षेन्न पश्येदात्मनः शकृत्।
(मार्कण्डेयपुराण ३४। २३; ब्रह्मपुराण २२१। २३)

'न नग्नां स्त्रियमीक्षेत' (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ५२)

१६. मनसा तु प्रदुष्टेन नग्नां पश्यन्ति ये स्त्रियम्। रोगार्तास्ते भवन्तीह नरा दुष्कृतकर्मिणः॥
(महाभारत, अनु० १४५। ५१)
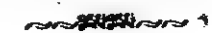
कहाँ न बैठें?

१. अधिक आयुकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको केश, राख, हड्डी, कण्टक, कपाल (ठीकरा), बिनौला, भूसी, कोयला, रस्सी, सड़ी-गली वस्तुएँ, अपवित्र वस्तु, बलिभूमि, मार्ग तथा स्नानके कारण भीगी हुई पृथ्वीपर कभी बैठना या खड़ा नहीं होना चाहिये।

---

१. अधितिष्ठेन्न केशांस्तु न भस्मास्थिकपालिकाः। न कार्पासास्थि न तुषान्दीर्घमायुर्जिजीविषुः॥ (मनुस्मृति ४। ७८)

विरुद्धं वर्जयेत् कर्म .... केशभस्मतुषाङ्गारकपालेषु च संस्थितिम्॥ (याज्ञवल्क्यस्मृति १। १३९)। न भस्मकेशनखतुषकपालमेध्यान्यधितिष्ठेत्। (गौतमधर्मसूत्र १। ९। १६)

भस्मास्थिरोमतुषकपालावस्थानानि नाधितिष्ठेत्॥ (बौधायनस्मृति २। ३। ४३)

नाधितिष्ठेच्छकृन्मूत्रकेशभस्मकपालिकाः॥ तुषाङ्गारास्थिशीर्णानि रज्जुवस्त्रादिकानि च। नाधितिष्ठेत्तथा प्राज्ञः पथि चैवं तथा भुवि॥ (मार्कण्डेयपुराण ३४। २४-२५) .... तुषाङ्गारविशीर्णानि .... प्राज्ञः वस्त्राणि वा भुवि॥ (ब्रह्मपुराण २२१। २४-२५)

नाधितिष्ठेत्तुषाङ्गारभस्मकेशकपालिकाः॥ (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ७५)

नास्थिभस्मकपालानि न केशान्न च कण्टकान्। तुषाङ्गारकरीषं वा नाधितिष्ठेत् कदाचन॥ (कूर्मपुराण, उ० १६। ७६; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ७७)

केशभस्मतुषाङ्गारकपालेषु च संस्थितिम्॥

(गरुड़पुराण, आचार० ९६। ४२)

नाधितिष्ठेत् तुषं जातु केशभस्मकपालिकाः। अन्यस्य चाप्यवस्नातं दूरतः परिवर्जयेत्॥

(महाभारत, अनु० १०४। ५९)

केशास्थिकण्टकामेध्यबलिभस्मतुषांस्तथा। स्नानार्द्रधरणीं चैव दूरतः परिवर्जयेत्॥ (विष्णुपुराण ३। १२। १५)

'कुचेलास्थिकण्टकामेध्यकेशतुषोत्करभस्मकपालस्नानबलिभूमीनां परिहर्ता'

(चरकसंहिता, सूत्र० ८। १८)

२. भूसी, कोयले, हड्डी, राख, रुई, निर्माल्य (देवताको अर्पित वस्तु), चिताकी लकड़ी, चिता और गुरुजनोंके शरीरपर कभी पैर न रखे।

३. दीपककी छायामें तथा बहेड़ेके वृक्षके नीचे बैठना नहीं चाहिये। बहेड़े तथा करंज वृक्षकी छायासे मनुष्यको दूर ही रहना चाहिये।

४. चौराहेपर खड़े होना या बैठना नहीं चाहिये।

५. उबटन आदिकी मैल, स्नानका पानी, विष्ठा, मूत्र, रक्त, कफ, पान आदिका पीक और थूक तथा वमन किये गये अन्नादिपर खड़ा नहीं होना चाहिये।

---

२. न दद्याच्च सदापादं तुषाङ्गारास्थिभस्मषु। कार्पासास्थिषु निर्माल्योचितिकाष्ठे चितौ गुरौ॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। १०९)

३. न तिष्ठेच्च क्षणं धीरो दीपच्छाये कलिद्रुमे॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। १११)

विभीतक करञ्जानां छायां दूरात्तु वर्जयेत्॥ (वृद्धगौतमस्मृति ८। ९९)

.... दूरे विवर्जयेत्। (महाभारत, आश्व० ९२)

४. न चतुष्पथमधितिष्ठेत्। (विष्णुस्मृति ६३)

५. उद्वर्तनमपस्नानं विण्मूत्रे रक्तमेव च। श्लेष्मनिष्ठ्यूतवान्तानि नाधितिष्ठेत्तु कामतः॥

(मनुस्मृति ४। १३२)

126

किनको न लाँघें ?

१. किसी भी प्राणीके ऊपरसे लाँघकर नहीं जाना चाहिये।

२. किसी भी शुभ या अशुभ वस्तुको न तो लाँघे और न उसपर पैर ही रखे।

३. अग्निको लाँघना नहीं चाहिये।

४. केश, भस्म, भूसी, अपवित्र वस्तु (हड्डी, मल-मूत्र आदि), कपास, चौराहा, गड्ढा, कपाल, कोयला, शर्करा (बालू या कंकड़), ढेले, बलिभूमि तथा स्नानभूमिको लाँघना नहीं चाहिये।

---

१. निर्गुणः परमात्मा तु देहं व्याप्यावतिष्ठते। तमहं ज्ञानविज्ञेयं नावमन्ये न लङ्घये॥ (महाभारत, वन० १४७। ८)

२. ....शुभं वाऽशुभमेव वा॥ न लङ्घयेच्च मतिमान्नाधितिष्ठेत् कदाचन। (पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ४९-५०)

३. पादौ प्रतापयेन्नाग्नौ न चैनमभिलङ्घयेत्॥ (याज्ञवल्क्यस्मृति १। १३७)

'न चाग्निं लङ्घयेद् धीमान्' (कूर्मपुराण, उ० १६। ७७; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ७८)

४. चैत्यपूज्यध्वजाशस्तच्छायाभस्मतुषाशुचीन्॥ नाक्रामेच्छर्करालोष्टबलिस्नानभुवोऽपि च। (शुक्रनीति ३। २५-२६)..........बलिस्नानभुवो न च। (अष्टांगहृदय, सूत्र० २। ३३-३४)

न केशास्थिकण्टकाश्मतुषभस्मोत्करकपालाङ्गारामेध्यस्नानबलिभूमिषु न विषमेन्द्रकीलचतुष्पथश्वभ्राणामुपरिष्टात्। (सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। ८९)

कार्पासास्थि तथा भस्म नाक्रामेद् यच्च कुत्सितम्। (अग्निपुराण १५५। १६)

५. रक्त, विष्ठा, थूक, मूत्र और उबटनकी सामग्रीका उल्लंघन न करे।

६. देवप्रतिमा, ब्राह्मण, गुरु, राजा, स्नातक, आचार्य, चैत्यवृक्ष, ध्वजा, यज्ञमें दीक्षित मनुष्य, गौ, तेजोमय पदार्थ, रोगी और

---

५. नाक्रामेद्रक्तविण्मूत्रष्ठीवनोद्वर्तनादि च॥ (याज्ञवल्क्यस्मृति १। १५२)

श्लेष्मविण्मूत्ररक्तानि सर्वदैव न लङ्घयेत्॥ (विष्णुपुराण ३। १२। २८)

'उच्छिष्टं नैव लङ्घयेत्' (नारदपुराण, पूर्व० २६। २३)

नाक्रामेद्रक्तविण्मूत्रष्ठीवनोद्वर्त्तनानि च। (गरुड़पुराण, आचार० ९६। ५४)

६. चैत्यपूज्यध्वजाशंस्तच्छायाभस्मतुषाशुचीन्॥ (शुक्रनीति ३। २५; अष्टांगहृदय, सूत्र० २। ३३)

देवतानां गुरो राज्ञः स्नातकाचार्ययोस्तथा। नाक्रामेत्कामतश्छायां बभ्रुणो दीक्षितस्य च॥ (मनुस्मृति ४। १३०)

देवब्राह्मणचैत्यध्वजरोगिपतितपापकारिणां च छायां नाक्रमेत। (सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। ९२)

देवतायतनं प्राज्ञो देवानां चैव सत्रिणाम्। नाक्रामेत् कामतश्छायां ब्राह्मणानां च गोरपि॥ (कूर्मपुराण, उ० १६। ९१; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ९२)

देवतानां गुरोराज्ञां स्नातकाचार्ययोरपि। नाक्रमेत्कामतश्छायां विप्रस्य दीक्षितस्य च॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। ८९)

देवर्त्विक्स्नातकाचार्यराज्ञां छायां परस्त्रियाः। नाक्रामेत्.......... । (याज्ञवल्क्यस्मृति १। १५२)

पूज्यदेवद्विजज्योतिश्छायां नातिक्रमेद् बुधः। (विष्णुपुराण ३। १२। १४)

सुरार्चा गुरुभूपानां ब्राह्मणानां विशेषतः। नाक्रमेच्च तथा छायां श्वपचस्य च भार्गव॥ (विष्णुधर्मोत्तर० २। ८९। ३०)

'न चैत्यध्वजगुरुपूज्याशस्तच्छायामाक्रामेत्' (चरकसंहिता, सूत्र० ८। १९)

वेददिष्टं तथाचार्य्य राजच्छायां परस्त्रियम्। नाक्रामेत्.......... (गरुड़पुराण, आचार० ९६। ५४)

पतित—इनकी छायाका इच्छापूर्वक उल्लंघन नहीं करना चाहिये।

७. पतित मनुष्य तथा रोगियोंसे अपनी छायाका उल्लंघन नहीं होने देना चाहिये।

८. बछड़ा बाँधनेकी रस्सीको नहीं लाँघना चाहिये।

---

७. स्वां तु नाक्रमयेच्छायां पतिताद्यैर्न रोगिभिः। (कूर्मपुराण, उ० १६। ९२; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ९३)

८. 'न लङ्घयेद्वत्सतन्त्रीम्' (मनुस्मृति ४। ३८)

'न वत्सतन्त्रीं लङ्घयेत्' (विष्णुस्मृति ६३)

वत्सतन्तीं च नोपरि गच्छेत्। (आपस्तम्बधर्मसूत्र १। ११। ३१। १५; बौधायनस्मृति २। ३। ४२)

वत्सतन्तीं विततां नातिक्रामेत्॥ (वसिष्ठस्मृति १२। ५)

न वत्सतन्त्रीं विततामतिक्रामेत् क्वचिद् द्विजः। (कूर्मपुराण, उ० १६। ९०)

नोपरि वत्सतन्तीं गच्छेत्। (गौतमधर्मसूत्र १। ९। ५२)

किनका अपमान न करें?

१. जो लोग किसी अंगसे हीन हों, जिनका कोई अंग अधिक हो, जो विद्यासे हीन, अवस्थाके बूढ़े, रूप और धनसे रहित तथा जातिसे भी नीच हों, उनका अपमान नहीं करना चाहिये। कारण कि अपमान करनेवाले मनुष्यका पुण्य, जिसका अपमान किया जाता है, उसके पास चला जाता है और उसका पाप अपमान करनेवालेके पास चला आता है।

२. दीन, अन्धे, पंगु और बहरे मनुष्यका कभी उपहास नहीं करना चाहिये।

३. साँप, अग्नि, दुर्जन, राजा, दामाद, भानजा, रोग, शत्रु और ब्राह्मण यदि दुर्बल हों तो भी इनका अपमान नहीं करना चाहिये।

४. मनुष्यको चाहिये कि वह सर्प, अग्नि, सिंह और अपने कुलमें उत्पन्न व्यक्तिका अनादर न करे; क्योंकि ये सभी बड़े तेजस्वी होते हैं।

---

१. हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान् विद्याहीनान् वयोऽधिकान्। रूपद्रविणहीनांश्च जातिहीनांश्च नाक्षिपेत्॥ शपता यत् कृतं पुण्यं शप्यमानं तु गच्छति। शप्यमानस्य यत् पापं शपन्तमनुगच्छति॥ (महाभारत, आश्व० ९२)

हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान्विद्याहीनान्विगर्हितान्। रूपद्रविणहीनांश्च सत्त्वहीनांश्च नाक्षिपेत्॥ (विष्णुधर्मोत्तर० ३। २३३। ४८)

हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान्विद्याहीनान्वयोधिकान्। रूपद्रव्यविहीनांश्च जातिहीनांश्च नाक्षिपेत्॥ (मनुस्मृति ४। १४१)

२. दीनान्धपङ्गुबधिरा नोपहास्याः कदाचन॥ (शुक्रनीति ३। ११५)

३. क्षत्रियं चैव सर्पं च ब्राह्मणं च बहुश्रुतम्। नावमन्येत वै भूष्णुः कृशानपि कदाचन॥ (मनुस्मृति ४। १३५)

सर्पोऽग्निर्दुर्जनो राजा जामाता भगिनीसुतः॥ रोगः शत्रुर्नावमान्योऽप्यल्प इत्युपचारितः। (शुक्रनीति ३। १०६-१०७)

४. सर्पश्चाग्निश्च सिंहश्च कुलपुत्रश्च भारत। नावज्ञेया मनुष्येण सर्वे ह्येतेऽतितेजसः॥ (महाभारत, उद्योग० ३७। ५९)

५. जहाँ अपूज्य लोगोंका आदर होता है और पूज्यजनोंका निरादर होता है, वहाँ दुर्भिक्ष, मरण और भय—ये तीन उपद्रव होते हैं।

६. प्रत्येक युगके जो ब्राह्मण हैं, उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि वे ब्राह्मण युगके अनुरूप हैं।

७. आचार्य, पिता, माता और बड़ा भाई—इनका दुःखी होकर भी कभी अपमान न करे। आचार्य परमात्माकी मूर्ति, पिता ब्रह्माकी मूर्ति, माता पृथ्वीकी मूर्ति और भाई अपनी ही मूर्ति है।

---

५. अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूजनीयो न पूज्यते। त्रीणि तत्र प्रवर्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम्॥ (स्कन्दपुराण, मा० के० ३। ४५)

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूजनीयो न पूज्यते। त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दारिद्र्यं मरणं भयम्॥ (शिवपुराण, रुद्र० सती० ३५। ९)

६. युगे युगे च ये धर्मास्तत्र तत्र च ये द्विजाः। तेषां निन्दा न कर्तव्या युगरूपा हि ते द्विजाः॥ (पाराशरस्मृति १। ३३)

युगे युगे तु ये धर्मास्तेषु तेषु च ये द्विजाः॥ तेषां निन्दा न कर्तव्या युगरूपा हि ते द्विजाः। (पाराशरस्मृति ११। ५१-५२; व्याघ्रपादस्मृति १२)

७. आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः। नार्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः॥ आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः। माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता स्वो मूर्तिरात्मनः॥ (मनुस्मृति २। २२५-२२६)

पिता माता तथा भ्राता आचार्याः कुरुनन्दन। नार्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः॥ आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः। मातापृथ्यथादितेर्मूर्तिर्भ्राता स्यान्मूर्तिरात्मनः॥ (भविष्यपुराण, ब्राह्म० ४। १९४-१९५)

किनपर विश्वास न करें ?

१. नखवाले जीवोंका, नदियोंका, सींगवाले पशुओंका, शस्त्रधारियोंका, स्त्रियोंका तथा दूतोंका (अथवा राजपरिवारका) कभी विश्वास नहीं करना चाहिये।

२. औरोंकी तो बात ही क्या है, अपने शरीरका भी विश्वास नहीं करना चाहिये। बलवान् और डरपोक स्वभाववाले मनुष्योंका भी विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि वे नींदमें, नशेमें या प्रमादवश गुप्त बात भी दूसरोंको बता सकते हैं।

३. लोभ, प्रमाद और विश्वास—इन्हीं तीन दोषोंसे प्रत्येक प्राणी बँधता और मारा जाता है। इसलिये लोभ न करे, प्रमादमें न पड़े और हरेकपर विश्वास न करे।

---

१. नखीनां च नदीनां च शृङ्गिणां शस्त्रधारिणाम्॥ न विश्वासस्त्वया कार्यः स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च। (पद्मपुराण, सृष्टि० १८। ३६६-३६७)

शृङ्गिणां नखिनां चैव दंष्ट्रिणां दुर्जनस्य च। नदीनां वसतौ स्त्रीणां विश्वासं नैव कारयेत्॥ (शुक्रनीति ३। १४२)

नखीनाञ्च नदीनाञ्च शृङ्गिणां शस्त्रपाणिनाम्। विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च॥ (चाणक्यनीतिदर्पण १। १५)। नदीनाञ्च नखीनाञ्च.............. (गरुड़पुराण, आचार० १०९। १४)

२. न विश्वसेत्स्वदेहेऽपि बलिष्ठे भीतचेतसि॥ वक्ष्यन्ति गूढमत्यर्थं सुप्तं मत्तं प्रमादतः। (पद्मपुराण, सृष्टि० १८। ३६८-३६९)

३. लोभात्प्रमादाद्विस्त्रंभात्त्रिभिर्नाशो भवेन्नृणाम्॥ तस्माल्लोभं न कुर्वीत न प्रमादं न विश्वसेत्। (पद्मपुराण, सृष्टि० १८। ३६३-३६४)

लोभात्प्रमादाद्विश्रम्भात्पुरुषो वध्यते त्रिभिः। तस्माल्लोभो न कर्तव्यो न प्रमादो न विश्वसेत्॥ (स्कन्दपुराण, नागर० ५१। २४)

लोभप्रमादविश्वासैः पुरुषो नश्यति त्रिभिः। तस्माल्लोभो न कर्त्तव्यः प्रमादो नो न विश्वसेत्॥ (गरुड़पुराण, आचार० ११५। ४४)

४. सर्वथा विश्वासपात्र व्यक्तियोंपर भी सदा विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि धन, स्त्री और राज्य (जमीन)-का लोभ सबमें अधिक होता है।

५. स्त्री, धूर्त, आलसी, डरपोक, क्रोधी, पुरुषत्वके अभिमानी, चोर, कृतघ्न और नास्तिकका विश्वास नहीं करना चाहिये।

४. नात्यन्तं विश्वसेत् कञ्चिद् विश्वस्तमपि सर्वदा॥ पुत्रं वा भ्रातरं भार्याममात्यमधिकारिणम्। धनस्त्रीराज्यलोभो हि सर्वेषामधिको यतः॥ (शुक्रनीति ३। ८०-८१)

५. स्त्रीधूर्तकेऽलसे भीरौ चण्डे पुरुषमानिनि। चौरे कृतघ्ने विश्वासो न कार्यो न च नास्तिके॥ (महाभारत, उद्योग० ३९। ७३)

कहाँ निवास न करें?

१. जहाँ राजा, धनी, वेदज्ञ ब्राह्मण, वैद्य, आचार और देश—ये अपनेसे विरुद्ध प्रतीत हों, वहाँ एक दिन भी नहीं रहना चाहिये।

२. जहाँ नपुंसक, स्त्री, बालक, अत्यन्त क्रोधी, मूर्ख या साहसी (बिना विचारे सहसा कार्य करनेवाला)—इनमेंसे कोई भी व्यक्ति अधिकारी-वर्गका हो, वहाँ एक दिन भी निवास नहीं करना चाहिये।

३. जहाँ राजा अविवेकी हो, सभासद्‌गण पक्षपात रखनेवाले हों, विद्वान्‌लोग सदाचारसे हीन हों, साक्षीगण (गवाही देनेवाले) झूठ बोलनेवाले हों और जहाँ दुष्टों, स्त्रियों तथा नीचजनोंकी प्रबलता हो, वहाँ रहते हुए अपने धन, इज्जत, वासस्थान और जीवनकी इच्छा न रखे।

४. गृहस्थ पुरुषको टूटे-फूटे या सूने घरमें, श्मशानमें, मनुष्योंसे रहित स्थानमें और वनमें निवास नहीं करना चाहिये।

१. विरुद्धो यत्र नृपतिर्धनिकः श्रोत्रियो भिषक्। आचारश्च तथा देशो न तत्र दिवसं वसेत्॥ (शुक्रनीति ३। ४४)

२. नपुंसकश्च स्त्री बालश्चण्डो मूर्खश्च साहसी। यत्राधिकारिणश्चैते न तत्र दिवसं वसेत्॥ (शुक्रनीति ३। ४५)

३. अविवेकी यत्र राजा सभ्या यत्र तु पाक्षिकाः। सन्मार्गोज्झितविद्वांसः साक्षिणोऽनृतवादिनः॥ दुरात्मनां च प्राबल्यं स्त्रीणां नीचजनस्य च। यत्र नेच्छेद्धनं मानं वसति तत्र जीवितम्॥ (शुक्रनीति ३। ४६-४७)

४. 'भिन्नशून्यागारश्मशानविजनारण्यवासः' (सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। ९१)

५. जहाँ धनवान्, वेदज्ञ ब्राह्मण, राजा, नदी और वैद्य—ये पाँच न हों, वहाँ एक दिन भी नहीं रहना चाहिये।

६. जिस देशमें न तो सम्मान हो, न जीविका हो, न बन्धुजन हों और न विद्याकी प्राप्ति हो, उस देशका त्याग कर देना चाहिये।

---

५. धनिकः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चमः। पञ्च यत्र न विद्यन्ते न तत्र दिवसं वसेत्॥ (चाणक्यनीति० १। ९)

धनिनः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चमः। पञ्च यत्र न विद्यन्ते न कुर्यात् तत्र संस्थितिम्॥ (गरुड़पुराण, आचार० ११०। २६)

तत्र पुत्र (विप्रा) न वस्तव्यं यत्र नास्ति चतुष्टयम्॥ ऋणप्रदाता वैद्यश्च श्रोत्रियः सजला नदी। (मार्कण्डेयपुराण ३४। ११२-११३; ब्रह्मपुराण २२१। १०३)

६. यस्मिन् देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च बान्धवाः। न च विद्यागमः कश्चित् तं देशं परिवर्जयेत्॥ (चाणक्यनीति १। ८; हितोपदेश, मित्रलाभ १०८)
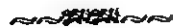
लक्ष्मी कहाँ नहीं आती?

१. जो स्त्रियाँ घरके बर्तनोंको सुव्यवस्थित रूपसे न रखकर इधर-उधर बिखेरे रहती हैं, सोच-समझकर काम नहीं करतीं, सदा अपने पतिके प्रतिकूल ही बोलती हैं, दूसरोंके घरोंमें घूमने-फिरनेमें रुचि रखती हैं और लज्जाको सर्वथा छोड़ देती हैं, उन्हें लक्ष्मी त्याग देती है।

२. जो मल-मूत्रका त्याग करके उसे देखता है, गीले पैरों सोता है, बिना पैर धोये सोता है, नग्न होकर सोता है, सन्ध्याकाल तथा दिनमें सोता है, पहले सिरपर तेल लगाकर पीछे उस तेलको अन्य अंगोंपर लगाता है, मस्तक तथा शरीरपर तेल लगाकर मल-मूत्रका त्याग करता है या नमस्कार करता है अथवा पुष्प तोड़ता है, नखोंसे तृण तोड़ता है, नखोंसे भूमि कुरेदता है, जिसके शरीर और पैरमें मैल जमी रहती है, उसके घर लक्ष्मी नहीं आती।

---

१. प्रकीर्णभाण्डामनवेक्ष्यकारिणीं सदा च भर्तुः प्रतिकूलवादिनीम्॥ परस्य वेश्माभिरतामलज्जामेवंविधां तां परिवर्जयामि। (महाभारत, अनु० ११। ११-१२)

२. मूत्रं पुरीषमुत्सृज्य यस्तत्पश्यति मन्दधीः। यः शेते स्निग्धपादेन न यामि तस्य मन्दिरम्॥ अधौतपादशायी यो नग्नः शेतेऽतिनिद्रितः। सन्ध्याशायी दिवाशायी न यामि तस्य मन्दिरम्॥ मूर्ध्नितैलं पुरो दत्त्वा योऽन्यदङ्गमुपस्पृशेत्। ददाति पश्चाद्गात्रे वा न यामि तस्य मन्दिरम्॥ दत्त्वा तैलं मूर्ध्निगात्रे विण्मूत्रं यः समुत्सृजेत्। प्रणमेदाहरेत् पुष्पं न यामि तस्य मन्दिरम्॥ तृणं छिनत्ति नखैर्नखैर्विलिखेन्महीम्। गात्रे पादे मलं यस्य न यामि तस्य मन्दिरम्॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण, गणपति० २३। २८—३२)

३. जो मैले वस्त्र धारण करता है, दाँतोंको स्वच्छ नहीं रखता, अधिक भोजन करता है, कठोर वचन बोलता है और सूर्योदय तथा सूर्यास्तके समय सोता है, वह यदि साक्षात् विष्णु भी हो तो उसे भी लक्ष्मी छोड़ देती है।

४. दीपक, शय्या और आसनकी छाया, कपासकी लकड़ीका दातुन और बकरीकी धूलका स्पर्श इन्द्रकी भी लक्ष्मीको हर लेते हैं।

५. जो नखोंसे तृण तोड़ता है, नखोंसे पृथ्वीको कुरेदता है, जो निराशावादी है, सूर्योदयके समय भोजन करता है, दिनमें सोता और मैथुन करता है, भीगे पैर अथवा नंगा होकर सोता है, निरन्तर व्यर्थकी बातें तथा परिहास करता है, सिरपर तेल लगाकर उसीसे दूसरे अंगका स्पर्श करता है और अपने अंगपर बाजा बजाता है, उसके घरसे रुष्ट होकर लक्ष्मी चली जाती है।

---

३. कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणं बह्वाशिनं निष्ठुरवाक्यभाषिणम्। सूर्योदये ह्यस्तमयेऽपि शायिनं विमुञ्चति श्रीरपि चक्रपाणिम्॥

(गरुड़पुराण, आचार० ११४। ३५)

४. दीपशय्यासनच्छाया कार्पासं दन्तधावनम्। अजारेणुस्पृशं चैव शक्रस्यापि श्रियं हरेत्॥ (अत्रिसंहिता ३९०)

५. तृणं छिनत्ति नखैस्तैर्वा यो विलिखेन्महीम्। निराशो ब्राह्मणो यत्र तद्गृहाद्याति मत्प्रिया॥ सूर्योदये द्विजो भुङ्क्ते दिवास्वापी च ब्राह्मणः। दिवामैथुनकारी च यस्तस्माद्याति मत्प्रिया॥ स्निग्धपादश्च नग्नो हि यः शेते ज्ञानदुर्बलः। शश्वद्धसति वाचालो याति सा तद्गृहात् सती॥ शिरःस्नातस्तु तैलेन योऽन्याङ्गं समुपस्पृशेत्। स्वाङ्गे च वादयेद्वाद्यं रुष्टा सा याति तद्गृहात्॥

(देवीभागवत ९। ४१। ३९-४०, ४२-४३)

सूर्योदये च द्विर्भोजी दिवाशायी च ब्राह्मणः। दिवा मैथुनकारी च तस्माद् याति हरिप्रिया॥ शिरः स्नातश्च तैलेन योऽन्यदङ्गमुपस्पृशेत्। स्वाङ्गे च वादयेद्वाद्यं रमा याति च तद्गृहात्॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृति० ३८। ४४, ४६)

६. दिनमें कैथकी छाया, रात्रिमें दही, कपासकी लकड़ीका दातुन और सप्तमीके दिन आँवला—ये विष्णुकी भी लक्ष्मीका हरण करनेवाले हैं।

नित्यं छेदस्तृणानां धरणिविलिखनं पादयोश्चापमार्ष्टिः दन्तानामप्यशौचं मलिनवसनता रूक्षता मूर्द्धजानाम्। द्वे सन्ध्ये चापि निद्रा विवसनशयनं ग्रासहासातिरेकः स्वाङ्गे पीठे च वाद्यं निधनमुपनयेत् केशवस्यापि लक्ष्मीम्॥

(गरुड़पुराण, आचार० ११४। ३६)

६. दिवा कपित्थच्छायायां रात्रौ दधि शमीषु च। कार्पासं दन्तकाष्ठं च विष्णोरपि हरेच्छ्रियम्॥ (अत्रिसंहिता ३१५)

दिवा कपित्थछायासु रात्रौ दधिशमीषु च। धात्रीफलेषु सप्तम्यामलक्ष्मीर्वसते सदा॥ (लघुशंखस्मृति ६८; दाल्भ्यस्मृति १६४)

आत्महत्याका पाप

१. आत्महत्या करनेवाले प्राणीकी अशुद्धि (अशौच) न माने, पाशका छेदन न करे, आँसू भी न गिराये, अग्नि-संस्कार भी न करे, अस्थि-संचय भी न करे, जलदान (श्राद्ध-तर्पण) भी न करे। ऐसे प्राणीके शरीरको ले जानेवाले तथा दाह-संस्कार करनेवाले तप्तकृच्छ्र-व्रत करनेसे शुद्ध होते हैं।

---

१. नाशौचं नोदकं नाग्निं नाश्रुपातं च कारयेत्। वोढारोऽग्निप्रदातारः पाशच्छेदकरास्तथा॥ तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यन्तीत्येवमाह प्रजापतिः। (पाराशरस्मृति ४। ३-४)

आत्मघातादिपापिनां शवस्पर्शालङ्करणवहनदहनाश्रुपातास्थिसञ्चय-दशाहक्रियादिकमज्ञानतः कृत्वा मनूक्तं तप्तकृच्छ्रं द्वादशाहम्। ज्ञानतो द्विगुणम्।.........दाहकर्तुः प्राजापत्यमात्मघातादिप्रायश्चित्तं पुत्रादिः कृत्वाऽस्थीनि विधिवद्दहेत्। (प्रायश्चित्तेन्दुशेखर)

उद्बन्धनमृतस्य यः पाशं छिन्द्यात् स तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति। आत्मघातिनां संस्कर्त्ता च। तदश्रुपातकारी च। (विष्णुस्मृति २२)

आत्मनस्त्यागिनां चैव निवर्तेतोदकक्रिया॥

(मनुस्मृति ५। ८९; दाल्भ्यस्मृति ८७)

अग्निदाता तथा चान्ये ये चान्ये पाशछेदकाः। तप्तकृच्छ्रेण शुध्यन्ति मनुराह प्रजापतिः॥ (दाल्भ्यस्मृति ८९)

अग्निदाता तथा चान्ये पाशच्छेदकराश्च ये। तप्तकृच्छ्रेण शुध्यन्ति मनुराह प्रजापतिः॥ (लिखितस्मृति ६८)

पतितानां न दाहः स्यान्नान्त्येष्टिर्नास्थिसञ्चयः। न चाश्रुपातः पिण्डे च कार्यं श्राद्धादिकं क्वचित्॥ (औशनसस्मृति ७। १; कूर्मपुराण, उ० २३। ७२)

व्यापादयेत् तथात्मानं स्वयं योऽग्निविषादिभिः। विहितं तस्य नाशौचं नाग्निर्नाप्युदकादिकम्॥ (कूर्मपुराण, उ० २३। ७३)

य आत्मत्यागिनः कुर्यात्स्नेहात्प्रेतक्रियां द्विजः। स तप्तकृच्छ्रसहितं चरेच्चान्द्रायणव्रतम्॥ (वसिष्ठस्मृति २३। १४)

२. आत्महत्या करनेवाला मनुष्य साठ हजार वर्षोंतक अन्धतामिस्र नरकमें निवास करता है।

३. भाईका वध करनेसे जिस अत्यन्त घोर नरककी प्राप्ति होती है, उससे भी भयानक नरक स्वयं ही अपनी हत्या करनेसे प्राप्त होता है।

४. आत्महत्यारे लोग घोर नरकोंमें जाते हैं और हजारों नरक-यातनाएँ भोगकर फिर देहाती सूअरोंकी योनिमें जन्म लेते हैं। इसलिये समझदार मनुष्यको कभी भूलकर भी आत्महत्या नहीं करनी चाहिये। आत्महत्यारोंका न तो इस लोकमें और न परलोकमें ही कल्याण होता है।

५. यदि आत्महत्याका प्रयत्न करनेवाला मनुष्य किसी प्रकार बच जाता है अथवा जो संन्यास ग्रहण करके उसे त्याग देता है तो वह

---

२. अतिमानादतिक्रोधात् स्नेहाद्वा यदि वा भयात्। उद्बध्नीयात् स्त्री पुमान् वा गतिरेषा विधीयते॥ पूयशोणितसम्पूर्णे त्वन्धे तमसि मज्जति। षष्टिवर्षसहस्राणि नरकं प्रतिपद्यते॥ (पाराशरस्मृति ४। १-२)

३. हत्वाऽऽत्मानमात्मना प्राप्नुयास्त्वं वधाद् भ्रातुर्नरकं चातिघोरम्॥

(महाभारत, कर्ण० ७०। २८)

४. अन्धन्तमोविशेयुस्ते ये चैवात्महनो जनाः। भुक्त्वा निरयसाहस्रं ते च स्युर्ग्रामसूकराः॥ आत्मघातो न कर्तव्यस्तस्मात् क्वापि विपश्चिता। इहापि च परत्रापि न शुभान्यात्मघातिनाम्॥ (स्कन्दपुराण, काशी० पू० १२। १२-१३)

५. जलाग्न्युद्बन्धनभ्रष्टा प्रव्रज्यानशनच्युताः। विषप्रपतनप्रायशस्त्रघातच्युताश्च ये॥

सर्वे ते प्रत्यवसिताः सर्वलोकबहिष्कृताः। चान्द्रायणेन शुध्यन्ति तप्तकृच्छ्रद्वयेन वा॥ (यमस्मृति २-३)

जलाद्युद्बन्धनभ्रष्टाः प्रव्रज्यानाशकच्युताः। विषप्रपतनप्रायशस्त्रघातहताश्च ये॥ नवैते प्रत्यवसिताः सर्वलोकबहिष्कृताः। चान्द्रायणेन शुध्यन्ति तप्तकृच्छ्रद्वयेन वा॥ (लघुयमस्मृति २२-२३)

'प्रत्यवसित' कहलाता है। ऐसा मनुष्य सभीके द्वारा बहिष्कृत होता है। उसकी शुद्धि चान्द्रायणव्रत अथवा दो तप्तकृच्छ्र-व्रत करनेसे होती है।

६. जो पुरुष या स्त्री काम या क्रोधके वशीभूत होकर, फाँसी लगाकर, शस्त्रके द्वारा या विष लेकर आत्महत्या करे, उसका शव चाण्डाल रस्सीसे बाँधकर राजमार्गसे घसीटता हुआ ले जाय। ऐसे व्यक्तियोंके लिये दाह-संस्कार और तिलाञ्जलि आदि संस्कार वर्जित हैं। ऐसे व्यक्तिका कोई बन्धु दाहादि संस्कार (प्रेतकार्य) करता है तो मरनेके बाद उसको भी वही गति प्राप्त होती है और इस लोकमें उसे जातिच्युत कर दिया जाता है।

जलाग्न्युद्बन्धनभ्रष्टाः प्रव्रज्यानाशकच्युताः। विषप्रपतनध्वस्ताः शस्त्रघातहताश्च ये॥ न चैते प्रत्यवसिताः सर्वलोकबहिष्कृताः। चान्द्रायणेन शुद्ध्यन्ति तप्तकृच्छ्रद्वयेन वा॥ (नारदपुराण, पूर्व० १४। २१-२२)

६. रज्जुशस्त्रविषैर्वापि कामक्रोधवशेन यः। घातयेत्स्वयमात्मानं स्त्री वा पापेन मोहिता॥ रज्जुना राजमार्गे तां चण्डालेनापकर्षयेत्। न श्मशानविधिस्तेषां न सम्बन्धिक्रियास्तथा॥ बन्धुस्तेषां तु यः कुर्यात्प्रेतकार्यक्रियाविधिम्। तद्गतिं स चरेत्पश्चात्स्वजनाद्वा प्रमुच्यते॥ (कौटिल्य-अर्थशास्त्र ४। ७)

गर्भपातका पाप

१. ब्रह्महत्यासे जो पाप लगता है, उससे दुगुना पाप गर्भपात करनेसे लगता है। इस गर्भपातरूपी महापापका कोई प्रायश्चित्त भी नहीं है, इसमें तो उस स्त्रीका त्याग कर देनेका ही विधान है।

२. गर्भपात करनेवालेका देखा हुआ अन्न नहीं खाना चाहिये। उसे खानेसे पाप लगता है।

३. जो स्त्री गर्भपात कराये, उससे कभी बातचीत नहीं करनी चाहिये।

४. स्त्रियोंमें जो पतिकी हत्या करनेवाली, रजस्वला, परपुरुषसे सम्बन्ध रखनेवाली, सूतिका, गर्भपात करनेवाली, कृतघ्न और क्रोधिनी हो, उसे कभी नमस्कार नहीं करना चाहिये।

---

१. यत्पापं ब्रह्महत्याया द्विगुणं गर्भपातने। प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति तस्यास्त्यागो विधीयते॥ (पाराशरस्मृति ४। २०)

गर्भभर्तृवधे तासां तथा महति पातके॥ सुरापी व्याधिता द्वेष्ट्री विहर्त्तव्या प्रियंवदा। (गरुड़पुराण, आचार० ९५। २०-२१)

गर्भत्यागो भर्तृनिन्दा स्त्रीणां पतनकारणम्। एष ग्रहान्तिके दोषः तस्मात्तां दूरतस्त्यजेत्॥ (गरुड़पुराण, आचार० १०५। ४७)

२. 'भ्रूणघ्नावेक्षितं चैव' (मनुस्मृति ४। २०८; अग्निपुराण १७३। ३३)

'अन्नादे भ्रूणहा मार्ष्टि' (मनुस्मृति ८। ३१७)

'भ्रूणघ्नप्रेक्षितम्' (गौतमस्मृति १७)। भ्रूणघ्नाऽवेक्षितम्। (गौतमधर्मसूत्र २। ८। ११)

३. गर्भपातं च या कुर्यान्न तां सम्भाषयेत्क्वचित्॥ (पाराशरस्मृति ४। १९)

४. भर्तृघ्नीं पुष्पिणीं जारां सूतिकां गर्भपातिनीम्॥ कृतघ्नीं च तथा चण्डीं कदाचिन्नाभिवादयेत्। (नारदपुराण, पूर्व० २५। ४०-४१)

५. श्रेष्ठ पुरुषोंने ब्रह्महत्या आदि पापोंका प्रायश्चित्त बताया है, पाखण्डी और परनिन्दकका भी उद्धार होता है; किन्तु जो गर्भके बालककी हत्या करता है, उसके उद्धारका कोई उपाय नहीं है।

६. भ्रूणहत्या करनेवाले रोध (श्वासोच्छ्वासको रोकनेवाला), शुनीमुख, रौरव आदि नरकोंमें जाते हैं।

७. गर्भकी हत्या करनेवाला कुम्भीपाक नरकमें गिरता है। फिर गीध, सूअर, कौआ और सर्प होता है। फिर विष्ठाका कीड़ा होता है। फिर बैल होनेके बाद कोढ़ी मनुष्य होता है।

---

५. ब्रह्महत्यादिपापानां प्रोक्ता निष्कृतिरुत्तमैः। दम्भिनो निन्दकस्यापि भ्रूणघ्नस्य न निष्कृतिः॥ (नारदपुराण, पूर्व० ७। ५३)

६. गर्भघ्नश्च महापापी सम्प्राप्नोति शुनीमुखम्॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण० ८५। ६३)

भ्रूणहा पुरहन्ता च गोघ्नश्च मुनिसत्तम। यान्ति ते नरकं रोधं यश्चोच्छ्वासनिरोधकः॥

(विष्णुपुराण २। ६। ८)

भ्रूणहा पुरहन्ता च गोघ्नश्च मुनिसत्तमाः। यान्ति ते रौरवं घोर यश्चोच्छ्वासनिरोधकः॥

(ब्रह्मपुराण २२। ८)

७. भिक्षुहत्यां महत्पापी भ्रूणहत्यां च भारते। कुम्भीपाके वसेत् सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ गृध्रो जन्मसहस्राणि शतजन्मानि सूकरः। काकश्च सप्तजन्मानि सर्पश्च सप्तजन्मसु॥ षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः। नानाजन्मसु स वृषस्ततः कुष्ठी दरिद्रकः॥

(देवीभागवत ९। ३४। २४, २७-२८)

८. गर्भपात करनेवालेकी अगले जन्ममें सन्तान नहीं होती।

९. पतिकी हत्या करनेवाली, शराब पीनेवाली, गर्भपात करनेवाली, कुलटा और आत्महत्या करनेवाली स्त्रीके मरनेपर सूतक (मरणाशौच) नहीं लगता। ऐसी स्त्रीके शवका स्पर्श, दाहसंस्कार, श्राद्ध-तर्पण आदि करनेवालेको भी पाप लगता है। ऐसा करनेवालेको तप्तकृच्छ्र, चान्द्रायण आदि प्रायश्चित्त करना चाहिये।

---

८. पूर्वे जनुषि या नारी गर्भघातकरी ह्यभूत्। गर्भपातेन दुःखार्ता साऽत्र जन्मनि जायते॥ (वृद्धसूर्यारुणकर्मविपाक ४७७। १)

वन्ध्येयं या महाभाग पृच्छति स्वं प्रयोजनम्। गर्भपातरता पूर्वे जनुष्यत्र फलं त्विदम्॥ (वृद्धसूर्यारुण० ६५९। १, ८५६। १ आदि)

गर्भपातनपापाढ्या बभूव प्राग्भवेऽण्डज। साऽत्रैव तेन पापेन गर्भस्थैर्य न विन्दति॥ (वृद्धसूर्यारुण० ११८७। १)

९. स्त्रीणां च पत्यादिहन्त्रीणां हीनजातिगामिनीनां गर्भघ्नीनां कुलटानां च पूर्वोक्तात्मघातादिपापयुक्तानां च मृतौ नाशौचम्। तत्र तासां शवानां स्पर्शाश्रुपातवहनदहनान्त्यकर्माणि न कुर्यात्। स्पर्शादिकरणे ज्ञानाज्ञानाभ्यासादि-तारतम्येन कृच्छ्रातिकृच्छ्रसान्तपनचान्द्रायणादिप्रायश्चित्तानि सिन्ध्वादिग्रन्थान्तरतो ज्ञेयानि।

(धर्मसिन्धु, आशौच०)

पाषण्डमाश्रितानां च चरन्तीनां च कामतः। गर्भभर्तृद्रुहां चैव सुरापीनां च योषिताम्॥ (मनुस्मृति ५। ९०)

घरसे बाहर जाते समय

१. सदाचारी विद्वान् पुरुष मांगलिक पदार्थ, पुष्प, रत्न तथा घृतका स्पर्श और पूज्य व्यक्तियोंका अभिवादन किये बिना कभी अपने घरसे बाहर न निकले।

२. घरसे बाहर जानेसे पहले मांगलिक वस्तुओंका स्पर्श करे। दूर्वा, दही, घृत, जलपूर्ण कलश, बछड़ेसहित गाय, बैल, स्वर्ण, मिट्टी, गोबर, पीपल-वृक्ष, स्वस्तिक चिह्न, अक्षत, लाजा और मधु—इनका स्पर्श करे। ब्राह्मणकी कन्या, सूर्य, श्वेत पुष्प, अग्नि तथा चन्दनका दर्शन करे। फिर अपने जातिधर्मका पालन करे।

३. मध्याह्न या आधी रातके समय बाहर प्रस्थान नहीं करना चाहिये।

४. कहाँ जाते हो? रुको, मत जाओ, तुम्हारे वहाँ जानेसे क्या लाभ?—इस प्रकारके अनिष्टसूचक शब्द यात्राके लिये विपत्तिकारक होते हैं। अतः किसीकी यात्राके समय ऐसे शब्द नहीं कहने चाहिये।

---

१. माङ्गल्यपुष्परत्नाज्यपूज्याननभिवाद्य च। न निष्क्रमेद् गृहात्प्राज्ञस्सदाचारपरो नरः॥ (विष्णुपुराण ३। १२। ३१)

'नास्पृष्ट्वा रत्नाज्यपूज्यमङ्गलसुमनसोऽभिनिष्क्रामेत्' (चरकसंहिता, सूत्र० ८। १९)

२. होमं च कृत्वालभनं शुभानां कृत्वा बहिर्निर्गमनं प्रशस्तम्॥ दूर्वादधिसर्पिरथोद-कुम्भं धेनुं सवत्सां वृषभं सुवर्णम्। मृद्गोमयं स्वस्तिकमक्षतानि लाजामधु ब्राह्मणकन्यकां च॥ श्वेतानि पुष्पाण्यथ शोभनानि हुताशनं चन्दनमर्कबिम्बम्। अश्वत्थवृक्षं च समालभेत ततस्तु कुर्यान्निजजातिधर्मम्॥

(वामनपुराण १४। ३५—३७)

३. मध्याह्ने वार्धरात्रे वा गमनं नैव रोचयेत्॥ (महाभारत, अनु० १४५)

४. क्व यासि तिष्ठ मा गच्छ किं ते तत्र गतस्य तु। अन्ये शब्दाश्च येऽनिष्टास्ते विपत्तिकरा अपि॥ (मत्स्यपुराण २४३। १०)

मार्ग-गमन

१. गाय, बैल, देवमन्दिर, चौराहा, ब्राह्मण, संन्यासी, राजा, गुरु, अग्नि, मिट्टीका ढेर, घी, मधु, पीपल-वृक्ष, धर्मात्मा मनुष्य, अवस्था तथा विद्यामें बड़ा मनुष्य, जलसे भरा हुआ घड़ा, दही, सरसों, चिता, देवसम्बन्धी सरोवर या कुण्ड—इन सब वस्तुओंको अपनेसे दाहिने करके जाना चाहिये।

२. पूज्य एवं मांगलिक पदार्थोंको अपनेसे दाहिने करके और अपूज्य एवं अमंगलकारी वस्तुओंको अपनेसे बायें करके चलना चाहिये।

---

१. मृदं गां दैवतं विप्रं घृतं मधु चतुष्पथम्। प्रदक्षिणानि कुर्वीत प्रज्ञातांश्च वनस्पतीन्॥ (मनुस्मृति ४। ३९)

गोगणं दैवतं विप्रं घृतं मधु चतुष्पथम्। प्रदक्षिणं प्रकुर्वीत प्रख्यातांश्च वनस्पतीन्॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। ९०)

देवतायतनं विप्रं धेनुं मधु मृदं तथा। जातिवृद्धं वयोवृद्धं विद्यावृद्धं तथैव च॥

अश्वत्थं चैत्यवृक्षं च गुरुं जलभृतं घटम्। सिद्धान्नं दधि सिद्धार्थं गच्छन्कुर्यात् प्रदक्षिणम्॥ (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ५३-५४)

शुचिं देशमनड्वाहं देवगोष्ठं चतुष्पथम्। ब्राह्मणं धार्मिकं चैत्यं नित्यं कुर्यात् प्रदक्षिणम्॥ (महाभारत, शान्ति० १९३। ८)

अपसव्यं न गच्छेच्च देवागारचतुष्पथान्। माङ्गल्यपूज्यांश्च तथा विपरीतान्न दक्षिणम्॥ (विष्णुपुराण ३। १२। २६)

नापसव्यं व्रजेद्विप्र गोश्वत्थानलपर्वतान्॥ चतुष्पथं चैत्यवृक्षं देवखातं नृपं तथा।

(नारदपुराण, पूर्व० २६। २६-२७)

चतुष्पथं चैत्यतरुं देवागारं तथा यतिम्॥ विद्याधिकं गुरुं वृद्धं कुर्यादेतान्प्रदक्षिणाम्।

(स्कन्दपुराण, मा० कौ० ४१। १२७-१२८)

प्रशस्तमङ्गल्यदेवतायतनचतुष्पदं प्रदक्षिणमावर्तेत। (गौतमधर्मसूत्र १। ९। ६६)

२. मङ्गल्यानि च सर्वाणि पथि कुर्यात्प्रदक्षिणम्॥ अमङ्गल्यानि वामानि कर्तव्यानि विजानता। (विष्णुधर्मोत्तर० २। ८९। १०-११)

'न पूज्यमङ्गलान्यपसव्यं गच्छेन्नेतराण्यनुदक्षिणम्'

(चरकसंहिता, सूत्र० ८। १९)

३. इस संसारमें आठ मंगल हैं—ब्राह्मण, गौ, अग्नि, स्वर्ण, घृत, सूर्य, जल और राजा। इनका सदैव दर्शन, नमस्कार एवं पूजन करना चाहिये और इन्हें अपने दाहिने करके ही चलना चाहिये।

४. अग्नि और शिवलिंग, सूर्य और चन्द्रमाकी प्रतिमा, भगवान् शंकर और नन्दिकेश्वर वृषभ, ब्राह्मण और अग्नि, पति और पत्नी, स्वामी और स्वामिनी, गाय और ब्राह्मण, घोड़ा और साँड़—इन दोनोंके बीचसे होकर नहीं निकलना चाहिये। दो अग्नि और दो ब्राह्मणोंके बीचसे भी नहीं निकलना चाहिये। इनके बीचसे जानेवाला मनुष्य पापका भागी होता है।

५. परस्पर बातचीत करते हुए दो व्यक्तियोंके बीचसे और दो पूज्य पुरुषोंके बीचसे होकर नहीं निकलना चाहिये।

---

३. लोकेऽस्मिन् मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौर्हुताशनः। हिरण्यं सर्पिरादित्य आपो राजा तथाष्टमः॥ एतानि सततं पश्येन्नमस्येदर्चयेच्च तान्। प्रदक्षिणं च कुर्वीत तथाह्यायुर्न हीयते॥ (नारदीयमनुस्मृति १८।५१-५२)

लोकेऽस्मिन्.............................एतानि सततं पश्येदर्चयेच्च प्रदक्षिणम्॥ (गरुड़पुराण, आचार० २०५।७४-७५)

४. अन्तरेण न गच्छेत द्वयोर्ज्वलनलिङ्गयोः। नाग्न्योर्न विप्रयोश्चैव न दम्पत्योर्नृपोत्तम॥ न सूर्यव्योमयोर्नैव हरस्य वृषभस्य च। एतेषामन्तरं कुर्वन्यतः पापमवाप्नुयात्॥ (स्कन्दपुराण, मा० कौ० ४१।१४२-१४३)

गोविप्रावग्निविप्रौ च विप्रौ द्वौ दम्पती तथा। तयोर्मध्ये न गच्छेत स्वर्गस्थोऽपि पतेद् ध्रुवम्॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१।९१)

अग्निं ब्राह्मणं चाऽन्तरेण नाऽतिक्रामेत्॥ (आपस्तम्बधर्मसूत्र २।५।१२।६)

नाग्निं ब्राह्मणं चान्तरेण व्यपेयात्॥ (वसिष्ठस्मृति १२।२८)

विप्रयोर्विप्रवह्न्योश्च दम्पत्योः स्वामिनोस्तथा। अन्तरेण न गन्तव्यं हयस्य वृषभस्य च॥ (गरुड़पुराण, आचार० ११४।४५)

५. न मध्याद् गमनं भाषाशालिनोः स्थितयोरपि॥ (शुक्रनीति ३।१०३)

'न मध्ये पूज्ययोर्यायात्' (अग्निपुराण १५५।२१)

६. अग्नि, गौ, गुरु, ब्राह्मण, झूला, दम्पती—इनके बीचमेंसे नहीं निकलना चाहिये।

७. ब्राह्मण, गौ, राजा, रोगी मनुष्य, भारसे दबा हुआ मनुष्य, वृद्ध, गर्भवती स्त्री, अत्यन्त दुर्बल मनुष्य, नेत्रहीन, वाहनपर चढ़ा हुआ, गुरुजन, बलवान्, व्रतधारी, शव, माननीय व्यक्ति—ये यदि सामनेसे आते हों तो स्वयं किनारे हटकर इन्हें जानेका मार्ग देना चाहिये।

८. रथ (गाड़ी)-पर बैठे हुए, नब्बे वर्षसे अधिक आयुवाले (वृद्ध), रोगी, बोझ उठाये हुए, स्त्री, स्नातक (जिसका समावर्तन-संस्कार हो गया हो), राजा और दूल्हा—ये यदि सामनेसे आते हों तो इन्हें मार्ग

---

६. नाग्निगोब्राह्मणादीनामन्तरेण व्रजेत् क्वचित्॥ (कूर्मपुराण, उ० १६।८९)

नाग्निगोगुरुब्राह्मणप्रेङ्खादम्पत्यन्तरेण यायात्। (सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४।९२)

प्रेङ्खयोरन्तरेण न गच्छेत्। (बौधायनधर्मसूत्र २।३।६।१४)

७. पन्था देयो ब्राह्मणाय गवे राज्ञे ह्यचक्षुषे। वृद्धाय भारतप्ताय गर्भिण्यै दुर्बलाय च॥ (बौधायनस्मृति २।३।५७); (बौधायनधर्मसूत्र २।३।६।३०)

पन्था देयो ब्राह्मणाय गोभ्यो राजभ्य एव च। रोगिणे भारतप्ताय गुर्विण्यै दुर्बलाय च॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१।१००)

पन्था देयो ब्राह्मणाय स्त्रियै राज्ञे ह्यचक्षुषे। वृद्धाय भारभुग्नाय रोगिणे दुर्बलाय च॥ (कूर्मपुराण, उ० १२।५१; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५१।५४-५५)

मार्गं गुरुभ्यो बलिने व्याधिताय शवाय च। राज्ञे श्रेष्ठाय व्रतिने यानगाय समुत्सृजेत्॥ (शुक्रनीति ३।१४०)

पन्था देयो ब्राह्मणाय गोभ्यो राजभ्य एव च॥ वृद्धाय भारतप्ताय गर्भिण्यै दुर्बलाय च। (महाभारत, अनु० १०४।२५-२६)

८. चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियाः। स्नातकस्य च राज्ञश्च पन्था देयो वरस्य च॥ तेषां तु समवेतानां मान्यौ स्नातकपार्थिवौ। राजस्नातकयोश्चैव स्नातको नृपमानभाक्॥ (मनुस्मृति २।१३८-१३९)

चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियाः। स्नातकस्य तु राज्ञश्च पन्था

देना चाहिये। इन सबमें स्नातक और राजा पहले मार्ग देनेयोग्य हैं और इन दोनोंमें भी स्नातक विशेष मान्य है।

९. चलते हुए पढ़ना अथवा किसी वस्तुको खाना नहीं चाहिये।

१०. शकट (बैलगाड़ी आदि)-से पाँच हाथ, घोड़ेसे दस हाथ, हाथीसे सौ हाथ और बैलसे दस हाथकी दूरीपर रहना चाहिये। परन्तु दुष्ट पुरुषका स्थान ही छोड़ देना चाहिये।

११. मार्गमें कभी अकेला न चले।*

देयो वरस्य च॥ एषां समागमे तात पूज्यौ स्नातकपार्थिवौ। आभ्यां समागमे राजन् स्नातको नृपमानभाक्॥ (भविष्यपुराण, ब्राह्म० ४। ७२-७३)

वृद्धभारिनृपस्नातस्त्रीरोगिवरचक्रिणाम्। पन्था देयो नृपस्तेषां मान्यः स्नातस्तु भूपतेः॥ (याज्ञवल्क्यस्मृति १। ११७)

९. 'न गच्छंस्तु पठेद्वापि' (पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ६६)

'खादन्न गच्छेदध्वानम्' (शुक्रनीति ३। १४३)

स्वापेऽध्वनि तथा भुञ्जन्स्वाध्यायं च विवर्जयेत्॥ (ब्रह्मपुराण २२१। ७०)

१०. शकटात्पञ्चहस्तं तु दशहस्तं तु वाजिनः। दूरतः शतहस्तं च तिष्ठेन्नागाद् वृषाद्दश॥ (शुक्रनीति ३। १४१)

शकटं पञ्चहस्तेन दशहस्तेन वाजिनम्। हस्ती शतहस्तेन देशत्यागेन दुर्जनम्॥ (चाणक्यनीति ७। ७)

११. 'नैकः प्रपद्येताध्वानम्' (मनुस्मृति ४। ६०)

'नैकोऽध्वानं व्रजेत्' (बौधायनस्मृति २। ३। ४८); (बौधायनधर्मसूत्र २। ३। ६। २१)

'नैकोऽध्वानं प्रपद्येत' (कूर्मपुराण, उ० १६। ८८; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ८९)

'पन्थानं नैकलो यायात्' (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ६२)

'नैकः पन्थानमाश्रयेत्' (विष्णुपुराण ३। १२। ७)

---

* यह विधान साधुपर लागू नहीं होता।

१२. जूठे मुँह कहीं नहीं जाना चाहिये।

१३. रास्तेमें शिखा खोलकर नहीं चलना चाहिये।

१४. छाता और दण्ड धारण करके, सिरपर पगड़ी बाँधकर, जूता पहनकर, चार हाथ आगे देखते हुए मार्गपर चलना चाहिये।

१५. यदि रातमें कहीं जाना पड़े तो दण्ड लेकर, सिरपर पगड़ी बाँधकर और किसी सहायकको साथ लेकर जाना चाहिये।

---

१२. 'न चोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत्' (मनुस्मृति ४। ७५, २। ५६)

'नोच्छिष्टः क्वचिदाव्रजेत्' (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ७३)

यक्षभूतपिशाचानां रक्षसां च नृपोत्तम। गम्यो भवति वै विप्र उच्छिष्टो नात्र संशयः॥ (भविष्यपुराण, ब्राह्म० ३। ५१)

१३. 'विसृजेन्न शिखां पथि' (स्कन्दपुराण, ब्राह्म० धर्मा० ६। ६७)

१४. 'छत्री दण्डी मौली सोपानत्को युगमात्रदृग्विचरेत्' (चरकसंहिता, सूत्र० ८। १८)

सातपत्रपदत्राणो विचरेद्युगमात्रदृक्॥ (अष्टांगहृदय, सूत्र० २। ३२)

१५. निशि चात्ययिके कार्ये दण्डी मौली सहायवान्। (अष्टांगहृदय, सूत्र० २। ३३)

विवाह

१. विवाह और विवाद सदा समान व्यक्तियोंसे ही होना चाहिये।

२. बुद्धिमान् मनुष्य श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न कुरूप कन्याके साथ भी विवाह कर ले, पर नीच कुलमें उत्पन्न रूपवती सुलक्षणा कन्याके साथ भी विवाह न करे। विवाह समान कुलमें ही होता है।

३. मातृपक्षसे पाँचवीं पीढ़ीतक और पितृपक्षसे सातवीं पीढ़ीतक जिस कन्याका सम्बन्ध न हो, उसीसे पुरुषको विवाह करना चाहिये।

---

१. विवाहश्च विवादश्च तुल्यशीलैर्नृपेष्यते॥ (विष्णुपुराण ३। १२। २२)

२. वरयेत् कुलजां प्राज्ञो विरूपामपि कन्यकाम्। सुरूपां सुनितम्बाञ्च नाकुलीनां कदाचन॥ (गरुड़पुराण, आचार० ११०। ५)

वरयेत् कुलजां प्राज्ञो विरूपामपि कन्यकाम्। रूपवतीं न नीचस्य विवाहः सदृशे कुले॥ (चाणक्यनीति० १। १४)

३. न सगोत्रां न समानार्षप्रवरां भार्यां विन्देत् मातृतस्त्वा पञ्चमात् पुरुषात् पितृतश्चासप्तमात्। (विष्णुस्मृति २४)

न पञ्चमीं मातृबन्धुभ्यः सप्तमीं पितृबन्धुभ्यः। (वसिष्ठस्मृति ८। २)

पञ्चमात् सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति १। ५३; गरुड़पुराण, आचार० ९५। ३)

विन्देत विधिवद्भार्यामसमानार्षगोत्रजाम्। मातृतः पञ्चमीं चापि पितृतस्त्वथ सप्तमीम्॥ (शंखस्मृति ४। १)

पितृतः सप्तमीमेके मातृतः पञ्चमीमपि। उद्वहेदिति मन्यन्ते कुलधर्मान् समाश्रिताः॥ (बृहत्पराशरस्मृति ६। ३८)

पञ्चमीं मातृपक्षाच्च पितृपक्षाच्च सप्तमीम्। गृहस्थश्चोद्वहेत्कन्यां न्यायेन विधिना नृप॥ (विष्णुपुराण ३। १०। २३)

असगोत्रान्। मातुरसपिण्डान्। (गोभिलगृह्यसूत्र ३। ४। ४-५)

४. यदि अज्ञानवश अपने गोत्रकी अथवा सपिण्ड (मातासे पाँचवीं और पितासे सातवीं पीढ़ी)-की कन्यासे विवाह हो जाय तो उसका भोग त्यागकर माताके समान उसका पालन करना चाहिये। यदि कोई पुरुष उस कन्याके साथ गमन करता है तो उसकी शुद्धि उस व्रत (प्रायश्चित्त)-के करनेसे होती है, जो गुरुपत्नीगमन करनेपर किया जाता है और उससे उत्पन्न हुई सन्तान चाण्डाल होती है।

५. द्विजातियोंके लिये अपनी जातिकी कन्यासे विवाह करना ही श्रेष्ठ माना गया है। अपनी जातिकी स्त्री ही पतिकी शारीरिक सेवा और नित्य किये जानेवाले धर्मकार्यको करे, अन्य जातिकी स्त्री कदापि न करे।*

---

४. सगोत्रादि विवाहे प्रायश्चित्तं स्मृत्यर्थसारे इत्थं सगोत्रसम्बन्धं विवाहविषये स्थिते। यदि कश्चिज्ज्ञानतस्तां कन्या मूढोपगच्छति। गुरुतल्पव्रताच्छुध्येद् गर्भस्तज्जोऽत्यतां व्रजेत्। भोगतस्तां परित्यज्य पालयेज्जननीमिव। (निर्णयसिन्धु ३)

५. सवर्णाग्रे द्विजातीनां प्रशस्ता दारकर्मणि। (मनुस्मृति ३। १२)

भर्तुः शरीरशुश्रूषां धर्मकार्यं च नैत्यकम्। स्वा चैव कुर्यात्सर्वेषां नास्वजातिः कथञ्चन॥ (मनुस्मृति ९। ८६)

सत्यामन्यां सवर्णाया धर्मकार्यं न कारयेत्। (याज्ञवल्क्यस्मृति १। ८८)

---

* 'दैनिक भास्कर' (दिनांक १५. १. १९९७)-के जयपुर-संस्करणमें यह समाचार प्रकाशित हुआ है—'पाश्चात्त्य संस्कृति और आधुनिकताके माहौलमें पारम्परिक रीति-रिवाजोंसे विवाह करना भले ही दकियानूसी माना जाता हो; किन्तु वैज्ञानिक दृष्टिसे स्वास्थ्यके लिये यही उचित है। वैज्ञानिकोंने अन्तरजातीय विवाह-प्रथाको मानव-स्वास्थ्यके लिये हानिकारक बताया है। वैज्ञानिकोंका कहना है कि समुदायसे बाहर शादी करनेवालोंकी सन्तानोंके शरीरपर बाल तथा अँगुलियोंमें नाखून नहीं आनेकी शिकायत हो सकती है और मस्तिष्क-कैंसरकी सम्भावना बढ़ जाती है।

इण्डियन साइंस कांग्रेसके चौरासीवें वार्षिक सम्मेलनमें वैज्ञानिकोंने उक्त रहस्योद्घाटन

किया। वैज्ञानिकों एवं मानवशास्त्रियोंने कहा कि भारतकी पारम्परिक वैवाहिक व्यवस्थासे छेड़छाड़ करनेके जनस्वास्थ्यपर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेंगे। विशेषज्ञोंने सदियों पुरानी वैवाहिक व्यवस्थाओंको विकृत करनेके जैविक दुष्परिणामोंके लिये आगाह किया। कलकत्ता विश्वविद्यालयमें मानव-विज्ञान-विभागमें मानव-जीन विषयके प्रोफेसर डॉ० देवप्रसाद मुखर्जीने अन्तरजातीय विवाहप्रथाके स्वास्थ्यपर प्रतिकूल प्रभावोंकी चर्चा करते हुए कहा कि हमें अपने समुदायके भीतर ही विवाह करनेको प्रोत्साहित करना चाहिये, अन्यथा मानव-जीनकी भयंकर क्षतिके दुष्परिणाम भुगतने होंगे। उन्होंने कहा कि जीन-विकृतिसे शरीरमें सिकल सेन एनीमिया एवं जी-सिक्स पी० डी० की कमी हो जाती है। वैसे सिकल सेल जींस दक्षिण भारतीय कबीलोंमें ही पाये जाते थे; किन्तु अब इनका प्रसार चुनिंदा उत्तरी एवं मध्य भारतके राज्योंतक हो गया है। डॉ० मुखर्जीने कहा कि वैज्ञानिक निष्कर्षोंको रूढ़िवादी कहकर उनकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिये।.........

डॉ० मुखर्जीने बताया कि वैज्ञानिकोंने अन्तरजातीय विवाह करनेवाले कुछ लोगोंके अध्ययनके आधारपर 'प्राइवेट जींस' की पहचान की है। उन्होंने बताया कि भारतमें इस जींससे पीड़ित व्यक्तियोंके शरीरपर बाल तथा अंगुलियोंपर नाखून नहीं पाये जाते हैं। पश्चिम बंगालके चौबीस परगना क्षेत्रमें वैज्ञानिकोंनें अन्तरजातीय विवाह करनेवाले कबीलोंमें मस्तिष्क कैंसरकी शिकायत पायी।

वैज्ञानिकोंका कहना है कि अध्ययनसे पता चलता है कि एक समुदायमें अहानिकारक रहनेवाले जींसके दूसरे समुदायमें अत्यन्त हानिकारक प्रभाव हो सकते हैं।.........

अँग्रेजी समाचार-पत्र THE TIMES OF INDIA (7. 1. 1999) में यह समाचार प्रकाशित हुआ है—CHENNAI: Noble laureate James Watson considered to be the father of DNA technique, has provided a shot in the arm for traditionalists. According to him, gene pools get better in arranged marriages.

Easily the most sought after participant at the 86th Indian Science Congress currently on here, Dr. Watson told The Times of India that he supported Indian research on caste-based DNA.

" Genetics is not the root-cause of racism. Racism existed long before casteism", he said.

He was responding to recent researches in Hyderabad and West Bengal which highlighted patterns of diseases and similar DNA patterns in various caste groups in India. These researches have, however, been opposed by certain quarters who say that they reinforce the 'varna' system with genetic evidence. " I am excited about the history of India and the study of people with biotechnology", said Dr. Watson. He said while comparing genes and DNA to caste groups, " we must recognise that human beings are different. It is interesting to study how similar groups adapt to diseases, how isolated groups have greater probability of similar diseases and what is so unique about such groups."

He said, " There has been so much discrimination against the so called untouchables, but genetics shows that they have differing genes. Let us not have opposition to human diversity in any form."

Dr. Watson said that only time will tell, by studying the uniqueness of each caste group, how each " tackled its particular problems." [डी० एन० ए० तकनीकके जनक कहलानेवाले नोबल-पुरस्कार-विजेता जेम्स वॉटसनने पारम्परिक विवाह-प्रथाका समर्थन करते हुए कहा है कि इससे (अपनी जातिमें विवाह करनेसे) जीन-समूह अधिक लाभप्रद होते हैं।

'इण्डियन साइंस काँग्रेस' के ८६ वें सम्मेलनमें महत्त्वपूर्ण भाग लेनेवाले डॉ० वॉटसनने 'द टाइम्स ऑफ इण्डिया' को बताया कि वे जातिपर आधारित डी०-एन० ए० की भारतीय खोजका समर्थन करते हैं। उन्होंने कहा कि 'जैनेटिक्स (उत्पत्ति-विषयक शास्त्र) वंश-परम्पराका मूल कारण नहीं है। वंश-परम्परा तो जातिवादसे

भी बहुत पहलेसे विद्यमान थी।' उन्होंने हैदराबाद और पश्चिमी बंगालमें हुए उन अनुसन्धानोंका समर्थन किया, जो भारतकी भिन्न-भिन्न जातियोंके समूहकी बीमारियों तथा डी० एन० ए० के नमूनोंपर प्रकाश डालते हैं। इन अनुसन्धानोंका कुछ लोगोंने यह कहकर विरोध किया है कि इससे वर्ण-व्यवस्थाको बल मिलेगा। डॉ० वॉटसनने कहा कि 'मैं भारतके इतिहास एवं भारतीय लोगोंके जीव-विज्ञान-तकनीकके अध्ययनसे प्रभावित हूँ।' उन्होंने जीन्स और डी० एन० ए० की विभिन्न जातियोंसे तुलना करते हुए कहा कि 'हमें यह स्वीकार करना चाहिये कि मनुष्य-जातियाँ अलग-अलग हैं। यह अध्ययन रोचक है कि एक जातिके लोगोंपर बीमारीका प्रभाव नहीं पड़ता, जबकि दूसरी जातिके लोगोंपर उस बीमारीकी अधिक सम्भावना रहती है, न जाने उन जातियोंमें ऐसी क्या विशेषता है!'

उन्होंने कहा कि 'अछूत कहे जानेवाले लोगोंके प्रति बड़ा भेद-भाव रहा है; परन्तु जैनेटिक्स बताता है कि उनमें अलग जीन्स हैं। अतः हमें किसी भी प्रकारसे मनुष्योंकी इस भिन्नताका विरोध नहीं करना चाहिये।'

डॉ० वॉटसनने कहा कि प्रत्येक जातिकी विशेषताओंका अध्ययन करनेपर यह तो समय ही बतायेगा कि प्रत्येक जातिके लोगोंने अपनी विशिष्ट समस्याओंका समाधान कैसे किया।]

६. यदि मनुष्य कामके वशीभूत होकर दूसरा विवाह करना चाहे तो अनुलोम-क्रमसे कर सकता है। तात्पर्य है कि 'ब्राह्मण' ब्राह्मणी, क्षत्रिया तथा वैश्याके साथ, 'क्षत्रिय' क्षत्रिया तथा वैश्याके साथ और 'वैश्य' वैश्याके साथ विवाह कर सकता है। 'शूद्र' शूद्राके साथ ही विवाह कर सकता है।

७. धन देकर खरीदी गयी स्त्री 'पत्नी' नहीं कहलाती, अपितु 'दासी' कहलाती है। ऐसी स्त्रीका तथा उससे उत्पन्न हुए पुत्रका देवकार्य अथवा पितृकार्यमें अधिकार नहीं होता।

८. स्वयंवर-विधिसे जिन कन्याओंका विवाह हुआ है, वे सभी (सीता, दमयन्ती, द्रौपदी आदि) जीवनभर दुःखी रही हैं। अतः स्वयंवर-विधि शास्त्रोक्त होते हुए भी सुखप्रद नहीं है।

९. एक मंगलकार्य करनेके बाद छः मासके भीतर दूसरा मंगलकार्य नहीं करना चाहिये। पुत्रका विवाह करनेके बाद छः मासके भीतर पुत्रीका विवाह नहीं करना चाहिये। एक गर्भसे उत्पन्न दो कन्याओंका

---

६. तिस्रो वर्णानुपूर्व्येण द्वे तथैका यथाक्रमम्। ब्राह्मणक्षत्रियविशां भार्या स्वा शूद्रजन्मनः॥ (याज्ञवल्क्यस्मृति १। ५७)

उद्वहेत् क्षत्रियां विप्रो वैश्यां च क्षत्रियो विशाम्। न तु शूद्रां द्विजः कश्चिन्नाधमः पूर्ववर्णजाम्॥ (व्यासस्मृति २। ११)

तिस्रो ब्राह्मणस्य वर्णानुपूर्व्येण। द्वे राजन्यस्य। एका वैश्यस्य।
(पारस्करगृह्यसूत्र १। ४। ९—११)

७. क्रीता द्रव्येण या नारी सा न पत्नी विधीयते। सा न दैवे न सा पित्र्ये दासीं तां कश्यपोऽब्रवीत्॥
(बौधायनस्मृति १। ११। २०); (बौधायनधर्मसूत्र १। ११। २१। ४)

क्रयक्रीता च या कन्या पत्नी सा न विधीयते। तस्यां जाताः सुतास्तेषां पितृपिण्डं न विद्यते॥ (अत्रिसंहिता ३८७)

८. परन्तु विधिनाऽनेन या याः कन्या विवाहिताः। ताः सर्वा दुःखमापन्ना इतिहासे समीक्षताम्॥ अतः स्वयंवरविधिः सशास्त्रोऽपि न शङ्करः॥ (कौशिकरामायण)

९. पुत्रोद्वाहात्परं पुत्रीविवाहो न ऋतुत्रये। न तयोर्व्रतमुद्वाहान्मङ्गले नान्यमङ्गलम्॥ विवाहश्चैकजन्यानां षण्मासाभ्यन्तरे यदि। असंशयं त्रिभिर्वर्षैस्तत्रैका विधवा

विवाह यदि छः मासके भीतर हो तो तीन वर्षके भीतर उनमेंसे एक विधवा होती है।

१०. अपने पुत्रके साथ जिसकी पुत्रीका विवाह हो, फिर उसके पुत्रके साथ अपनी पुत्रीका विवाह नहीं करना चाहिये। एक ही वरके लिये दो कन्याएँ नहीं देनी चाहिये। दो सहोदर वरोंको दो सहोदरा कन्याएँ नहीं देनी चाहिये। दो सहोदरोंका एक ही दिन विवाह या मुण्डन-कर्म नहीं करना चाहिये।

११. ज्येष्ठ लड़के तथा ज्येष्ठ लड़कीका विवाह परस्पर नहीं करना चाहिये। ज्येष्ठमासमें उत्पन्न सन्तानका विवाह ज्येष्ठमासमें नहीं करना चाहिये।

१२. प्रथम गर्भोत्पन्न लड़के या लड़कीका विवाह उसके जन्म-मास, जन्म-नक्षत्र और जन्म-दिनको नहीं करना चाहिये।

१३. जन्मसे सम वर्षोंमें स्त्रीका तथा विषम वर्षोंमें पुरुषका विवाह शुभ होता है। इसके विपरीत होनेसे दोनोंका नाश होता है।

भवेत्॥ (नारदपुराण, पूर्व० ५६। ५१५-५१६; नारदसंहिता २९। १५०-१५१)

१०. प्रत्युद्वाहो नैव कार्यो नैकस्मै दुहितृद्वयम्। न चैकजन्ययोः पुंसोरेकजन्ये तु कन्यके॥ नैव कदाचिदुद्वाहो नैकदा मुण्डनद्वयम्। (नारदपुराण, पूर्व० ५६। ५१७-५१८)

प्रत्युद्वाहो नैव कार्यो नैकस्मै दुहितुर्द्वयम्। न चैक जन्मनोः पुंसोरेकजन्ये तु कन्यके॥ नैवं कदाचिदुद्वाहो नैकदामुण्डनद्वयम्। (नारदसंहिता २९। १५२-१५३)

११. नैवोद्वाहो ज्येष्ठपुत्रीपुत्रयोश्च परस्परम्। ज्येष्ठमासजयोरेकज्येष्ठे मासे हि नान्यथा॥ (नारदसंहिता २९। ८)

१२. न जन्ममासेजन्मर्क्षे न जन्मदिवसेपि च। नाद्यगर्भसुतस्याथ दुहितुर्वा करग्रहम्॥ (नारदसंहिता २९। ७)

१३. युग्मेब्दे जन्मतः स्त्रीणां प्रीतिदं पाणिपीडनम्। एतत्पुंसामयुग्मेऽब्दे व्यत्यये नाशनं तयोः॥ (नारदसंहिता २९। १)

स्त्रियोंके लिये उपयोगी

१. ओखली, मूसल, झाड़ू, सिल, चक्की और द्वारकी चौखट (दहलीज)—इनके ऊपर स्त्रीको कभी नहीं बैठना चाहिये।

२. पतिकी आयु बढ़नेकी अभिलाषा रखनेवाली पतिव्रता स्त्री हल्दी, रोली, सिन्दूर, काजल आदि; चोली, पान, मांगलिक आभूषण आदि; केशोंको सँवारना, चोटी गूँथना तथा हाथ-कानके आभूषण—इन सबको अपने शरीरसे दूर न करे।

३. जो स्त्री अपने पतिकी आज्ञा लिये बिना ही व्रत-उपवास करती है, वह पतिकी आयु हरती है, जीते-जी दुःख पाती है और मरनेपर नरकमें जाती है।

---

१. नोलूखले न मुसले न वर्द्धन्यां दृषद्यपि। न यन्त्रके न देहल्यां सती च प्रवसेत्क्वचित्॥ (शिवपुराण, रुद्र० पार्वती० ५४। ३८)

नोलूखले ...... सती चोपविशेत्क्वचित्॥ (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ७। ३१)

२. हरिद्रां कुंकुमं चैव सिन्दूरं कज्जलादिकम्। कूर्पासकं च ताम्बूलं माङ्गल्याभरणादिकम्॥ केशसंस्कारकबरीकरकर्णादिभूषणम्। भर्तुरायुष्यमिच्छन्ती दूरयेन्न पतिव्रता॥ (शिवपुराण, रुद्र० पार्वती० ५४। ३४-३५)

३. पत्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत्। आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत्॥ (पाराशरस्मृति ४। १७)

जीवेद्भर्त्तरि या नारी उपोष्य व्रतचारिणी। आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत्॥ (अत्रिसंहिता १३६-१३७)

पत्यौ जीवति या योषिदुपवासव्रतं चरेत्। आयुः सा हरते भर्तुर्नरकं चैव गच्छति॥ (विष्णुस्मृति २५)

कुर्यात्पत्यननुज्ञाता नोपवासव्रतादिकम्। अन्यथा तत्फलं नास्ति परत्र नरकं व्रजेत्॥ (शिवपुराण, रुद्र० पार्वती० ५४। २९)

व्रतोपवासनियमं पतिमुल्लंघ्य याऽचरेत्। आयुष्यं हरते भर्तुर्मृता निरयमृच्छति॥ (शिवपुराण, रुद्र० पार्वती० ५४। ४४; स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ७। ३७)

नारी पत्यननुज्ञाता या व्रतादि समाचरेत्। जीवन्ती दुःखिनी सा स्यान्मृता निरयमृच्छति॥ (स्कन्दपुराण, काशी० उ० ८२। १३९)

४. पतिसे बिना पूछे जो धर्मकार्य किया जाता है, वह पतिकी आयुको क्षीण कर देता है।

५. स्त्रीको चाहिये कि वह धोबिन, कुलटा, अधम और कलहप्रिय स्त्रियोंको कभी अपनी सखी न बनाये।

६. मदिरापान, दुष्टोंका संग, पतिसे अलग रहना, स्वच्छन्द घूमना, अधिक सोना और दूसरेके घरमें निवास करना—ये छः बातें स्त्रियोंको बिगाड़नेवाली हैं।

७. जिस स्त्रीने अपने जीवनमें चार पुरुषोंके साथ समागम कर लिया, उसे वेश्या समझना चाहिये। वह देवताओं और पितरोंके लिये भोजन बनानेकी अधिकारिणी नहीं है।

८. जो स्त्री अपने पतिके लिये वशीकरणका प्रयोग करती है, उसके सारे धर्म व्यर्थ हो जाते हैं और वह दुराचारिणी स्त्री नरकमें ताँबेके भाड़में पन्द्रह युगोंतक जलायी जाती है। पति ही नारीका रक्षक है, पति ही गति है तथा पति ही देवता और गुरु है। जो उसके ऊपर

---

४. अपृष्ट्वा यत्कृतं धर्म्यं भर्तारं तत्क्षयं नयेत्। स्त्रीणां नास्त्यपरो धर्मो भर्तारं प्रोज्झ्य कश्चन॥ (स्कन्दपुराण, वैष्णव० कार्तिक० ४। ७२)

५. न रजक्या न बन्धक्या तथा श्रमणया न च। न च दुर्भगया क्वापि सखित्वं कारयेत्क्वचित्॥ (शिवपुराण, रुद्र० पार्वती० ५४। ३६)

६. पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम्। स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसंदूषणानि षट्॥ (मनुस्मृति ९। १३)..........स्वप्नोऽन्यगृहवासश्च नारीणां दूषणानि षट्॥ (स्कन्दपुराण, काशी० पू० ४०। ८९)

७. नारी वेश्या प्रविज्ञेया चतुष्पुरुषगामिनी। पाके च पितृदेवानामधिकारो न तद्भवेत्॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण० ७५। ६४)

८. कालेन पञ्चतां प्राप्ता गता नरकयातनाम्। ताम्रभ्राष्ट्रे ह्यहं दग्धा युगानि दश पञ्च च॥ (नारदपुराण, उ० १४। ३६)

यान्यापि युवतिर्भूप भर्तुर्वश्यं समाचरेत्। वृथाधर्मा दुराचारा दह्यते ताम्रभ्राष्ट्रके॥

वशीकरणका प्रयोग करती है, वह कैसे सुख पा सकती है। वह सैकड़ों बार पशु-पक्षियोंकी योनिमें जन्म लेती और अन्तमें गलित कोढ़के रोगसे युक्त स्त्री होती है।

९. स्त्रियोंका अपने भाई-बन्धुओंके यहाँ अधिक दिनोंतक रहना उनकी कीर्ति, शील तथा पातिव्रत्य-धर्मका नाश करनेवाला होता है।

१०. पतिका निवास-स्थान धन-वैभवसे रहित हो तो भी पत्नीको वहीं निवास करना चाहिये। उसके लिये पतिकी समीपताको ही सुवर्णमय मेरु पर्वत बताया गया है। स्त्रीके लिये पतिके निवास-स्थानको छोड़कर अपने पिताके घर भी रहना वर्जित है। पिताके स्थान और आश्रयमें आसक्त होनेवाली स्त्री नरकमें डूबती है। वह सब धर्मोंसे रहित होकर सूकर-योनिमें जन्म लेती है।

११. रजोधर्मसे युक्त स्त्रीकी प्रथम दिन चाण्डाली, द्वितीय दिन ब्रह्मघातिनी और तृतीय दिन रजकी (धोबिन) संज्ञा होती है। चौथे दिन वह शुद्ध होती है।

भर्ता नाथो गतिर्भर्ता दैवतं गुरुरेव च। तस्य वश्यं चरेद्या तु सा कथं सुखमाप्नुयात्॥ तिर्यग्योनिशतं याति कृमिकुष्ठसमन्विता। (नारदपुराण, उ० १४। ३९—४१)

९. नारीणां चिरवासो हि बान्धवेषु न रोचते। कीर्तिचारित्रधर्मघ्नस्तस्मान्नयत मा चिरम्॥ (महाभारत, आदि० ७४। १२)

१०. भर्तृस्थाने हि वस्तव्यमृद्धिहीनेऽपि भार्यया। स मेरुः काञ्चनमयः सन्निधाने प्रचक्षते॥ मनोरथो नाम मेरुर्यत्र त्वं रमसे विभो। भर्तृस्थानं परित्यज्य स्वपितुर्वापि वर्जितम्॥ पितृस्थानाश्रयरता नारी तमसि मज्जति। सर्वधर्मविहीनापि नारी भवति सूकरी॥ (नारदपुराण, उत्तर० १३। १७—१९)

११. प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी (ब्रह्मघातकी)। तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति॥ (पाराशरस्मृति ७। २०; अत्रिस्मृति ५। ४९; आंगिरसस्मृति ६; आपस्तम्बस्मृति ७। ४)

१२. पतिके कार्योंके लिये तो रजस्वला स्त्री चौथे दिन स्नान करके शुद्ध होती है, पर देवकार्य और पितृकार्यके लिये वह पाँचवें दिन शुद्ध होती है।

१३. स्त्रियोंके लिये विवाह-संस्कार ही वैदिक संस्कार (यज्ञोपवीत), पति-सेवा ही गुरुकुलवास (वेदाध्ययन) और गृहकार्य ही अग्निहोत्र-कर्म कहा गया है।

१४. जो स्त्री अपने पतिके मनके अनुकूल चलती और सदा उसे सन्तुष्ट रखती है, वह अपने पतिके पुण्यका आधा भाग प्राप्त कर लेती है।

१५. पिता या पिताकी अनुमतिसे भाई जिसके साथ विवाह कर दे, स्त्री जीवनभर उस पतिकी सेवा करे और उसके मरनेपर भी उसका उल्लंघन न करे।

---

१२. शुद्धा भर्तुश्चतुर्थेऽह्नि स्नानेन स्त्री रजस्वला। दैवे कर्मणि पित्र्ये च पञ्चमेऽहनि शुध्यति॥ (शंखस्मृति १६। १७)

स्नाता स्त्री पञ्चमे योग्या दैवे पित्र्ये च कर्मणि। (अग्निपुराण १५६। १३)

शुद्धा भर्तुश्चतुर्थेऽह्नि न शुद्धा देवपैत्रयोः। दैवे कर्मणि पैत्रे च पञ्चमेऽह्नि विशुद्ध्यति॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण, गणपति० २८। ४)

संशुद्धा स्याच्चतुर्थेऽह्नि स्नाता नारी रजस्वला। दैवे कर्मणि पित्र्ये च पञ्चमेऽहनि शुद्ध्यति॥ (स्कन्दपुराण, प्रभास० २०६। ५१)

१३. वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः। पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया॥ (मनुस्मृति २। ६७)

१४. स्वपतेरपि पुण्यस्य योषिदर्धमवाप्नुयात्। चित्तस्यानुव्रता शश्वद्वर्तते तुष्टिकारिणी॥ (पद्मपुराण, उत्तर० ११२। २७)

१५. यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता वानुमते पितुः। तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लङ्घयेत्॥ (मनुस्मृति ५। १५१)

१६. भ्रमण करनेवाले राजा, ब्राह्मण और योगी सर्वत्र आदर पाते हैं, पर भ्रमण करनेवाली स्त्री नष्ट हो जाती है।

१७. स्त्रीको कभी अपने पतिका नाम नहीं लेना चाहिये।

१८. स्त्रीको चाहिये कि वह घरके दरवाजेपर देरतक खड़ी न रहे। दूसरेके घर न जाय। कोई गोपनीय बात जानकर हरेकके सामने उसे प्रकट न करे।

१९. साध्वी स्त्रीको चाहिये कि झाड़ने-बुहारने, लीपने तथा चौक पूरने आदिसे घरको और मनोहर वस्त्राभूषणोंसे अपने शरीरको अलंकृत (सजाकर) रखे। सामग्रियोंको साफ-सुथरी रखे।

२०. पतिकी सेवा करना, उसके अनुकूल रहना, पतिके सम्बन्धियोंको प्रसन्न रखना और सर्वदा पतिके नियमोंकी रक्षा करना—ये पतिव्रता स्त्रियोंके धर्म हैं।

२१. जो लक्ष्मीजीके समान पतिपरायणा होकर अपने पतिकी उसे

---

१६. भ्रमन्सम्पूज्यते राजा भ्रमन्सम्पूज्यते द्विजः। भ्रमन्सम्पूज्यते योगी स्त्री भ्रमन्ती विनश्यति॥ (चाणक्यनीतिदर्पण ६। ४)

१७. पत्युर्नाम न गृह्णीयात् कदाचन पतिव्रता। (शिवपुराण, रुद्र० पार्वती० ५४। १९)

१८. चिरन्तिष्ठेन्न च द्वारे गच्छेन्नैव परालये। आदाय तत्त्वं यत्किञ्चित् कस्मैचिन्नार्पयेत्क्वचित्॥ (शिवपुराण, रुद्र० पार्वती० ५४। २२)

१९. सम्मार्जनोपलेपाभ्यां गृहमण्डलवर्तनैः। स्वयं च मण्डिता नित्यं परिमृष्टपरिच्छदा॥ (श्रीमद्भा० ७। ११। २६)

२०. स्त्रीणां च पतिदेवानां तच्छुश्रूषानुकूलता। तद्बन्धुष्वनुवृत्तिश्च नित्यं तद्व्रतधारणम्॥ (श्रीमद्भा० ७। ११। २५)

२१. या पतिं हरिभावेन भजेच्छ्रीरिव तत्परा। हर्यात्मना हरेर्लोके पत्या श्रीरिव मोदते॥ (श्रीमद्भा० ७। ११। २९)

साक्षात् भगवान्‌का स्वरूप समझकर सेवा करती है, उसके पतिदेव वैकुण्ठलोकमें भगवत्सारूप्यको प्राप्त होते हैं और वह लक्ष्मीजीके समान उनके साथ आनन्दित होती है।

२२. जिसका पुत्र जीवित है, वह नारी पतिके न रहनेपर भी विधवा (असहाय) नहीं कहलाती। विधवा वही कहलाती है, जिसका न पति हो, न पुत्र हो।

२३. स्त्रीपर पति अथवा पुत्रके द्वारा लिये गये ऋणको चुकानेका दायित्व नहीं है। उसपर उसी ऋणको चुकानेका दायित्व है, जो उसने पतिके साथ लिया है और उसे चुकाना स्वीकार किया है।

---

२२. जीवपुत्रा तु या नारी विधवेति न चोच्यते। पतिपुत्रविहीना या विधवेत्युच्यते बुधैः॥ (कपिलस्मृति ५९३)

२३. न स्त्री पतिकृतं दद्यादृणं पुत्रकृतं तथा। अभ्युपेतादृते यद्वा सह पत्या कृतं तथा॥ (नारदीयमनुस्मृति १। १३)

गृहस्थोंके लिये उपयोगी

१. जिस कुलमें स्त्रीसे पति और पतिसे स्त्री सन्तुष्ट रहती है, उस कुलमें अवश्य ही सर्वदा कल्याण (मंगल) होता है।

२. मनुष्यको प्रयत्नपूर्वक स्त्रीकी रक्षा करनी चाहिये। स्त्रीकी रक्षा होनेसे सन्तान, आचरण, कुल, आत्मा और धर्म—इन सबकी रक्षा होती है।

३. राजा प्रजाके, गुरु शिष्यके, पति पत्नीके तथा पिता पुत्रके पुण्य-पापका छठा अंश प्राप्त कर लेता है।

४. जो केवल अपने लिये ही भोजन बनाता है, जो केवल काम-सुखके लिये ही मैथुन करता है और जो केवल आजीविका प्राप्त करनेके लिये ही पढ़ाई करता है, उसका जीवन निष्फल है।

---

१. सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च। यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥ (मनुस्मृति ३। ६०)

यत्र तुष्यति भर्त्रा स्त्री स्त्रिया भर्ता च तुष्यति। तत्र वेश्मनि कल्याणं सम्पद्येत पदे पदे॥ (स्कन्दपुराण, काशी० पू० ४०। ६०)

२. स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च। स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन्हि रक्षति॥ (मनुस्मृति ९। ७)

३. प्रजाभ्यः पुण्यपापानां राजा षष्ठांशमुद्धरेत्। शिष्याद् गुरुः स्त्रियो भर्ता पिता पुत्रात्तथैव च॥ (पद्मपुराण, उत्तर० ११२। २६)

४. आत्मार्थं भोजनं यस्य सुखार्थं यस्य मैथुनम्। वृत्त्यर्थं यस्य चाधीतं निष्फलं तस्य जीवितम्॥ (लघुव्याससंहिता ८१-८२)

आत्मार्थं भोजनं यस्य रत्यर्थं यस्य मैथुनम्।................................ (कूर्मपुराण, उ० १९। १८)

५. जिस घरमें सब बर्तन इधर-उधर बिखरे पड़े हों, बर्तन फूटे हों, आसन फटे हों, स्त्रियाँ मारी-पीटी जाती हों, वह घर पापके कारण दूषित होता है। उस घरकी पूजा देवता और पितर स्वीकार नहीं करते।

६. घरमें फूटे बर्तन और टूटी खाट नहीं रखनी चाहिये। फूटे बर्तनमें कलियुगका निवास होता है और टूटी खाट रहनेसे धनकी हानि होती है।

७. नौकर या पुत्रके सिवाय दूसरेके हाथसे दानादि करनेवाले पुरुषके उस पुण्यफलका छठा अंश दूसरेको मिल जाता है।

८. पुत्रसे भी बढ़कर दौहित्र (दोहता), भानजा और भाईका पालन करना चाहिये और कन्यासे भी बढ़कर भाईकी स्त्री, पुत्रवधू और बहनका पालन करना चाहिये।

९. पिताकी मृत्यु हो जानेपर बड़े भाईको ही पिताके समान समझना चाहिये।

---

५. प्रकीर्णं भाजनं यत्र भिन्नभाण्डमथासनम्। योषितश्चैव हन्यन्ते कश्मलोपहते गृहे॥ देवताः पितरश्चैव उत्सवे पर्वणीषु वा। निराशाः प्रतिगच्छन्ति कश्मलोपहताद् गृहात्॥ (महाभारत, अनु० १२७। ६-७)

६. भिन्नभाण्डे कलिं प्राहुः खट्वायां तु धनक्षयः। (महाभारत, अनु० १२७। १६)

७. परहस्तेन दानादि कुर्वतः पुण्यकर्मणि। विना भृतकपुत्राभ्यां कर्त्ता षष्ठांशमुद्धरेत्॥ (पद्मपुराण, उत्तर० ११२। २८)

८. पुत्राधिकाश्च दौहित्रा भागिनेयाश्च भ्रातरः॥ कन्याधिका पालनीया भ्रातृभार्या स्नुषा स्वसा। (शुक्रनीति ३। १६८-१६९)

९. ज्येष्ठो भ्राता पितृसमो मृते पितरि भारत॥ (महाभारत, अनु० १०५। १६)

ज्येष्ठः पितृसमो भ्राता मृते पितरि शौनक। सर्वेषां स पिता हि स्यात् सर्वेषामनुपालकः॥ (गरुड़पुराण, आचार० ११४। ६४)

१०. एक माता-पितासे उत्पन्न सहोदर भाइयोंमेंसे यदि एक भाईको पुत्र हो तो उसीसे अन्य सभी (पुत्रहीन भी) भाई पुत्रवान् होते हैं। ऐसे ही एक पतिवाली स्त्रियोंमेंसे यदि एक स्त्रीको पुत्र उत्पन्न हो जाय तो अन्य सभी (पुत्रहीना भी) स्त्रियाँ उसी पुत्रसे पुत्रवती होती हैं।

११. पुरुषकी बायीं जाँघपर पत्नीके बैठनेका स्थान और दायीं जाँघपर पुत्र, पुत्री तथा पुत्रवधूके बैठनेका स्थान है।

१२. बालक या स्त्रीको अत्यन्त लाड़-प्यार करना या अधिक ताड़ना करना उचित नहीं है, प्रत्युत उनको क्रमशः विद्याभ्यास तथा गृहकार्योंमें नियुक्त करना चाहिये।

१३. जो दूसरोंकी धरोहर हड़प लेते, रत्नोंकी चोरी करते तथा पितरोंका श्राद्धकर्म छोड़ देते हैं, उनके वंशकी वृद्धि नहीं होती।

---

१०. भ्रातृणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्भवेत्। सर्वांस्तांस्तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत्॥ सर्वासामेकपत्नीनामेका चेत्पुत्रिणी भवेत्। सर्वास्तास्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्मनुः॥ (मनुस्मृति ९। १८२-१८३)

बहूनामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्नरः। सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रवन्त इति श्रुतिः॥ बह्वीनामेकपत्नीनामेका पुत्रवती यदि। सर्वास्तास्तेन पुत्रेण पुत्रवत्य इति श्रुतिः॥ (वसिष्ठस्मृति १७। १०-११)

बहूनामपि बन्धूनामेकश्चेत् पुत्रवान् भवेत्। सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत्॥ बहूनामेकभार्याणामेका चेत् पुत्रिणी भवेत्। सर्वास्तास्तेन पुत्रेण पुत्रवत्य इति स्थिति॥ (दाल्भ्यस्मृति ६६-६७)

११. प्राप्य दक्षिणमूरुं मे त्वमाश्लिष्टा वराङ्गने। अपत्यानां स्नुषाणां च भीरु विद्ध्येतदासनम्॥ सव्योरुः कामिनीभोग्यस्त्वया स च विवर्जितः। तस्मादहं नाचरिष्ये त्वयि कामं वराङ्गने॥ (महाभारत, आदि० ९७। ९-१०)

१२. न बालं न स्त्रियं चातिलालयेत्ताऽयेन्न च॥ विद्याभ्यासे गृहकृत्ये तावुभौ योजयेत्क्रमात्। (शुक्रनीति ३। ९८-९९)

१३. ये न्यासाद्युपहर्तारो रत्नापह्नवकारकाः। श्राद्धकर्मविहीनाश्च तेषां वंशो न वर्धते॥ (ब्रह्मपुराण १२४। १३०)

१४. अपनी प्रिया स्त्रीके कहनेमात्रसे ही माता, पुत्रवधू, भाईकी पत्नी या सौतके अपराधको बिना स्वयं अनुभव किये सत्य नहीं समझना चाहिये।

१५. अकर्मण्य, बहुत खानेवाले, सब लोगोंसे वैर करनेवाले, अधिक मायावी, क्रूर, देश-कालका ज्ञान न रखनेवाले और निन्दित वेश धारण करनेवाले मनुष्यको कभी अपने घरमें न ठहरने दे।

१६. दूसरोंके घर बिना बुलाये नहीं जाना चाहिये। बिना बुलाये दूसरोंके घर जानेपर इन्द्र भी लघुताको प्राप्त होता है।

१७. परस्त्रीका तो कहना ही क्या है, अपनी बहन, बेटी अथवा माताके साथ भी कभी एकान्तमें नहीं बैठना (रहना) चाहिये। कारण कि बलवान् इन्द्रिय-समूह विद्वान्‌को भी अपने वशमें कर लेता है।

---

१४. न प्रियाकथितं सम्यङ्मन्येतानुभवं विना॥ अपराधं मातृस्नुषा भ्रातृपत्नी-सपत्निजम्। (शुक्रनीति ३। १६५-१६६)

१५. अकर्मशीलं च महाशनं च लोकद्विष्टं बहुमायं नृशंसम्। अदेशकालज्ञमनिष्टवेषमेतान् गृहे न प्रतिवासयेत॥ (महाभारत, उद्योग० ३७। ३५)

१६. अनाहूताश्च ये सुभ्रु गच्छन्ति परमन्दिरम्। अपमानं प्राप्नुवन्ति मरणादधिकं ततः॥ परेषां मन्दिरं प्राप्त इन्द्रोऽपि लघुतां व्रजेत्। तस्मात्त्वया न गन्तव्यं दक्षस्य यजनं शुभे॥ (स्कन्दपुराण, मा० के० २। ५८-५९)

१७. मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्। बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥ (मनुस्मृति २। २१५)

नैकासने तथा स्थेयं सोदर्या परजायया। तथैव स्यान्न मातुश्च तथा स्वदुहितुस्त्वपि॥ (वामनपुराण १४। ४६)

स्वस्रा दुहित्रा मात्रा वा नैकान्तासनमाचरेत्॥ दुर्जयो हीन्द्रियग्रामो मुह्यते पण्डितोऽपि सन्। (स्कन्दपुराण, मा० कौ० ४१। १५०-१५१)

१८. तेजस्वी सन्तान चाहनेवाले पुरुषको स्त्रीके साथ (एक पात्रमें) भोजन नहीं करना चाहिये। स्त्रीको भोजन करते हुए, छींकते हुए, जम्हाई लेते हुए तथा आसनपर सुखपूर्वक बैठे रहनेकी अवस्थामें नहीं देखना चाहिये।

१९. अपना हित चाहनेवाला मनुष्य घरसे दूर जाकर मल-मूत्रका त्याग करे, दूर ही पैरोंके धोवनका जल फेंके और दूरपर ही जूठन फेंके। पैर धोया हुआ और जूठा जल घरके आँगनमें न डाले।

---

१८. नाश्नीयाद्भार्यया सार्धं नैनामीक्षेत चाश्नतीम्। क्षुवतीं जृम्भमाणां वा न चासीनां यथासुखम्॥ (मनुस्मृति ४। ४३)

भार्यया सह नाश्नीयादवीर्यवदपत्यं भवतीति वाजसनेयके विज्ञायते। (वसिष्ठस्मृति १२। २९)

'नाश्नीयात्सह भार्यया' (पद्मपुराण, पाताल० ९। ५४)

'नाश्नन्तीं स्त्रियमीक्षेत तेजःकामो नरोत्तमः।' (पद्मपुराण, पाताल० ९। ५५)

सह स्त्रियाथ शयनं सह भोज्यं च वर्जयेत्॥ (महाभारत, शान्ति० १९३। २४)

नाश्नीयात् भार्यया सार्धं नैनामीक्षेत चाश्नतीम्। क्षुवन्तीं जृम्भमाणां वा नासनस्थां यथासुखम्॥ (कूर्मपुराण, उ० १६। ४९; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ४८-४९)

१९. दूरादावसथान्मूत्रं दूरात्पादावसेचनम्। उच्छिष्टान्ननिषेकं च दूरादेव समाचरेत्॥ (मनुस्मृति ४। १५१)

दूरादुच्छिष्टविण्मूत्रपादाम्भासि समुत्सृजेत्। (याज्ञवल्क्यस्मृति १। १५४)

दूरादावसथान्मूत्रं दूरात् पादावसेचनम्। उच्छिष्टोत्सर्जनं चैव दूरे कार्यं हितैषिणा॥ (महाभारत, अनु० १०४। ८२)

दूरादावसथान्मूत्रं पुरीषं च विसर्जयेत्॥ पादावनेजनोच्छिष्टे प्रक्षिपेन्न गृहाङ्गणे। (विष्णुपुराण ३। ११। ९-१०)

पादधौतोदकं मूत्रमुच्छिष्टान्युदकानि च। निष्ठीवनं च श्लेष्माणं गृहाद्दूरं विनिःक्षिपेत्॥ (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ९०)

दूरादुच्छिष्टविण्मूत्रपादान्तानां समुत्सृजेत्॥ (गरुड़पुराण, आचार० ९६। ५५)

२०. अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा और सूर्यकी संक्रान्ति—इन दिनोंमें स्त्रीसंग करनेवालेको नीच योनि तथा नरकोंकी प्राप्ति होती है।

२१. दिनमें और दोनों सन्ध्याओंके समय जो स्त्री-सहवास करता है, वह कई जन्मोंतक रोगी और दरिद्र होता है।

२२. दिनमें स्त्री-समागम पुरुषके लिये बड़ा भारी आयुका नाशक माना गया है।

२३. रजस्वला स्त्रीके साथ सम्भोग करनेसे पुरुषकी बुद्धि, तेज, बल, नेत्रशक्ति और आयु क्षीण हो जाती है।

---

२०. अमावस्यां पौर्णमास्यां चतुर्दश्यां च सर्वशः ॥ अष्टम्यां सर्वपक्षाणां ब्रह्मचारी सदा भवेत्। (महाभारत, अनु० १०४। २९-३०)

कुहूपूर्णेन्दुसंक्रान्त्यां चतुर्दश्यष्टमीषु च। नरश्चाण्डालयोनिः स्यात् स्त्रीतैलमांससेवनात्॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण० ७५। ६०)

चतुर्दश्यष्टमी चैव तथामा चाथ पूर्णिमा। पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रान्तिरेव च॥ तैलस्त्रीमांससम्भोगी सर्वेष्वेतेषु वै पुमान्। विण्मूत्रभोजनं नाम प्रयाति नरकं मृतः॥ (विष्णुपुराण ३। ११। ११८-११९)

चतुर्दश्यां तथाष्टम्यां पञ्चदश्यां च पर्वसु। तैलाभ्यङ्गं तथा भोगं योषितश्च विवर्जयेत्॥ (मार्कण्डेयपुराण ३४। ४४; ब्रह्मपुराण २२१। ४२)

२१. दिवसे सन्ध्ययोर्निद्रां स्त्रीसम्भोगं करोति यः। सप्तजन्म भवेद्रोगी दरिद्रः सप्तजन्मसु॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण० ७५। ८०)

२२. 'प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते' (प्रश्नोपनिषद् १। १३)

दिवाभिगमनं पुंसामनायुष्यं परं मतम्॥

(स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ३५)

२३. रजसाभिप्लुतां नारीं नरस्य ह्युपगच्छतः। प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रहीयते॥ (मनुस्मृति ४। ४१)

रजस्वलां प्रासवतो नरस्यानियतात्मन॥ दृष्टयायुस्तेजसां हानिरधर्मश्च ततो भवेत्। (सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। १२१-१२२)

२४. जो पुरुष रजस्वला स्त्रीके साथ सहवास करता है, उसे ब्रह्महत्या लगती है तथा वह नरकोंमें जाता है।

२५. चैत्यवृक्षके नीचे, आँगनमें, तीर्थमें, पशुशालामें, चौराहेपर, श्मशानमें, उपवनमें अथवा जलमें कभी मैथुन नहीं करना चाहिये।

२६. पर्वदिनोंमें (अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा, संक्रान्तिमें) स्त्रीसंग करनेसे धनकी हानि होती है। दिनमें स्त्रीसंग करनेसे पाप होता है। पृथ्वीपर स्त्रीसंग करनेसे रोग होते हैं। जलाशयमें स्त्रीसंग करनेसे अमंगल होता है।

२७. गृहस्थ व्यक्तिको माता-पिता, अतिथि और धनी पुरुषके साथ विवाद नहीं करना चाहिये।

२८. जिसके पुत्र हो, वह अपने घरमें पुत्रयुक्ता कन्या और पतियुक्ता बहनको लाकर न बसाये। हाँ, यदि कन्या या बहन अनाथ हों तो अवश्य लाकर उनका पालन करना चाहिये।

२९. बूढ़े, बच्चे, रोगी और दुर्बल पशुओंका अपने बान्धवोंके समान पालन-पोषण करना चाहिये।

---

२४. रजस्वलासु नारीषु यो वै मैथुनमाचरेत्। तमेषा यास्यति क्षिप्रं व्येतु वो मानसो ज्वरः॥ (महाभारत, शान्ति० २८२। ४६)

रजःस्वला स्त्रीगमनमेतन्नरककारणम्॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्म० २७। ४०)

२५. चैत्यचत्वरतीर्थेषु नैव गोष्ठे चतुष्पथे। नैव श्मशानोपवने सलिलेषु महीपते॥ (विष्णुपुराण ३। ११। १२२)। 'नाप्सु मैथुनमाचरेत्' (कूर्मपुराण, उ० १६। ७५; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ७६)

२६. पर्वस्वभिगमोऽधन्यो दिवा पापप्रदो नृप। भुवि रोगावहो नृणामप्रशस्तो जलाशये॥ (विष्णुपुराण ३। ११। १२४)

२७. मातापित्रातिथीत्युच्चैर्विवादं नाचरेद् गृही॥ (गरुड़पुराण, आचार० ९६। ५७)

२८. सपुत्रस्तु गृहे कन्यां सपुत्रां वासयेन्नहि॥ सभर्तृकां च भगिनीमनाथे ते तु पालयेत्। (शुक्रनीति ३। १०५-१०६)

२९. वृद्धबालव्याधित क्षीणान् पशून् बान्धवानिव पोषयेत्॥

(नीतिवाक्यामृतम् ८। ९)

३०. इच्छानुसार अपने, पत्नीके या पुत्रके भोजनमें विघ्न पड़नेपर भी सेवकके भोजनमें विघ्न नहीं होने देना चाहिये।

३१. गृहस्थ पुरुषको घरमें अतिथियोंके लिये, पोष्यवर्गके लिये, स्वजनोंके लिये और नौकरोंके लिये एक-सा भोजन बनवाना श्रेष्ठ माना गया है।

३२. अतिथि, सुवासिनी (विवाहिता कन्या), कुमारी कन्या, गर्भिणी स्त्री तथा रोगी, वृद्ध एवं बालकोंको पहले भोजन करानेके बाद ही गृहस्थ पुरुषको स्वयं भोजन करना चाहिये।

३३. संन्यासी और ब्रह्मचारी—ये दोनों पके हुए अन्नके अधिकारी हैं। इन दोनोंको अन्न न देकर स्वयं भोजन कर लेनेपर चान्द्रायण-व्रत करना चाहिये।

---

३०. काममात्मानं भार्यां पुत्रं वोपरुन्ध्यान्न त्वेव दासकर्मकरम्। (आपस्तम्बधर्मसूत्र २।४।९।११)

३१. अतिथीनां च सर्वेषां प्रेष्याणां स्वजनस्य च। सामान्यं भोजनं भृत्यैः पुरुषस्य प्रशस्यते॥ (महाभारत, शान्ति० १९३।९)

३२. सुवासिनीः कुमारीश्च रोगिणो गर्भिणीः स्त्रियः। अतिथिभ्योऽग्र एवैतान्भोजयेद विचारयन्॥ (मनुस्मृति ३।११४)

बालं सुवासिनीवृद्धगर्भिण्यातुरकन्यकाः। सम्भोज्यातिथिभृत्यांश्च दम्पत्योः शेषभोजनम्॥ (याज्ञवल्क्यस्मृति १।१०५)

सुवासिनीं कुमारीं च भोजयित्वा नरानपि। बालवृद्धांस्ततः शेषं स्वयं भुञ्जीत वा गृही॥ (लघुहारीतस्मृति ४।६४)

ततः स्ववासिनीदुःखिगर्भिणीवृद्धबालकान्। भोजयेत्संस्कृतान्नेन प्रथमं चरमं गृही॥ (विष्णुपुराण ३।११।७१)

सुवासिनीः कुमारीश्च भोजयित्वाऽऽतुरानपि। बालवृद्धांस्ततः शेषं स्वयं भुञ्जीत वै गृही॥ (नरसिंहपुराण ५८।१०२)

३३. यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ। तयोरन्नमदत्त्वा च भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥ (पाराशरस्मृति १।५१; अत्रिस्मृति ५।४-५; देवीभागवत ११।२२।१५)

३४. राह चलनेवाला पथिक, जिसकी जीविका नष्ट हो गयी हो—ऐसा पुरुष, विद्यार्थी, गुरुका पालन-पोषण करनेवाला पुरुष, संन्यासी और ब्रह्मचारी—ये छः धर्मभिक्षुक माने गये हैं। ये यदि आ जायँ तो इनको भोजन कराना चाहिये।

३५. कोई अतिथि घरपर आ जाय तो उसको प्रेमभरी दृष्टिसे देखे। मनसे उसका हित-चिन्तन करे। मीठी वाणी बोलकर उसे सन्तुष्ट करे। जब वह जाने लगे, तब कुछ दूरतक उसके पीछे जाय और जबतक वह रहे, तबतक उसके स्वागत-सत्कारमें लगा रहे—ये पाँच काम करना गृहस्थके लिये 'पञ्चदक्षिण-यज्ञ' कहलाता है।

३६. अतिथिको पैर धोनेके लिये जल दे, बैठनेके लिये आसन दे, प्रकाशके लिये दीपक दे, खानेके लिये अन्न दे और ठहरनेके लिये स्थान दे—इन पाँच वस्तुओंको देना गृहस्थके लिये 'पञ्चदक्षिण-यज्ञ' कहलाता है।*

३७. जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौट जाता है, वह उसे अपना

---

३४. ब्रह्मचारी यतिश्चैव विद्यार्थी गुरुपोषकः। अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च षडेते भिक्षुकाः स्मृताः॥ (अत्रिसंहिता १६४)

अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च विद्यार्थी गुरुपोषकः। यतिश्च ब्रह्मचारी च षडेते धर्मभिक्षुकाः॥ (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ५।१२६, काशी० पू० ३५।२०६)

३५. चक्षुर्दद्यान्मनो दद्याद् वाचं दद्याच्च सूनृताम्। अनुव्रजेदुपासीत स यज्ञः पञ्चदक्षिणः॥ (महाभारत, वन० २।६१, अनु० ७।६)

३६. पाद्यमासनमेवाथ दीपमन्नं प्रतिश्रयम्। दद्यादतिथिपूजार्थं स यज्ञः पञ्चदक्षिणः॥ (महाभारत, अनु० ७।१२)

३७. अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते। तस्मात् सुकृतमादाय दुष्कृतं तु प्रयच्छति॥ (विष्णुस्मृति ६७)

---

* आजकल अपरिचित व्यक्तिसे सावधान रहनेकी आवश्यकता है।

पाप देकर बदलेमें उसका पुण्य लेकर चला जाता है।

३८. मनुष्यको पाँच वर्षतक पुत्रका प्यारसे पालन करना चाहिये, दस वर्षतक उसे अनुशासित रखना चाहिये और सोलह वर्षकी अवस्था प्राप्त होनेपर उसके साथ मित्रकी तरह व्यवहार करना चाहिये।

३९. यदि किसीने स्त्रीसे बलात्कारपूर्वक भोग कर लिया हो अथवा वह चोरके हाथमें पड़ गयी हो तो भी अपनी स्त्रीका परित्याग नहीं करना चाहिये। उसके त्यागका विधान नहीं है। ऋतुकाल आनेपर वह शुद्ध हो जाती है।

४०. जिसके माता-पिताका ज्ञान न हो, ऐसे अनाथ बालकका पालन करनेवालेको चाहिये कि वह अपने ही वर्णके अनुसार उसका संस्कार करे और उसी वर्णकी कन्याके साथ उसका विवाह करे। कारण कि

अतिथिर्यस्य""स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति॥

(विष्णुपुराण ३। ११। ६८; नारदपुराण, पू० २७। ७२; देवीभागवत ११। २२। १९-२०)

अतिथिर्यस्य""स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति॥

(महाभारत, शान्ति० १९१। १२; मार्कण्डेयपुराण २९। ३१-३२; स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। २३-२४)

३८. लालयेत् पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्। प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्॥ (गरुड़पुराण, आचार० ११४। ५९; चाणक्यनीति० ३। १८)

३९. बलात्कारोपभुक्ता वा चौरहस्तगतापि वा। न त्याज्या दयिता नारी नास्यास्त्यागो विधीयते॥ (स्कन्दपुराण, काशी० पू० ४०। ४७)

स्वयं विप्रतिपन्ना वा यदि वा विप्रवासिता। बलात्कारोपभुक्ता वा चोरहस्तगताऽपि वा॥ न त्याज्या दूषिता नारी नास्यास्त्यागो विधीयते। पुष्पकालमुपासीत ऋतुकालेन शुध्यते॥ (वसिष्ठस्मृति २८। २-३)

स्वयं विप्रतिपन्ना वा यदि वा विप्रतारिता॥ बलान्नारी प्रभुक्ता वा चौरभुक्ता तथाऽपि वा। न त्याज्या दूषिता नारी न कामोऽस्या विधीयते॥ ऋतुकाल उपासीत पुष्पकालेन शुद्ध्यति। (अत्रिसंहिता १९५—१९७)

४०. अस्वामिकस्य स्वामित्वं यस्मिन् सम्प्रति लक्ष्यते। यो वर्णः पोषयेत् तं च तद्वर्णस्तस्य जायते॥ आत्मवत् तस्य कुर्वीत संस्कारं स्वामिवत् तथा। त्यक्तो मातापितृभ्यां यः सवर्णं प्रतिपद्यते॥ तद्गोत्रबन्धुजं तस्य कुर्यात् संस्कारमच्युत।

अनाथ बालकका पालन-पोषण करनेवालेका जो वर्ण होता है, वही उस बालकका भी वर्ण हो जाता है।

४१. यदि मनुष्य किसीके साथ शाश्वत प्रेम करना चाहता हो तो उसे उसके साथ द्यूत, अर्थ-व्यवहार (धनका लेन-देन) और परोक्षरूपमें उसकी स्त्रीको देखना—इन तीन दोषोंका परित्याग कर देना चाहिये।

४२. जो पुरुष अपनी निर्दोष तथा सुशीला पत्नीको युवावस्थामें छोड़ देता है, वह सात जन्मोंतक स्त्री होता है और बार-बार वैधव्य प्राप्त करता है।

४३. यदि बालक कोई वस्तु माँगे तो वह प्रयत्नपूर्वक उसे देनी चाहिये। बालकोंको उनकी इच्छित वस्तु देनेवाला स्वर्गलोकमें आनन्दित होता है। धर्मकी इच्छावाले मनुष्यको सदा बालकोंका लालन-पालन करना चाहिये। बालकोंको खाद्य-वस्तु देनेसे गोदानका फल प्राप्त होता है। उन्हें खिलौना देनेवाला स्वर्गलोकमें सुख पाता है। जिसे देखकर बालक प्रसन्न हो जायँ, ऐसा खिलौना उन्हें दे और सबसे पहले उन्हें भोजन कराये। ऐसा करनेसे प्रत्येक जन्ममें महान् सौभाग्यकी प्राप्ति होती है।

अथ देया तु कन्या स्यात् तद्वर्णस्य युधिष्ठिर॥

(महाभारत, अनु० ४९। २१, २३-२४)

४१. यदीच्छेत् शाश्वतीं प्रीतिं त्रीणि दोषाणि वर्जयेत्। द्यूतमर्थप्रयोगं च परोक्षे दारदर्शनम्॥ (गरुड़पुराण, आचार० ११४। ५)

४२. अदुष्टां विनतां भार्यां यौवने यः परित्यजेत्। सप्तजन्म भवेत् स्त्रीत्वं वैधव्यं च पुनः पुनः॥ (वसिष्ठस्मृति ५। ३०)

४३. प्रार्थितं बालकानां च दातव्यं स्यात्प्रयत्नतः। बालानां प्रार्थितं दत्त्वा नाकलोके महीयते॥ बालका लालनीयाश्च धर्मकामैः सदा नरैः। तेषां भोज्यप्रदानेन गोदानफलमाप्नुयात्॥ तेषां क्रीडनकं दत्त्वा मोदते नन्दने चिरम्। आह्लादं यान्ति सततं यस्मिन्दृष्ट्वा तु बालकाः॥ सौभाग्यं महदाप्नोति यत्रयत्राभिजायते। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन बालानग्रे तु भोजयेत्॥ (विष्णुधर्मोत्तर० २। ९३। ५—८)

संन्यासियोंके लिये उपयोगी

१. जब मनमें सब पदार्थोंकी ओरसे पूर्ण वैराग्य हो जाय, तभी संन्यासकी इच्छा करनी चाहिये। इसके विपरीत आचरण करनेसे मनुष्य पतित हो जाता है। वैराग्यवान् पुरुष संन्यास ग्रहण करे और रागवान् पुरुष घरपर ही निवास करे। जो मनमें राग होते हुए भी संन्यास ग्रहण करता है, वह द्विजोंमें अधम है तथा उसे नरककी प्राप्ति होती है।

२. जो पुरुष अपनी कुलीना पतिव्रता युवती पत्नीको सन्तानहीन अवस्थामें त्यागकर संन्यासी, ब्रह्मचारी अथवा यति हो जाता है, व्यापार आदिके लिये बहुत दिनोंके लिये दूर चला जाता है या मोक्षके हेतु अथवा जन्म-मरणसे छुटकारा पानेके लिये तीर्थवासी अथवा तपस्वी हो जाता है, उसे पत्नीके शापसे मोक्ष तो मिलता नहीं, उल्टे धर्मका नाश हो जाता है। परलोकमें उसे निश्चय ही नरककी प्राप्ति होती है और इस लोकमें उसकी कीर्ति नष्ट हो जाती है।

३. दो ही पुरुष अपने विपरीत कर्मके कारण शोभा नहीं पाते—अकर्मण्य गृहस्थ और प्रपञ्चमें लगा हुआ संन्यासी।

---

१. यदा मनसि सञ्जातं वैतृष्ण्यं सर्ववस्तुषु। तदा संन्यासमिच्छेत पतितः स्याद्विपर्यये ॥ विरक्तः प्रव्रजेद्धीमान्सरक्तस्तु गृहे वसेत्। सरागो नरकं याति प्रव्रजन्हि द्विजाधमः ॥ (नारदपरिव्राजकोपनिषद् ३। १२-१३)

२. अनपत्यां च युवतीं कुलजां च पतिव्रताम्। त्यक्त्वा भवेयुः संन्यासी ब्रह्मचारी यतीति वा॥ वाणिज्ये वा प्रवासे वा चिरं दूरं प्रयाति यः। तीर्थे वा तपसे वापि मोक्षार्थं जन्म खण्डितुम्॥ न मोक्षस्तस्य भवति धर्मस्य स्खलनं ध्रुवम्। अभिशापेन भार्याया नरकं च परत्र च ॥ इहैव च यशोनाश इत्याह कमलोद्भवः। (ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण० ११३। ६—८)

३. द्वावेव न विराजेते विपरीतेन कर्मणा। गृहस्थश्च निरारम्भः कार्यवांश्चैव भिक्षुकः ॥ (महाभारत, उद्योग० ३३। ५७)

४. अन्नदानमें लगा हुआ संन्यासी चारकी हिंसा करता है—अन्न देनेवालेकी, अन्नकी, अपनी और जिसको अन्न देता है, उसकी।

५. अन्नदानमें लगा हुआ और वस्त्र आदिका संग्रह करनेवाला—दोनों ही प्रकारके संन्यासी नरकमें जाते हैं।

६. यदि संन्यासी शुक्ल वस्त्र, सवारी, ताम्बूल और धातुका दान लेता है तो वह इस दानको लेकर दाताके कुलका भी नाश करता है।

७. भूमि, गाय और स्वर्णका संग्रह करनेवाले संन्यासीको देख लेनेपर पापशुद्धिके लिये वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये।

८. संन्यासीको स्वर्ण देकर, ब्रह्मचारीको ताम्बूल देकर और चोरोंको अभय देकर दाता नरकमें जाता है।

९. जो एक बार संन्यास ग्रहण करके फिर उसे त्याग देता है, वह 'प्रत्यवसित' कहलाता है। ऐसा व्यक्ति सभीके द्वारा बहिष्कृत होता है। उसकी शुद्धि चान्द्रायणव्रत अथवा दो तप्तकृच्छ्रव्रत करनेसे होती है।

---

४. अन्नदानपरो भिक्षुश्चतुरो हन्ति दानतः। दातारमन्नमात्मानं यस्मै चान्नं प्रयच्छति॥ (यतिधर्मसंग्रह)

५. अन्नदानपरो भिक्षुर्वस्त्रादीनां परिग्रही। उभौ तौ मन्दबुद्धित्वात् पूतीनरकशायिनौ॥ (यतिधर्मसंग्रह)

६. शुक्लवस्त्रं च यानं च ताम्बूलं धातुमेव च। प्रतिगृह्य कुलं हन्यात् प्रतिगृह्णाति यस्य च॥ (पाराशरस्मृति १। ६१)

७. भूमिर्गावो हिरण्यं च यतेर्यस्य परिग्रहः। तादृशं कश्मलं दृष्ट्वा सचैलो जलमाविशेत्॥ (यतिधर्मसंग्रह)

८. यतये काञ्चनं दत्त्वा ताम्बूलं ब्रह्मचारिणे। चोरेभ्योऽप्यभयं दत्त्वा दाताऽपि नरकं व्रजेत्॥ (पाराशरस्मृति १। ६०)

९. जलाग्न्युद्बन्धनभ्रष्टाः प्रव्रज्यानाशकच्युताः।................सर्वे ते प्रत्यवसिताः सर्वलोकबहिष्कृताः। चान्द्रायणेन शुध्यन्ति तप्तकृच्छ्रद्वयेन वा॥ (यमस्मृति २-३)

१०. जो संन्यास ग्रहण करनेके बाद पुनः स्त्रीसंग करता है, वह साठ हजार वर्षोंतक विष्ठाका कीड़ा होता है।

११. संन्यासीको चाहिये कि वह लकड़ीसे बनी हुई स्त्रीका भी स्पर्श न करे। हाथसे स्पर्श करना तो दूर रहा, पैरसे भी स्पर्श न करे।

१२. सबके द्वारा वन्दनीय संन्यासीको भी माताकी प्रयत्नपूर्वक वन्दना करनी चाहिये।

१३. कौपीन, लँगोटी, चादर, जाड़ा दूर करनेवाली एक गुदड़ी तथा खड़ाऊँ—इन्हीं वस्तुओंको संन्यासी अपने पास रखे, अन्य वस्तुओंका संग्रह न करे।

१४. संन्यासीको चाहिये कि वह शरीरमें मेदोवृद्धि (मोटापा) न होने दे।

१५. संन्यासी काँसेके पात्रमें कभी भोजन न करे। काँसेके पात्रमें भोजन करानेवाले गृहस्थके जो पाप होते हैं, वे सब पाप काँसेके पात्रमें भोजन करनेवाले संन्यासीको प्राप्त हो जाते हैं।

---

१०. यस्तु प्रव्रजितो भूत्वा सेवते मैथुनं पुनः। षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः॥ (स्कन्दपुराण, काशी० पू० ४०। १०७)

११. पदापि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद् दारवीमपि। (श्रीमद्भागवत० ११। ८। १३)

१२. सर्ववन्द्येन यतिना प्रसूर्वन्द्या प्रयत्नतः॥ (स्कन्दपुराण, काशी० पू० ११। ५०)

१३. कौपीनाच्छादनं वासः कन्थां शीतनिवारिणीम्॥ पादुके चापि गृह्णीयात् कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम्। (लघुहारीतस्मृति ६। ७-८)। कौपीनाच्छादनं वासः कुथां शीतनिवारिणीम्।.. (नरसिंहपुराण ६०। ८)

१४. 'मेदोवृद्धिमकुर्वत्' (नारदपरिव्राजकोपनिषद् ७। १)

१५. कांस्यभाण्डेषु यत् पाको गृहस्थस्य तथैव च। कांस्ये भोजयतः सर्वं किल्बिषं प्राप्नुयात्तयोः॥ (लघुहारीतस्मृति ६। १८)

१६. संन्यासी नहीं होते हुए भी जो मनुष्य संन्यासीकी वेश-भूषा धारण करके अपनी जीविका चलाता है, वह वास्तविक संन्यासीके पापको ग्रहण करता है तथा मरकर तिर्यग्योनिमें जन्म लेता है।

१७. संन्यासीको चाहिये कि वह समस्त प्राणियोंका हितैषी हो, शान्त रहे, भगवत्परायण रहे और किसीका आश्रय न लेकर अपने-आपमें ही रमण करे एवं अकेला ही विचरण करे।

१८. जो वाणीसे धर्मोंका उपदेश करता है और मनसे पापकी इच्छा करता है, उसे महापातकियोंका शिरोमणि समझना चाहिये।

---

१६. अलिङ्गी लिङ्गिवेषेण यो वृत्तिमुपजीवति। स लिङ्गिनां हरत्येनस्तिर्यग्योनौ च जायते॥ (मनुस्मृति ४। २००; कूर्मपुराण, उ० १६। १३; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। १३)

१७. एक एव चरेद् भिक्षुरात्मारामोऽनपाश्रयः। सर्वभूतसुहृच्छान्तो नारायणपरायणः॥ (श्रीमद्भागवत० ७। १३। ३)

१८. वाचा धर्मान्प्रवदति मनसा पापमिच्छति। जानीयात्तं मुनिश्रेष्ठ महापातकिनां वरम्॥ (नारदपुराण, पूर्व० ३३। १०७)

गुरु-शिष्यके लिये उपयोगी

१. गुरुको चाहिये कि वह शिष्यको पुत्रकी तरह मानता हुआ और उसकी उन्नतिकी इच्छा करता हुआ सभी धर्मोंमें कुछ भी गुप्त न रखते हुए उसे विद्या प्रदान करे।

२. गुरु आपत्तिकालके सिवाय अन्य समयमें शिष्यके अध्ययनमें विघ्न पहुँचाकर उसे अपने किसी कार्यमें न लगाये।

३. गुरुको बहुत विचार करके ही किसीको शिष्य बनाना चाहिये, अन्यथा शिष्यके दोषके कारण गुरु नरकमें जा सकता है।

४. जिस प्रकार मन्त्रीका पाप राजाको और स्त्रीका पाप पतिको प्राप्त होता है, उसी प्रकार निश्चय ही शिष्यका पाप गुरुको प्राप्त होता है।

---

१. पुत्रमिवैनमनुकाङ्क्षन् सर्वधर्मेष्वनपच्छादयमानः सुयुक्तो विद्यां ग्राहयेत्। (आपस्तम्बधर्मसूत्र १। २। ८। २५)

२. न चैनमध्ययनविघ्नेनाऽत्मार्थेषूपरुन्ध्यादनापत्सु। (आपस्तम्बधर्मसूत्र १। २। ८। २६)

३. विचार्य यत्नात् विधिवत् शिष्यसंग्रहमाचरेत्। अन्यथा शिष्यदोषेण नरकस्थो भवेद् गुरुः॥ (रुद्रयामल २। ८६)

४. मन्त्रिदोषश्च राजानं जायादोषः पतिं यथा। तथा प्राप्नोत्यसन्देहं शिष्यपापं गुरुं प्रिये॥ (कुलार्णवतन्त्र ११। १०९)

दापयेत् स्वकृतं दोषं पत्नी पापं स्वभर्तरि। तथा शिष्यार्जितं पापं गुरुमाप्नोति निश्चितम्॥ (गन्धर्वतन्त्र)

अमात्यदोषोराजानं जायादोषः पतिं यथा। तथा शिष्यकृतो दोषो गुरुं प्राप्नोत्यसंशयम्॥ (स्कन्दपुराण, वैष्णव० मार्गशीर्ष० १६। १७)

५. भ्रूणहत्या करनेवाला अपना अन्न खानेवालेको, व्यभिचारिणी स्त्री पतिको, शिष्य गुरुको, यजमान गुरुको और चोर राजाको अपना-अपना पाप दे देते हैं।

६. एकमात्र पति ही स्त्रियोंका गुरु है। अतः स्त्रीको पतिके सिवाय किसीको भी गुरु नहीं बनाना चाहिये।

७. शिष्यको गुरुके साथ एक आसनपर नहीं बैठना चाहिये। परन्तु वह बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी, ऊँटगाड़ी, महलकी छत, कुशकी चटाई, शिलाखण्ड तथा नावपर गुरुके साथ (समान आसनपर) बैठ सकता है।

८. शिष्यको चाहिये कि जिस आसनपर गुरु बैठते हों, उसपर न बैठे और जिस शय्यापर वे सोते हों, उसपर न सोये।

९. गुरुके सामने किसी वस्तुका सहारा लगाकर अथवा पैरोंको फैलाकर नहीं बैठना चाहिये।

---

५. अन्नादे भ्रूणहा मार्ष्टि पत्यौ भार्यापचारिणी। गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि किल्बिषम्॥ (मनुस्मृति ८। ३१७)

६. 'पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम्' (औशनसस्मृति १।४८; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५१।५२; कूर्मपुराण, उ० १२।४८)

'पतिरेव गुरुः स्त्रीणाम्' (वृद्धगौतमस्मृति १२।७; ब्रह्मपुराण ८०।४८)

७. 'गुरोरेकासनादनम्' (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१।९८)

गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासादस्त्रस्तरेषु कटेषु च। आसीत गुरुणा सार्धं शिलाफलकनौषु च॥ (मनुस्मृति २। २०४)। गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासादप्रस्तरेषु ....।
(कूर्मपुराण, उ० १४। १४; भविष्यपुराण, ब्राह्म० ४। १७५)

गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासादे तथाऽधोविष्टरेषु च॥ आसीत गुरुणा सार्द्धं शिला-फलकनौषु च। (पद्मपुराण, स्वर्ग० ५३। १४-१५)

८. शय्यासने चाऽऽचरिते नाविशेत्। (आपस्तम्बधर्मसूत्र १। २। ८। ११)

९. अनपाश्रितोऽन्यत्र। (आपस्तम्बधर्मसूत्र १। २। ६। १७)

'न पर्यङ्किकावष्टम्भपादप्रसारणानि गुरुसन्निधौ कुर्यात्' (सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। ९४) न चैनमभिप्रसारयीत। (आपस्तम्बधर्मसूत्र १। २। ६। ३)

१०. शिष्यको चाहिये कि वह गुरुकी अपेक्षा अपने अन्न, वस्त्र तथा वेशको हीन (कम) रखे। वह गुरुके सोकर उठनेसे पहले उठे और उनके सोनेके बाद सोये।

११. क्रुद्ध गुरुके मुखपर दृष्टि नहीं डालनी चाहिये।

१२. शिष्यको चाहिये कि वह परोक्षमें भी गुरुके नामका उच्चारण न करे और गुरुकी गति, भाषण, चेष्टा आदिकी नकल न करे।

१३. जो मनुष्य उदासीन एवं दुराचारी गुरुसे मन्त्र-दीक्षा ग्रहण करता है, वह निश्चय ही धनहीन हो जाता है।

१४. जो दुष्ट संकल्पवाले निषिद्ध (दुराचारी) गुरुका शिष्य बनता है, उसे महाप्रलयपर्यन्त पुनः मनुष्यशरीर नहीं मिलता।

---

१०. हीनान्नवस्त्रवेषः स्यात्सर्वदा गुरुसन्निधौ। उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्य चरमं चैव संविशेत्॥ (मनुस्मृति २। १९४)

वस्त्रवेषैस्तथान्नैस्तु हीनः स्याद् गुरुसन्निधौ। उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्य जघन्यं चापि संविशेत्॥ (भविष्यपुराण, ब्राह्म० ४। १६५)

आसने शयने भक्ष्ये भोज्ये वाससि वा सन्निहिते निहीनतरवृत्तिः स्यात्। (आपस्तम्बधर्मसूत्र २। २। ५। ५)

११. न पश्येत् प्रेतसंस्पर्शं न क्रुद्धस्य गुरोर्मुखम्। (कूर्मपुराण, उ० १६। ४८)

न पश्येद्व्योमसंस्पर्शं न क्रुद्धस्य गुरोर्मुखम्। (पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ४७)

'न क्रुद्धस्य गुरोर्मुखम्' (विष्णुस्मृति ७१; विष्णुधर्मोत्तर० २। ८९। १३)

१२. नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम्। न चैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषितचेष्टितम्॥ (मनुस्मृति २। १९९)

नामोच्चारणमेवास्य परोक्षमपि सुव्रत। न चैनमनुकुर्वीत गतिभाषणचेष्टितैः॥ (भविष्यपुराण, ब्राह्म० ४। १७०)

१३. उदासीनाद् दुराचारान्न गृह्णीयान्मनुं सुधीः। दैवाद्यदि च गृह्णीयाद्धनहीनो भवेद् ध्रुवम्॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण० ८३। ५२)

१४. निषिद्धगुरुशिष्यस्तु दुष्टसंकल्पदूषितः। ब्रह्मप्रलयपर्यन्तं न पुनर्याति मर्त्यताम्॥ (गुरुगीता २८२)

१५. यदि गुरु भी घमण्डमें आकर कर्तव्य और अकर्तव्यका ज्ञान खो बैठें और गलत रास्तेपर चलने लगे तो उसका त्याग कर देना चाहिये।

१६. ज्ञानरहित, मिथ्यावादी और भ्रम पैदा करनेवाले (ठग) गुरुका त्याग कर देना चाहिये; क्योंकि जो खुद शान्ति नहीं प्राप्त कर सका, वह दूसरोंको शान्ति कैसे देगा?

१७. जिसके पास एक वर्षतक रहनेपर भी शिष्यको थोड़े-से भी आनन्द और प्रबोधकी उपलब्धि न हो, वह शिष्य उसे छोड़कर दूसरे गुरुका आश्रय ले।

---

१५. गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः। उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते॥ (महाभारत, उद्योग० १७८। ४८)

..........उत्पथप्रतिपन्नस्य न्याय्यं भवति शासनम्॥ (महाभारत, आदि० १३९। ५४)

........उत्पथप्रतिपन्नस्य दण्डो भवति शाश्वतः॥ (महाभारत, शान्ति० ५७। ७)

उत्पथं प्रतिपन्नस्य दण्डो भवति शासनम्॥ (महाभारत, शान्ति० १४०। ४८)

उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम्॥ (वाल्मीकि०, अयोध्या० २१। १३)

उत्पथं प्रतिपन्नस्य मनुस्त्यागमथाब्रवीत्॥ (पद्मपुराण, स्वर्ग० ५३। २५)

उत्पथप्रतिपन्नस्य मनुस्त्यागं समब्रवीत्॥ (कूर्मपुराण, उ० १४। २४)

उत्पथे वर्तमानस्य परित्यागो विधीयते॥ (स्कन्दपुराण, नागर० २७८। ८८)

१६. ज्ञानहीनो गुरुस्त्याज्यो मिथ्यावादी विडम्बकः। स्वविश्रान्तिं न जानाति परशान्तिं करोति किम्॥ (गुरुगीता १९८; सिद्धसिद्धान्तसंग्रह ५। ३८)

१७. यत्रानन्दः प्रबोधो वा नाल्पमप्युपलभ्यते॥ वत्सरादपि शिष्येण सोऽन्यं गुरुमुपाश्रयेत्। (शिवपुराण, वा० उ० १५। ४६-४७)

भूमिके प्रति व्यवहार

१. नखसे भूमिको कुरेदना नहीं चाहिये।

२. भूमिपर कभी हाथों या पैरोंसे आघात नहीं करना चाहिये।

३. अम्बुवाँची योगमें अर्थात् आर्द्रा नक्षत्रके प्रथम चरणमें, जब पृथ्वी ऋतुमती रहती है, जो पृथ्वीको खोदते हैं, उन्हें ब्रह्महत्या लगती है और मरनेपर चार युगोंतक कृमिदंश नरककी प्राप्ति होती है। भूकम्प एवं ग्रहणके अवसरपर भी पृथ्वीको खोदनेसे महान् पाप लगता है और ऐसा करनेवाला दूसरे जन्ममें अंगहीन होता है।

४. जो कामान्ध व्यक्ति पृथ्वीपर वीर्य गिराता है, उसे वहाँकी जमीनमें जितने रजःकण हैं, उतने वर्षोंतक रौरव नरकमें रहना पड़ता है।

---

१. 'न चैवं प्रलिखेद् भूमिम्' (मनुस्मृति ४। ५५)
'न नखैर्विलिखेद् भूमिम्' (कूर्मपुराण, उ० १६। ५६)
'न नखेन लिखेद् भूमिम्' (पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ५५)
'न भूमिं विलिखेत्'
(सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। ९४, चरकसंहिता सूत्र० ८। १९)
'नाकस्माद्विलिखेद् भुवम्' (शुक्रनीति ३। २७, अष्टांगहृदय सूत्र० २। ३६)
'न महीं लिखेत्' (विष्णुपुराण ३। १२। १०)

२. नापो भूमिं व पाणिपादेनाभिहन्यात्। (सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। ९२)

३. अम्बुवाच्यां भूकरणं यः करोति च मानवः। स याति कृमिदंशं च स्थितिस्तत्र चतुर्युगम्॥ भूकम्पे ग्रहणे यो हि करोति खननं भुवः। जन्मान्तरे महापापो ह्यङ्गहीनो भवेद् ध्रुवम्॥ (देवीभागवत ९। १०। १४, २८)

अम्बुवाच्यां भूखननं जलशौचादिकं च ये। कुर्वन्ति भारते वर्षे ब्रह्महत्यां लभन्ति ते॥ (देवीभागवत ९। ३४। ४८)

भूकम्पे ग्रहणे यो हि करोति खननं भुवः। जन्मान्तरे महापापी सोऽङ्गहीनो भवेद् ध्रुवम्॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृति० ९। २३)

४. कामी भूमौ च रहसि वीर्यत्यागं करोति यः। भूमिरेणुप्रमाणं च वर्षं तिष्ठति रौरवे॥ (देवीभागवत ९। १०। १३)

५. दीपक, शिवलिंग, शालग्राम, मणि, देवप्रतिमा, शंख, मोती, माणिक्य, हीरा, स्वर्ण, मणि, तुलसी, रुद्राक्ष, पुष्पमाला, जपमाला, पुस्तक, यज्ञोपवीत, चन्दन, यन्त्र, फूल, कपूर, गोरोचन, कुशकी जड़—इन वस्तुओंको भूमिपर रखनेसे महान् पाप लगता है।

---

५. प्रदीपं शिवलिङ्गं च शालग्रामं मणिं तथा। प्रतिमां यज्ञसूत्रं च सुवर्णं शङ्खमेव च॥ हीरकं च तथा मुक्तां गोमूत्रं गोमयं घृतम्। शालग्रामशिलातोयं भूमौ त्यक्त्वा व्रजेदधः॥ दरिद्रः कृपणः कुष्ठी वंशहीनोऽप्यभार्यकः। भूमिहीनः प्रजाहीनो बन्धुहीनश्च कुत्सितः। अन्धः पङ्गुर्वा खरश्च खञ्जश्चैवाङ्गहीनकः। भवेत् क्रमेण पापी स ह्येतान् भूमौ त्यजेत्तु यः॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण० ७५। ७६—७९) भूमौ प्रदीपं योऽर्पयति सोऽन्धः सप्तजन्मसु। भूमौ शङ्खं च संस्थाप्य कुष्ठं जन्मान्तरे लभेत्॥ मुक्तामाणिक्यहीरं च सुवर्णं च मणिं तथा। यश्च संस्थापयेद् भूमौ दरिद्रः सप्तजन्मसु॥ शिवलिङ्गं शिलामर्च्यां यश्चार्पयति भूतले। शतमन्वन्तरं यावत् कृमिभक्षे स तिष्ठति॥ सूक्तं मन्त्रं शिलातोयं पुष्पं च तुलसीदलम्। यश्चार्पयति भूमौ च स तिष्ठेन्नरकं युगम्॥ जपमालां पुष्पमालां कर्पूरं रोचनान्तथा। यो मूढश्चार्पयेद् भूमौ स याति नरकं ध्रुवम्॥ मुने चन्दनकाष्ठं च रुद्राक्षं कुशमूलकम्। संस्थाप्य भूमौ नरके वसेन्मन्वन्तरावधि॥ पुस्तकं यज्ञसूत्रं च भूमौ संस्थापयेत्तु यः। न भवेद्विप्रयोनौ च तस्य जन्मान्तरे जनिः॥ ब्रह्महत्यासमं पापमिह वै लभते ध्रुवम्। (ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृति० ९। १४-२१) भूमौ दीपं योऽर्पयति स चान्धः सप्तजन्मसु। भूमौ शङ्खं च संस्थाप्य कुष्ठं जन्मान्तरे लभेत्॥ मुक्तां माणिक्यहीरौ च सुवर्णं च मणिं तथा। पञ्च संस्थापयेद् भूमौ स चान्धः सप्तजन्मसु॥ शिवलिङ्गं शिवामर्चां यश्चाऽर्पयति भूतले। शतमन्वन्तरं यावत् कृमिभक्षः स तिष्ठति॥ शङ्खं यन्त्रं शिलातोयं पुष्पं च तुलसीदलम्। यश्चाऽर्पयति भूमौ च स तिष्ठेन्नरके ध्रुवम्॥ जपमालां पुष्पमालां कर्पूरं रोचनं तथा। यो मूढश्चाऽर्पयेद् भूमौ स याति नरकं ध्रुवम्॥ भूमौ चन्दनकाष्ठं च रुद्राक्षं कुशमूलकम्। संस्थाप्य भूमौ नरके वसेन्मन्वन्तरावधि॥ पुस्तकं यज्ञसूत्रं च भूमौ संस्थापयेन्नरः। न भवेद्विप्रयोनौ च तस्य जन्मान्तरे जनिः॥ ब्रह्महत्यासमं पापमिह वै लभते ध्रुवम्। ग्रन्थियुक्तं यज्ञसूत्रं पूज्यं च सर्ववर्णकैः॥ (देवीभागवत ९। १०। १९—२६)

जल या नदीके प्रति व्यवहार

१. जो मनुष्य जलमें मल, मूत्र, थूक, कुल्ला और कफ छोड़ते हैं, उन्हें ब्रह्महत्याका पाप लगता है।

२. जलके भीतर मल-मूत्र और मैथुन नहीं करना चाहिये।

३. पानीपर कभी पैर या हाथसे आघात नहीं करना चाहिये।

---

१. ष्ठीवनासृक्शकृन्मूत्ररेतांस्यप्सु न निक्षिपेत्। (याज्ञवल्क्यस्मृति १।१३७)

नाचरेत्प्लवनक्रीडां न गण्डूषं जले क्षिपेत्। अन्योऽन्यं नोक्षिपेत्तोयं न देहमलमुत्सृजेत्॥
(शाण्डिल्यस्मृति २।२३)

'नाप्सु ष्ठीवनमाचरेत्' (कूर्मपुराण, उ० १६।७५; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५।७६)

अल्पा इति मतिं कृत्वा यो नरो बुद्धिमोहितः। श्लेष्ममूत्रपुरीषाणि युष्मासु प्रतिमोक्ष्यति॥ तमियं यास्यति क्षिप्रं तत्रैव च निवत्स्यति।
(महाभारत, शान्ति० २८२।५४-५५)

मलं मूत्रं पुरीषं च श्लेष्म निष्ठीनाश्रु च। गण्डूषाश्चैव मुञ्चन्ति ये ते ब्रह्महणैः समाः॥ (स्कन्दपुराण, मा० कौ० ६४।२४)

ष्ठीवनासृक्शकृन्मूत्रविषाण्यप्सु न संक्षिपेत्। (गरुड़पुराण, आचार० ९६।४०)

२. तथाष्ठेवनमैथुनयोः कर्माऽप्सु वर्जयेत्॥
(आपस्तम्बधर्मसूत्र १।११।३०।२२)

नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा मैथुनं वा समाचरेत्। (मार्कण्डेयपुराण ३४।२४; ब्रह्मपुराण २२१।२४; स्कन्दपुराण, मा० कौ० ४१।१५४)

'नाप्सु मैथुनमाचरेत्' (कूर्मपुराण, उ० १६।७५; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५।७६)

'मलादि प्रक्षिपेन्नाप्सु' (अग्निपुराण १५५।२२)

३. न पादेन पाणिना वा जलमभिहन्यान्न जलेन जलम्॥ (वसिष्ठस्मृति ६।३३)

अम्बु न क्षोभयेदङ्गैः पादेनोत्सादयेन्न च॥ (शाण्डिल्यस्मृति २।२२)

नाभिहन्याज्जलं पद्भ्यां पाणिना वा कदाचन॥
(कूर्मपुराण, उ० १६।६०; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५।६०)

नापो भूमिं वा पाणिपादेनाभिहन्यात्॥ (सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४।९२)

४. किसी नदीपर पहुँचनेके बाद देवता और पितरोंका तर्पण किये बिना उसे पार नहीं करना चाहिये।

५. किसी नदीके समीप दूसरी नदियोंकी तथा किसी पर्वतपर दूसरे पर्वतोंकी चर्चा (प्रशंसा) नहीं करनी चाहिये।

६. अपनी भुजाओंसे तैरकर नदी पार नहीं करनी चाहिये। यह निरर्थक और आयुनाशक कर्म है।

---

४. न वृथा नदीं तरेत्। न देवताभ्यः पितृभ्यश्चेदकामं प्रदाय। (विष्णुस्मृति ६३)

जलं प्रतरमाणश्च कीर्तयेत पितामहान्। नदीमासाद्य कुर्वीत पितॄणां पिण्डतर्पणम्॥
(महाभारत, अनु० ९२।१६)

असन्तर्प्य पितृन्देवान् नदीपारं च न व्रजेत्। (अग्निपुराण १५५।२२)

असन्तर्प्य पितुर्देवं नदीपारं न च व्रजेत्। (विष्णुधर्मोत्तर० २।८९।३७)

५. न नदीषु नदीं ब्रूयात् पर्वतेषु च पर्वतान्॥
(कूर्मपुराण, उ० १६।५६; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५।५६)

'नद्यां नान्यां नदीं ब्रूयात्' (अग्निपुराण १५५।२१)

न प्रशंसेन्नदीतोये नदीमन्यां कथञ्चन। न गिरौ पर्वतं राम न राज्ञः पुरतो नृपम्॥
(विष्णुधर्मोत्तर० २।८९।३६)

६. बाहुभ्यां न नदीं तरेत् अनर्थकमनायुष्यम्। (महाभारत, शान्ति० १४०।५६)

'न बाहुभ्यां नदीं तरेत्'
(मनुस्मृति ४।७७; कूर्मपुराण, उ० १६।६८; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५।६८)

'न बाहुभ्याम्' (विष्णुस्मृति ६३)

'नदीं तरेन्न बाहुभ्याम्' (शुक्रनीति ३।२६; अष्टाङ्गहृदय, सूत्र० २।३४)

'बाहुभ्यां न नदीं तरेत्' (वसिष्ठस्मृति १२।४३)

न नदीं बाहुकस्तरेत्।
(बौधायनस्मृति २।३।५३); (बौधायनधर्मसूत्र २।३।६।२६)

बाहुभ्यां च नदीतरणम्। (आपस्तम्बधर्मसूत्र १।११।३२।२६)

अग्रिके प्रति व्यवहार

१. अग्रिको कभी मुखसे नहीं फूँकना चाहिये।

२. आगको (चारपाई आदिके) नीचे न रखे, उसे लाँघे नहीं और उसकी ओर पैर भी न करे।

३. पीठकी ओरसे अग्रिका सेवन नहीं करना चाहिये।

४. पैरोंको आगपर नहीं तपाना चाहिये।

---

१. 'नाग्निं मुखेनोपधमेत्' (मनुस्मृति ४।५३; वसिष्ठस्मृति १२।२७; सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४।९२; महाभारत, आश्व० ९२)

'मुखेन न धमेद् बुधः' (कूर्मपुराण, उ० १६।७७)

'न मुखेनानलं धमेत्' (मार्कण्डेयपुराण ३४।११२; ब्रह्मपुराण २२१।१०२)

'मुखेनोपधमेन्नाग्निम्' (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६।५९; पद्मपुराण, पाताल० ९।५५)

२. अधस्तान्नोपदध्याच्च न चैनमभिलङ्घयेत्। न चैनं पादतः कुर्यान्न प्राणाबाधमाचरेत्॥ (मनुस्मृति ४।५४)

'नाधः कुर्यात् कदाचित्' (महाभारत, आश्व० ९२)

न चाग्निं लङ्घयेद् धीमान् नोपदध्यादधः क्वचित्। न चैनं पादतः कुर्यात्.................... (कूर्मपुराण, उ० १६।७७; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५।७८)

खट्वायां च नोपदध्यात्॥ (आपस्तम्बधर्मसूत्र १।५।१५।२१)

३. 'न पृष्ठं परितापयेत्' (महाभारत, आश्व० ९२)। पृष्ठतः सेवयेदर्कं जठरेण हुताशनम्। (हितोपदेश, सुहृद्० ३४)

४. 'न च पादौ प्रतापयेत्' (मनुस्मृति ४।५३; महाभारत, आश्व० ९२)

पादौ प्रतापयेन्नाग्नौ न चैनमभिलङ्घयेत्॥ (याज्ञवल्क्यस्मृति १।१३७; गरुड़पुराण, आचार० ९६।४०)

'नाग्नौ प्रतापयेत् पादौ' (कूर्मपुराण, उ० १६।६९; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५।६९)

नाग्निमुखे नोपयमे न च पादौ प्रतापयेत्॥ (वृद्धगौतमस्मृति १२।१३)

'नाङ्घ्री प्रतापयेदग्नौ' (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६।६०)

५. जो मनुष्य कुत्ते या चाण्डालसे छू गया हो, उसे अग्रिमें अपना अंग नहीं तपाना चाहिये। सदा शुद्ध होकर ही अग्रिका स्पर्श करना चाहिये। मल या मूत्रकी हाजत होनेपर भी अग्रिका स्पर्श नहीं करना चाहिये; क्योंकि जबतक मनुष्यमें मल-मूत्रका वेग रहता है, तबतक वह अशुद्ध रहता है।

६. अग्रिमें कोई अपवित्र वस्तु नहीं डालनी चाहिये।

७. आगमें आग न डाले तथा उसे पानी डालकर न बुझाये।

८. जल और अग्रिको एक साथ (एक हाथमें जल और दूसरे हाथमें अग्रि) नहीं लेना चाहिये।

---

५. श्वचण्डालादिभिः स्पृष्टोनाङ्गमग्नौ प्रतापयेत्। सर्वदेवमयो वह्निस्तस्माच्छुद्धतमः स्पृशेत्॥ (वृद्धगौतमस्मृति १२।१५)।............ तस्माच्छुद्धः सदा स्पृशेत्॥ (महाभारत, आश्व० ९२)। प्रास्रमूत्रपुरीषस्तु न स्पृशेद् वह्निमात्मवान्। यावत्तु धारयेद्वेगाः तावदप्रयतो भवेत्॥ (वृद्धगौतमस्मृति १२।१६)।............यावत् तु धारयेद् वेगं तावदप्रयतो भवेत्॥ (महाभारत, आश्व० ९२)

६. 'न चामेध्यं विनिक्षिपेत्' (वृद्धगौतमस्मृति १२।१४)

'नामेध्यं प्रक्षिपेदग्नौ' (मनुस्मृति ४।५३)

नाङ्घ्री प्रतापयेदग्नौ न वस्तु अशुचि क्षिपेत्। (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६।६०)

७. अग्नौ न च क्षिपेदग्निं नाद्भिः प्रशमयेत् तथा॥ (कूर्मपुराण, उ० १६।७८; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५।७९)

८. युगपज्जलमग्निं च बिभृयान्न विचक्षणः। (मार्कण्डेयपुराण, ३४।११०; ब्रह्मपुराण २२१।१०१)

जलमग्निं च निनयेद्युगपन्न विचक्षणः॥ (स्कन्दपुराण, मा० कौ० ४१।१२६)

नाग्निमपश्च युगपद्धारयेत्। (गौतमधर्मसूत्र १।९।९)

९. मुँहसे फूँककर अग्निको प्रज्वलित नहीं करना चाहिये। परन्तु अग्निहोत्रके समय अग्निको मुँहसे फूँककर प्रज्वलित करना चाहिये; क्योंकि मुखसे ही अग्निका प्राकट्य हुआ है। होमके समय कपड़ेके द्वारा हवा करनेसे रोग, सूपसे हवा करनेसे धनका नाश तथा हाथसे हवा करनेसे आयु नष्ट होती है और मुखकी हवासे अग्निको प्रज्वलित करनेसे कार्यसिद्धि होती है। अतः मुँहसे अग्निको फूँककर प्रज्वलित करनेका निषेध लौकिक अग्निके लिये है, होमकी अग्निके लिये नहीं।

---

९. न वह्निं मुखनिःश्वासैर्ज्वालयेन्नाशुचिर्बुधः। (कूर्मपुराण, उ० १६। ८०; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ८१)

न पाणिना न शूर्पेण न च मेध्याजिनादिभिः। मुखेनोपधमेदग्निं मुखादेव व्यजायत॥ पटकेन भवेद् व्याधिः शूर्पेण धननाशनम्। पाणिना मृत्युमाप्नोति कर्मसिद्धिर्मुखेन तु॥ (देवीभागवत ११। २२। ५-६)

होतव्ये च हुते चैव पाणिसूर्पस्फ्यदारुभिः। न कुर्यादग्निधमनं कुर्याद्वा व्यजनादिना॥ मुखेनैके धमन्त्यग्निं मुखाद्ध्येषोऽध्यजायत। नाग्निं मुखेनेति च यल्लौकिके योजयन्ति तत्॥ (कात्यायनस्मृति ९। १४-१५)

बड़ोंके प्रति व्यवहार

१. अपनेसे श्रेष्ठ और अपनेसे निम्न व्यक्तियोंकी शय्या और आसनपर नहीं बैठना चाहिये।

२. गुरु, राजा या किसी श्रेष्ठ व्यक्तिके सम्मुख बिना अनुमतिके नहीं बैठना चाहिये।

३. जो मनुष्य श्रेष्ठ पुरुषोंके सम्मुख ऊँचे आसनपर बैठता है, वह निश्चय ही इस लोकमें और परलोकमें कष्ट पाता है।

४. गुरु, देवता, ब्राह्मण, गौ, वायु, अग्नि, राजा, सूर्य, चन्द्रमा और अपनेसे श्रेष्ठ व्यक्तियोंके सामने पैर नहीं फैलाने चाहिये।

५. गुरु अथवा श्रेष्ठ पुरुषोंके किसी वचनका अपने वचनसे खण्डन नहीं करना चाहिये।

६. गुरुजनों तथा राजाके सामने ऊँचे आसनपर न बैठे, प्रौढ़पाद न बैठे और उनके वचनोंका तर्कद्वारा खण्डन न करे।

---

१. शय्यासनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत्। (मनुस्मृति २। ११९)
'नोत्कृष्टशय्यासनयोर्नापकृष्टस्य चारुहेत्' (मार्कण्डेयपुराण ३४। ८५)

२. न साम्मुख्ये गुरोः स्थेयं राज्ञः श्रेष्ठस्य कस्यचित्॥ (शुक्रनीति ३। १४७)

३. उच्चालयोपविष्टस्य मान्यानां पुरतो यदि। गच्छेत्स विपदं नूनमिह चामुत्र चैव हि॥ (लघ्वाश्वलायनस्मृति २२। २०)

४. नाभिप्रसारयेद् देवं ब्राह्मणान् गामथापि वा। वाय्वग्निगुरुविप्रान् वा सूर्यं वा शशिनं प्रति॥ (कूर्मपुराण, उ० १६। ६९; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ६९-७०)
पादौ प्रसारयेन्नैव गुरुदेवाग्निसम्मुखौ। (स्कन्दपुराण, मा० कौ० ४१। १२७)

५. वाक्येन वाक्यस्य प्रतिघातमाचार्यस्य वर्जयेच्छ्रेयसां च। (आपस्तम्बधर्मसूत्र २। २। ५। ११)

६. गुरूणां पुरतो राज्ञो न चासीत महासने॥ प्रौढपादो न तद्वाक्यं हेतुभिर्विकृतिं नयेत्। (शुक्रनीति ३। १६३-१६४)

७. बुद्धिमान् मनुष्यको उत्तम अथवा अधम व्यक्तियोंसे विरोध नहीं करना चाहिये।

८. अत्यन्त क्रोधकी अवस्थामें भी पूज्य पुरुषोंकी आज्ञाका उल्लंघन और अपमान नहीं करना चाहिये।

९. अपनेसे बड़ोंके सामने मल-मूत्रका त्याग करना अथवा थूकना नहीं चाहिये।

१०. बड़े पुरुष सोते हों तो उन्हें जगाना नहीं चाहिये।

११. राजा, देवता, गुरु, अग्नि, तपस्वी और धर्म तथा ज्ञानमें श्रेष्ठ पुरुषोंकी सेवा नित्य सावधान होकर भलीभाँति करनी चाहिये।

१२. श्रेष्ठ पुरुषोंकी अनुमतिके बिना उनके साथ कार्य करनेकी इच्छा नहीं करनी चाहिये।

१३. अपनेसे बड़ोंका नाम लेकर या 'तू' कहकर नहीं पुकारना चाहिये।

---

७. विरोधं नोत्तमैर्गच्छेन्नाधमैश्च सदा बुधः। (विष्णुपुराण ३। १२। २२)

'नोत्तमैर्विरुध्येत' (चरकसंहिता, सूत्र० ८। १९)

८. नातिकुद्धोऽपि मान्यमतिक्रामेदवमन्येत वा॥ (नीतिवाक्यामृत २५। ८०)

९. सोमार्काग्न्यम्बुवायूनां पूज्यानां च न सम्मुखम्। कुर्यान्निष्ठीवविण्मूत्रसमुत्सर्गं च पण्डितः॥ (विष्णुपुराण ३। १२। २७)

१०. 'श्रेयांसं न प्रबोधयेत्' (मनुस्मृति ४। ५७)

११. सावधानमना नित्यं राजानं देवतां गुरुम्। अग्निं तपस्विनं धर्मज्ञानवृद्धं सुसेवयेत्॥ (शुक्रनीति ३। ५१)

१२. उत्तमैरननुज्ञातं कार्यं नेच्छेच्च तैः सह। (शुक्रनीति ३। १४५)

१३. त्वंकारं नामधेयं च ज्येष्ठानां परिवर्जयेत्।

(महाभारत, शान्ति० १९३। २५)

१४. यदि किसी गुरुजनको 'तू' कह दिया जाय तो यह साधु पुरुषोंकी दृष्टिमें उसके वधके समान है। गुरुको तू कह देना उसे बिना मारे ही मार डालना है।

१५. देवमन्दिर, ब्राह्मण, गाय और अपनेसे बड़ोंके पास पहुँचनेसे पहले ही रथ (वाहन)-से उतर जाना चाहिये।

---

१४. त्वमित्युक्तो हि निहतो गुरुर्भवति भारत॥

(महाभारत, कर्ण० ६९। ८३)

अवधेन वधः प्रोक्तो यद् गुरुस्त्वमिति प्रभुः। तद् ब्रूहि त्वं यन्मयोक्तं धर्मराजस्य धर्मवित्॥ (महाभारत, कर्ण० ६९। ८६)

न जातु त्वमिति ब्रूयादापन्नोपि महत्तरम्। त्वंकारो वा वधो वेति विद्वत्सु न विशिष्यते॥ (विष्णुधर्मोत्तर० ३। २३३। २४४)

त्वंकारो वा वधो वापि गुरूणामुभयं समम्॥

(स्कन्दपुराण, मा० कौ० ४१। १६८)

१५. अप्राप्य देवताः प्रत्यवरोहेतसम्प्रति ब्राह्मणान्मध्ये गा अभिक्रम्य पितॄन्॥

(पारस्करगृह्यसूत्र ३। १४। ८)

मित्रोंके प्रति व्यवहार

१. सच्चे मित्रका कर्तव्य है कि वह मित्रको पापोंसे रोके, उसे कल्याणकारी कामोंमें लगाये, उसकी गुप्त बातोंको छिपाये, उसके गुणोंको प्रकट करे, विपत्तिमें उसका साथ न छोड़े और समय पड़नेपर उसे धन आदि दे।

२. मनुष्य जिसके साथ उत्तम मैत्री रखना चाहे, उससे धनकी अभिलाषा न रखे, परोक्षमें उसके अन्तःपुरमें न जाय और एकान्तमें उसकी स्त्रीसे बातचीत न करे, उसकी त्रुटियोंको न देखे और उसके प्रतिकूल विवाद न करे।

३. मित्रको प्रेमपूर्वक किसी वस्तुको देना और उससे लेना, अपनी गुप्त बातोंको कहना और उससे पूछना, मित्रके यहाँ भोजन करना और उसे भोजन कराना—ये प्रीतिके छः लक्षण हैं।

४. किसी कारणवश मित्रके वैरी बन जानेपर भी पहले (मित्रावस्थामें) कही हुई गुप्त बातोंको एवं जाने हुए उसके दोषोंको कहीं भी प्रकट नहीं करना चाहिये।

---

१. पापान्निवारयति योजयते हिताय गुह्यं निगूहति गुणान् प्रकटीकरोति। आपद्गतं च न जहाति ददाति काले सन्मित्रलक्षणमिदं निगदन्ति सन्तः॥ (भर्तृहरिनीतिशतक ७३)

२. यस्येच्छेदुत्तमां मैत्रीं कुर्यात्तत्रार्थाभिलाषकम्॥ परोक्षे तद्रहश्चारं तत्स्त्रीसम्भाषणं तथा। तन्न्यूनदर्शनं नैव तत्प्रतीपविवादनम्॥ (शुक्रनीति ३। २०१-२०२)

३. ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति। भुङ्क्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम्॥ (पंचतन्त्र, लब्ध० १३, मित्रसम्प्राप्ति ५१)

४. वैरीभूतोऽपि पश्चात् प्राक्कथितं वापि सर्वदा। विज्ञातमपि यद्दौष्ट्यं दर्शयेत्तन्न कर्हिचित्॥ (शुक्रनीति ३। ३१४)

५. जिस बातसे मित्र लज्जित हो जाय या उसके मनमें फर्क पड़ जाय अथवा उसका चित्त दुःखी हो जाय, उस बातको विनोदमें भी नहीं कहना चाहिये।

६. किसी व्यक्तिके लिये मित्रभावसे भी अपशब्दोंका प्रयोग नहीं करना चाहिये। मित्रसे गोप्य विषयको नहीं छिपाना चाहिये और उसके गोप्य विषयको कहीं प्रकाशित नहीं करना चाहिये।

---

५. लज्जयते च सुहृद्येन भिद्यते दुर्मना भवेत्॥ वक्तव्यं न तथा किञ्चिद्विनोदेऽपि च धीमता। (शुक्रनीति ३। २२९-२३०)

६. अपशब्दाश्च नो वाच्या मित्रभावाच्च केष्वपि। गोप्यं न गोपयेन्मित्रे तद्गोप्यं न प्रकाशयेत्॥ (शुक्रनीति ३। ३१३)

देवकार्य (देवपूजा)

१. देवपूजा उत्तरमुख होकर और पितृपूजा दक्षिणमुख होकर करनी चाहिये।

२. नीला, लाल अथवा काला वस्त्र पहनकर और बिना धोया हुआ वस्त्र पहनकर भगवान् विष्णुकी उपासना करनेवाला दोषी माना जाता है और उसका पतन होता है।

३. गीले वस्त्रोंको पहनकर अथवा दोनों हाथ घुटनोंसे बाहर करके जो जप, होम और दान किया जाता है, वह सब निष्फल हो जाता है।

४. केश खोलकर आचमन और देवपूजन नहीं करना चाहिये।

५. ताँबा मंगलस्वरूप, पवित्र एवं भगवान्‌को बहुत प्रिय है। ताँबेके पात्रमें रखकर जो वस्तु भगवान्‌को अर्पण की जाती है, उससे भगवान्‌को बड़ी प्रसन्नता होती है। इसलिये भगवान्‌को जल आदि वस्तुएँ ताँबेके पात्रमें रखकर अर्पण करनी चाहिये।

---

१. उदङ्मुखस्तु देवानां पितॄणां दक्षिणामुखः ॥

(स्कन्दपुराण, प्रभास० २०६। १८)

२. रक्तवस्त्रेण संयुक्तो यो हि मामुपसर्पति। तस्यापि शृणु सुश्रोणि कर्म संसारमोक्षणम्॥ यः पुनः कृष्णवस्त्रेण मम कर्मपरायणः॥ देवि कर्माणि कुर्वीत तस्य वै पातनं शृणु। वाससा चाप्यधौतेन यो मे कर्माणि कारयेत्। शुचिभार्गवतो भूत्वा मम मार्गानुसारकः॥ तस्य दोषं प्रवक्ष्यामि अपराधं वसुन्धरे। पतन्ति येन संसारं वाससोच्छिष्टकारिणः॥

(वराहपुराण १३५। १, १५-१६, २३-२४)

३. आर्द्रवासास्तु यत्कुर्याद् बहिर्जानु च यत्कृतम्। तत्सर्वं निष्फलं कुर्याज्जपहोमप्रतिग्रहम्॥ (लिखितस्मृति ६३)

४. मुक्तकेशश्च नाचामेद्देवाद्यर्चां च वर्जयेत्॥ (विष्णुपुराण ३। १२। १९)

५. तत्ताम्रभाजने मह्यं दीयते यत्सुपुष्कलम्। अतुला तेन मे प्रीतिर्भूमे जानीहि सुव्रते॥ माङ्गल्यं च पवित्रं च ताम्रन्तेन प्रियं मम। एवं ताम्रं समुत्पन्नमिति मे रोचते हि तत्॥ दीक्षितैर्वै भागवतैः पाद्यार्घ्यादौ च दीयते।

(वराहपुराण १२९। ४१-४२, ५१-५२)

६. चाँदी पितरोंको तो परमप्रिय है, पर देवकार्यमें इसे अशुभ माना गया है। इसलिये देवकार्यमें चाँदीको दूर रखना चाहिये।

७. भगवान्‌की उपासना करते समय दीपकका स्पर्श करनेपर हाथ धो लेना चाहिये, अन्यथा दोष लगता है।

८. शालग्राम, तुलसी और शंख—इन तीनोंको एक साथ रखनेसे भगवान् बहुत प्रसन्न होते हैं। शालग्राम तथा शंखपर रखी हुई तुलसीको अलग करना पाप है। शालग्रामसे तुलसी अलग करनेवालेको जन्मान्तरमें स्त्री-वियोगकी प्राप्ति होती है और शंखसे तुलसी अलग करनेवाला भार्याहीन तथा सात जन्मोंतक रोगी होता है।

---

६. शिवनेत्रोद्भवं यस्मात् तस्मात् पितृवल्लभम्। अमङ्गलं तद् यत्नेन देवकार्येषु वर्जयेत्॥ (मत्स्यपुराण १७। २३)। शिवनेत्रोद्भवं यस्माद्रजतं पितृवल्लभम्.........

(निर्णयसिन्धु १)

७. दीपं स्पृष्ट्वा तु यो देवि मम कर्माणि कारयेत्। तस्यापराधाद्वै भूमे पापं प्राप्नोति मानवः॥ (वराहपुराण १३६। १)

८. तुलसीपत्रविच्छेदं शालग्रामे करोति यः। तस्य जन्मान्तरे काले स्त्रीविच्छेदो भविष्यति॥ तुलसीपत्रविच्छेदं शङ्खे यो हि करोति च। भार्याहीनो भवेत् सोऽपि रोगी च सप्तजन्मसु॥ शालग्रामं च तुलसीं शङ्खमेकत्र एव च। यो रक्षति महाज्ञानी स भवेत् श्रीहरिप्रियः॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृति० २१। ९४—९६)

तुलसीपत्रविच्छेदं शालग्रामे करोति यः। तस्य जन्मान्तरे भद्रे स्त्रीविच्छेदो भविष्यति॥ तुलसीपत्रविच्छेदं शङ्खं हित्वा करोति यः। भार्याहीनो भवेत्सोऽपि रोगी स्यात्सप्तजन्मसु॥ शालग्रामश्च तुलसी शङ्खं चैकत्र एव हि। यो रक्षति महाज्ञानी स भवेच्छ्रीहरिप्रियः॥ (शिवपुराण, रुद्र० युद्ध० ४१। ५३—५५)

तुलसीपत्रविच्छेदं शालग्रामे करोति यः। तस्य जन्मान्तरे कान्ते स्त्रीविच्छेदो भविष्यति॥ तुलसीपत्रविच्छेदं शङ्खं यो हि करोति च। भार्याहीनो भवेत् सोऽपि रोगी च सप्तजन्मसु॥ शालग्रामं च तुलसीं शङ्खं चैकत्र एव च। यो रक्षति महाज्ञानी स भवेच्छ्रीहरेः प्रियः॥ (देवीभागवत ९। २४। ९१—९३)

९. शालग्रामको बेचनेवाला और खरीदनेवाला—दोनों ही नरकमें जाते हैं।

१०. शिवलिंगपर चढ़े हुए फल, फूल, नैवेद्य, पत्र एवं जल ग्रहण करना निषिद्ध है। यदि शालग्रामसे उनका स्पर्श हो जाय तो वे ग्रहण करनेयोग्य हो जाते हैं।

११. घरमें अँगूठेके पर्वसे लेकर एक बित्ता परिमाणकी ही प्रतिमा होनी चाहिये। इससे बड़ी प्रतिमा घरमें शुभ नहीं है।

१२. घरमें टूटी-फूटी अथवा अग्निसे जली हुई प्रतिमाकी पूजा नहीं करनी चाहिये। ऐसी मूर्तिकी पूजा करनेसे गृहस्वामीके मनमें उद्वेग या अनिष्ट होता है।

१३. घरमें प्रतिदिन पूजाके लिये वही प्रतिमा कल्याणदायिनी होती है, जो स्वर्ण आदि धातुओंकी बनी हो तथा कम-से-कम अँगूठेके बराबर तथा अधिक-से-अधिक एक बित्तेकी हो। जो टेढ़ी हो, जली

---

९. शालग्रामशिलायां यो मूल्यमुद्घाटयेन्नरः। विक्रेता चानुमन्ता च यः परीक्षानुमोदकः॥ सर्वे ते नरकं यान्ति यावत्सूर्यश्च सम्प्लवः। अतस्तद्वर्जयेद्देवि चक्रक्रयणविक्रयम्॥ (पद्मपुराण, पाताल० ७९। १२-१३)

शालग्रामशिलायास्तु मूल्यमुद्घाटयेत्क्वचित्॥ विक्रेता क्रयकर्त्ता च नरके नीयते ध्रुवम्। (वराहपुराण १८६। ५५-५६)

१०. अग्राह्यं शिवनिर्माल्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम्॥ शालग्रामशिलास्पर्शात्सर्वं याति पवित्रताम्। (नारदपुराण, पूर्व० ६७। १२३-१२४)

अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम्। शालग्रामशिलासङ्गात्सर्वं याति पवित्रताम्॥ (शिवपुराण, वि० २२। १९)

अभक्ष्यं शिवनिर्माल्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम्॥ शालग्रामशिलायोगात् पावनं तद् भवेत् सदा। (वराहपुराण १८६। ५२-५३)

११. अङ्गुष्ठपर्वादारभ्य वितस्तिर्यावदेव तु। गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः॥ (मत्स्यपुराण २५८। २२)

१२. गृहेऽग्निदग्धा भग्ना वा नैव पूज्या वसुन्धरे। आसान्तु पूजनाद्गेहे उद्वेगं प्राप्नुयाद् गृही॥ (वराहपुराण १८६। ४३)

१३. अङ्गुष्ठादिवितस्त्यतमाना स्वर्णादिधातुभिः। निर्मिता शुभदा गेहे पूजनाय दिने दिने॥ वक्रां दग्धां खण्डितां च भिन्नमूर्द्धदृशं पुनः। स्पृष्टां वाप्यन्त्यजाद्यैश्च प्रतिमां नैव

हुई हो, खण्डित हो, जिसका मस्तक या आँख फूटी हुई हो अथवा जिसे चाण्डाल आदि अस्पृश्य मनुष्योंने छू दिया हो, वैसी प्रतिमाकी पूजा नहीं करनी चाहिये।

१४. घरमें दो शिवलिंग, तीन गणेश, दो शंख, दो सूर्यप्रतिमा, तीन देवी-प्रतिमा, दो गोमती-चक्र और दो शालग्रामका पूजन नहीं करना चाहिये। इनका पूजन करनेसे गृहस्वामीको दुःख, अशान्तिकी प्राप्ति होती है।

१५. मनुष्यको चित्रों एवं मन्दिरोंमें कहीं भी सूर्यके चरणोंको नहीं बनाना या बनवाना चाहिये। यदि कोई सूर्यके चरणोंका निर्माण करता या करवाता है, वह दुर्गतिको प्राप्त होता है तथा इस लोकमें दुःख भोगता हुआ कुष्ठरोगी हो जाता है।*

पूजयेत्॥ (नारदपुराण, पूर्व० ६७। ३२-३३)

१४. शङ्खचक्रशिलालिङ्गविघ्नसूर्यद्वयं तथा॥ शक्तित्रयं न चैकत्र पूजयेद्दुःखकारणम्। (नारदपुराण, पूर्व० ६७। १२०-१२१)

गृहे लिङ्गद्वयं नार्च्यं शालग्रामत्रयं तथा॥ द्वे चक्रे द्वारकायास्तु नार्च्यं सूर्यद्वयं तथा। गणेशत्रितयं नार्च्यं शक्तित्रितयमेव च॥ (वराहपुराण १८६। ४०-४१)

१५. न शशाक च तद् द्रष्टुं पादरूपं रवेः पुनः। अद्यापि च ततः पादौ न कश्चित्कारयेत्क्वचित्॥ यः करोति स पापिष्ठो गतिमाप्नोति निन्दिताम्। कुष्ठरोगमवाप्नोति लोकेऽस्मिन्दुःखसंज्ञितम्॥ तस्मान्न धर्मकामार्थी चित्रेष्वायतनेषु च। न क्वचित् कारयेत् पादौ देवदेवस्य धीमतः॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ८। ६६—६८)

न शशाकाथ तद् द्रष्टुं पादरूपं रवेः पुनः। अर्चास्वपि ततः पादौ न कश्चित् कारयेत् क्वचित्॥ यः करोति स पापिष्ठां गतिमाप्नोति निन्दिताम्। कुष्ठरोगमवाप्नोति लोकेऽस्मिन् दुःखसंयुतः॥ तस्माच्च धर्मकामार्थी चित्रेष्वायतनेषु च। न क्वचित् कारयेत् पादौ देवदेवस्य धीमतः॥ (मत्स्यपुराण ११। ३१—३३)

---

* त्वष्टा (विश्वकर्मा)-की पुत्री संज्ञाका विवाह सूर्यसे हुआ था। संज्ञा सूर्यके तेजको सहन न कर सकी। त्वष्टाने सूर्यसे प्रार्थना की कि मैं आपके इस असह्य तेजको खरादकर कुछ कम कर दूँ, जिससे आपका रूप लोगोंके लिये आनन्दप्रद हो जाय। सूर्यने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। त्वष्टाने सूर्यके तेजको छाँटकर अलग कर दिया और उससे सुदर्शनचक्र आदि आयुधोंका निर्माण किया। परन्तु वे सूर्यके पैरोंके तेजको देखनेमें समर्थ न हो सके, इसलिये सूर्यके पैरोंका तेज ज्यों-का-त्यों बना रह गया।

१६. लक्ष्मीकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको सिरस, धतूरा, मातुलुंगी, मालती, सेमल, मदार और कनेरके फूलोंसे तथा अक्षतोंके द्वारा विष्णुकी पूजा नहीं करनी चाहिये। इसी प्रकार पलाश, कुन्द, सिरस, जूही, मालती और केवड़ेके फूलोंसे शंकरकी, तुलसीसे गणेशकी, दूर्वा (दूब)-से दुर्गाकी और अगस्त्यके फूलोंसे सूर्यकी पूजा नहीं करनी चाहिये।

१७. केतकी, कुटज, कुन्द, बन्धूक (दुपहरिया), नागकेसर, जवा तथा मालती—ये फूल भगवान् शंकरको नहीं चढ़ाने चाहिये। मातुलिंग (बिजौरा नींबू) और तगर कभी सूर्यको नहीं चढ़ाये। दूर्वा, आक और मदार—ये दुर्गाको अर्पण न करे। पलाश और कासके फूलोंसे तथा तमाल, तुलसी, आँवला और दूर्वाके पत्तोंसे कभी दुर्गाकी पूजा न करे। गणेशजीके पूजनमें तुलसीको सर्वथा त्याग दे।

१८. पत्र, पुष्प और फलको देवतापर अधोमुख करके नहीं चढ़ाना चाहिये। वे पत्र-पुष्पादि जिस रूपमें उत्पन्न हों, उसी रूपमें उन्हें देवतापर चढ़ाना चाहिये।

---

१६. शिरीषोन्मत्तगिरिजामल्लिकाशाल्मलीभवैः। अर्कजैः कर्णिकारैश्च विष्णुर्नार्च्यस्तथाऽक्षतैः॥ जपाकुन्दशिरीषैश्च यूथिकामालतीभवैः। केतकीभवपुष्पैश्च नैवार्च्यः शङ्करस्तथा॥ गणेशं तुलसीपत्रैर्दुर्गां नैव च दुर्वया। मुनिपुष्पैस्तथा सूर्यं लक्ष्मीकामो न चार्चयेत्॥ (पद्मपुराण, उत्तर० ९२। २५—२७)

१७. केतकीं कुटजं कुन्दं बन्धूकं केसरं जपाम्। मालतीपुष्पकं चैव नार्पयेत्तु महेश्वरे॥ मातुलिंगं च तगरं रवौ नैवार्पयेत्क्वचित्। शक्तौ दूर्वार्कमन्दारान् गणेशे तुलसीं त्यजेत्॥ पलाशकाशकुसुमैस्तमालतुलसीदलैः। धात्रीदलैश्च दूर्वाभिर्नार्चयेज्जगदम्बिकाम्॥ (नारदपुराण, पूर्व० ६७। ६१-६२, ६९)

१८. नार्पयेत्कुसुमं पत्रं फलं देवे ह्यधोमुखम्। पुष्पपत्रादिकं विप्र यथोत्पन्नं तथार्पयेत्॥ (नारदपुराण, पूर्व० ६७। ७०)

१९. स्नानके बाद पुष्पचयन न करे; क्योंकि वे पुष्प देवतापर चढ़ानेयोग्य नहीं माने गये हैं।

२०. पूर्णिमा, अमावस्या, द्वादशी, सूर्यसंक्रान्ति, मध्याह्नकाल, रात्रि, दोनों सन्ध्याएँ, अशौचके समय, रातमें सोनेके पश्चात् बिना स्नान किये—इन समयोंमें तथा तेल लगाकर जो मनुष्य तुलसीके पत्तोंको तोड़ते हैं, वे मानो भगवान् श्रीहरिके मस्तकका छेदन करते हैं।

२१. सूखे पत्तों, फूलों और फलोंसे कभी देवताका पूजन नहीं करना चाहिये। आँवला, खैर, बिल्व और तमालके पत्र यदि छिन्न-भिन्न भी हों तो विद्वान् पुरुष उन्हें दूषित नहीं कहते। कमल और आँवला तीन दिनोंतक शुद्ध रहते हैं। तुलसी और बिल्वपत्र सदा शुद्ध रहते हैं।

२२. कार्तवीर्यको दीप प्रिय है, सूर्यको नमस्कार प्रिय है, विष्णुको स्तुति प्रिय है, गणेशको तर्पण प्रिय है, दुर्गाको अर्चना प्रिय है और

---

१९. स्नात्वा पुष्पं न गृह्णीयात् देवायोग्यन्तदीरितम्॥ (अग्निपुराण १६६। १९)

२०. पूर्णिमायाममायाञ्च द्वादश्यां रविसंक्रमे। तैलाभ्यङ्गे चास्नाते च मध्याह्ने निशिसन्ध्ययोः॥ अशौचेऽशुचिकाले वा रात्रिवासान्विते नराः। तुलसीं ये च छिन्नन्ति ते छिन्नन्ति हरेः शिरः॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृति० २१। ५०-५१)

पूर्णिमायाममायां च द्वादश्यां रविसङ्क्रमे। तैलाभ्यङ्गं च कृत्वा च मध्याह्ने निशि सन्ध्ययो॥ आशौचेऽशुचिकाले ये रात्रिवासोऽन्विता नराः। तुलसीं ये विचिन्वन्ति ते छिन्दन्ति हरेः शिरः॥ (देवीभागवत ९। २४। ४९-५०)

२१. शुष्कैस्तु नार्चयेद्देवं पत्रैः पुष्पैः फलैरपि॥ धात्रीखदिरबिल्वानां तमालस्य दलानि च। छिन्नभिन्नान्यपि मुने न दूष्याणि जगुर्बुधाः॥ पद्ममामलकं तिष्ठेच्छुद्धं चैव दिनत्रयम्। सर्वदा तुलसी शुद्धा बिल्वपत्राणि वै तथा॥ (नारदपुराण, पूर्व० ६७। ६६—६८)

२२. दीपप्रियः कार्तवीर्यो मार्तण्डो नतिवल्लभः। स्तुतिप्रियो महाविष्णुर्गणेशस्तर्पणप्रियः॥ दुर्गाऽर्चनप्रिया नूनमभिषेकप्रियः शिवः। तस्मात्तेषां प्रतोषाय विदध्यात्तत्तदादृतः॥ (मन्त्रमहोदधि १७। ११६-११७)

शिवको अभिषेक प्रिय है। अतः इन देवताओंको प्रसन्न करनेके लिये इनके प्रिय कार्य ही करने चाहिये।

२३. विष्णुके मन्दिरकी चार बार, शंकरके मन्दिरकी आधी बार, देवीके मन्दिरकी एक बार, सूर्यके मन्दिरकी सात बार और गणेशके मन्दिरकी तीन बार परिक्रमा करनी चाहिये।

२४. घीका दीपक देवताके दायें भागमें और तेलका दीपक बायें भागमें रखना चाहिये।

२५. प्रदक्षिणा, प्रणाम, पूजा, हवन, जप और गुरु तथा देवताके दर्शनके समय गलेमें वस्त्र नहीं लपेटना चाहिये।

२६. अँधेरी रातमें बिना दीपक जलाये भगवान्‌के विग्रहका स्पर्श करना, श्मशानभूमिसे लौटकर बिना स्नान किये भगवान्‌का स्पर्श करना, मदिरा या मांसका सेवन करके भगवान्‌की पूजा करना, दूसरेके वस्त्रको पहनकर भगवान्‌की पूजा करना, भगवान्‌को चन्दन और माला अर्पण

दीपप्रियः.................. विदध्यात्तत्तदादरात्॥
(नारदपुराण, पूर्व० ७६। ११५-११६)

२३. देव्याः प्रदक्षिणामेकां सप्त सूर्यस्य भूमिप॥ तिस्रो विनायकस्यापि चतस्रो विष्णुमन्दिरे। (नारदपुराण, पूर्व० १३। १३६-१३७)

विष्णुसोमार्कविघ्नानां वेदार्धेद्वद्रिवह्नयः॥ (नारदपुराण, पूर्व० ६७। १०५)

२४. घृतदीपो दक्षिणे स्यात् तैलदीपस्तु वामतः। (मन्त्रमहोदधि २२। ११९)

२५. प्रदक्षिणे प्रणामे च पूजायां हवने जपे॥ न कण्ठावृतवस्त्रः स्याद्दर्शने गुरुदेवयोः। (वाधूलस्मृति १३९-१४०)

२६. यस्तु मामन्धकारेषु विना दीपेन सुन्दरि। स्पृशते च विना शास्त्रं त्वरमाणो विमोहितः॥ पतनं तस्य वक्ष्यामि शृणुष्व त्वं वसुन्धरे। तेन क्लेशं समासाद्य क्लिश्यते च नराधमः॥ (वराहपुराण १३५। ८-९)

श्मशानं यो नरो गत्वा अस्नात्वैव तु मां स्पृशेत्॥ मम दोषापराधस्य शृणु तत्त्वेन यत्फलम्। (वराहपुराण १३६। ८-९)

मद्यं पीत्वा वरारोहे यस्तु मामुपसर्पति॥ तत्र दोषं प्रवक्ष्यामि शृणु सुन्दरि तत्त्वतः। (वराहपुराण १३६। ७०-७१)

जालपादं भक्षयित्वा यस्तु मामुपसर्पति। जालपादस्ततो भूत्वा वर्षाणि दश

किये बिना ही धूप देना, भेरी आदिके द्वारा शब्द किये बिना ही भगवान्‌को जगाना—ये सब अपराध हैं, जिनसे मनुष्यको बचना चाहिये।

२७. ये बत्तीस अपराध ऐसे हैं, जिन्हें मन्दिरमें भगवान्‌के सामने नहीं करना चाहिये—१. भगवान्‌के मन्दिरमें जूते-खड़ाऊँ पहनकर अथवा सवारीपर चढ़कर जाना, २. रथयात्रा, जन्माष्टमी आदि भगवत्सम्बन्धी उत्सवोंको न करना या उनके दर्शन न करना, ३. भगवान्‌के सामने जाकर प्रणाम न करना, ४. अशुद्ध अवस्थामें भगवान्‌के दर्शन करना, ५. एक हाथसे प्रणाम करना, ६. भगवान्‌के सामने ही एक स्थानपर खड़े-खड़े परिक्रमा करना, ७. भगवान्‌के आगे पैर फैलाकर बैठना, ८. पलंग या खाटपर बैठना, ९. भगवान्‌के सामने सोना, १०. भगवान्‌के सामने खाना ११. भगवान्‌के सामने झूठ बोलना, १२. भगवान्‌के सामने जोर-जोरसे बोलना, १३. परस्पर बातचीत करना, १४. रोना-चिल्लाना १५. झगड़ा करना, १६. भगवान्‌के सामने किसीको पीड़ा देना, १७. भगवान्‌के सामने किसीपर अनुग्रह करना, १८. भगवान्‌के सामने स्त्रियोंसे रागपूर्वक बातें करना, १९. भगवान्‌के सामने कम्बल ओढ़ना, २०. भगवान्‌के सामने दूसरेकी निन्दा

पञ्च च॥ (वराहपुराण १३५। ५३)

यः पारक्येण वस्त्रेण न धूतेन च माधवि। प्रायश्चित्ती भवेन्मूर्खो मम कर्मपरायणः॥ (वराहपुराण १३६। ८३)

अदत्त्वा गन्धमाल्यानि यो मे धूपं प्रयच्छति॥ कुणपो जायते भूमे यातुधानो न संशयः। (वराहपुराण १३६। ९७-९८)

भेरीशब्दमकृत्वा तु यस्तु मां प्रतिबोधयेत्। बधिरो जायते भूमे एकं जन्म न संशयः॥ (वराहपुराण १३६। १०८)

२७. पुरतो वासुदेवस्य न स भागवतः कलौ। यानैर्वा पादुकाभिर्वा यानं भगवतो गृहे॥ देवोत्सवेषु सेवा च अप्रणामस्तदग्रतः। उच्छिष्टे चैव चाशौचे भगवद्वन्दनादिकम्॥ एकहस्तप्रणामश्च तत्पुरस्तात्प्रदक्षिणम्। पादप्रसारणञ्चाग्रे तथा पर्यङ्कसेवनम्॥ शयनं भक्षणं चापि मिथ्याभाषणमेव च। उच्चैर्भाषामिथो जल्पो रोदनानि च विग्रहः॥

करना, २१. भगवान्‌के सामने दूसरेकी स्तुति करना, २२. भगवान्‌के सामने अश्लील शब्द बोलना या गाली बकना, २३. भगवान्‌के सामने अधोवायुका त्याग करना, २४. शक्ति रहते हुए भी गौण (सामान्य) उपचारोंसे पूजा करना, २५. भगवान्‌को भोग लगाये बिना ही कोई वस्तु खाना-पीना, २६. जिस ऋतुमें जो फल हो, उसे पहले भगवान्‌को न चढ़ाना, २७. उपयोगमें लानेसे बचे हुए शाक-फल आदिको भगवान्‌के लिये देना, २८. भगवान्‌के श्रीविग्रहको पीठ देकर बैठना, २९. भगवान्‌के सामने दूसरे किसीको भी प्रणाम करना, ३०. गुरुके विषयमें मौन रहना अर्थात् उनकी स्तुति, महिमा आदि न करना, ३१. अपने मुखसे अपनी प्रशंसा करना, ३२. किसी भी देवताकी निन्दा करना।

२८. नवरात्रमें कन्या-पूजनके समय एक वर्षकी अवस्थावाली कन्या नहीं लेनी चाहिये। 'कुमारी' वही कहलाती है, जो कम-से-कम दो वर्षकी हो चुकी हो। तीन वर्षकी कन्याको 'त्रिमूर्ति' और चार वर्षकी कन्याको 'कल्याणी' कहते हैं। पाँच वर्षवालीको 'रोहिणी', छः वर्षवालीको 'कालिका', सात वर्षवालीको 'चण्डिका', आठ वर्षवालीको 'शाम्भवी', नौ वर्षवालीको 'दुर्गा' और दस वर्षवालीको 'सुभद्रा' कहा

निग्रहानुग्रहौ चैव स्त्रीषु साकूतभाषणम्। कम्बलावरणं चैव परनिन्दा परस्तुतिः॥ अश्लीलभाषणं चैव अधोवायुविमोक्षणम्। शक्तौ गौणोपचारश्चाप्यनिवेदितभक्षणम्॥ तत्तत्कालोद्भवानां च फलादीनामनर्पणम्। विनियुक्तावशिष्टस्य प्रदानं व्यञ्जनस्य यत्॥ स्पृष्टीकृत्याशनं चैव परनिन्दा परस्तुतिः। गुरौ मौनं निजस्तोत्रं देवतानिन्दनं तथा॥ अपराधास्तथा विष्णोर्द्वात्रिंशत्परिकीर्तिताः॥

(पद्मपुराण, पाताल० ७९। ३६—४४)

२८. एकवर्षा न कर्तव्या कन्या पूजाविधौ नृप। परमज्ञा तु भोगानां गन्धादीनां च बालिका॥ कुमारिका तु सा प्रोक्ता द्विवर्षा या भवेदिह। त्रिमूर्तिश्च त्रिवर्षा च कल्याणी चतुरब्दिका॥ रोहिणी पञ्चवर्षा च षड्वर्षा कालिका स्मृता। चण्डिका

गया है। इससे ऊपर अवस्थावाली कन्याकी पूजा नहीं करनी चाहिये। वह सभी कार्योंमें निन्द्य मानी जाती है।

२९. सूर्यसे आरोग्यकी, अग्निसे श्रीकी, शिवसे ज्ञानकी, विष्णुसे मोक्षकी, दुर्गा आदिसे रक्षाकी, भैरव आदिसे कठिनाइयोंसे पार पानेकी, सरस्वतीसे विद्याके तत्त्वकी, लक्ष्मीसे ऐश्वर्य-वृद्धिकी, पार्वतीसे सौभाग्यकी, शचीसे मंगलवृद्धिकी, स्कन्दसे सन्तान-वृद्धिकी और गणेशसे सभी वस्तुओंकी इच्छा (याचना) करनी चाहिये।

३०. भगवान् शंकर श्वेतार्कपुष्पसे, चन्द्रमा वस्त्रके तन्तुसे, भगवान् विष्णु स्मरणमात्रसे और साधुजन हाथ जोड़नेसे प्रसन्न हो जाते हैं।

सप्तवर्षा स्यादष्टवर्षा च शाम्भवी॥ नववर्षा भवेद्दुर्गा सुभद्रा दशवार्षिकी। अत ऊर्ध्वं न कर्तव्या सर्वकार्यविगर्हिता॥ (देवीभागवत ३। २६। ४०—४३)

२९. आरोग्यं भास्करादिच्छेच्छ्रियमिच्छेद्धुताशनात्। ईश्वराज्ज्ञानमन्विच्छेन्मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात्॥ दुर्गादिभिस्तथा रक्षां भैरवाद्यैस्तु दुर्गमम्। विद्यासारं सरस्वत्या लक्ष्म्या चैश्वर्यवर्धनम्॥ पार्वत्या चैव सौभाग्यं शच्या कल्याणसन्ततिम्। स्कन्दात् प्रजाभिवृद्धिं च सर्वं चैव गणाधिपात्॥ (लौगाक्षिस्मृति)

३०. शम्भुः श्वेतार्कपुष्पेण चन्द्रमा वस्त्रतन्तुना। अच्युतः स्मृतिमात्रेण साधवः करसम्पुटैः॥

पितृकार्य (श्राद्ध-तर्पण)

१. श्राद्धके द्वारा प्रसन्न हुए पितृगण मनुष्योंको पुत्र, धन, विद्या, आयु, आरोग्य, लौकिक सुख, मोक्ष तथा स्वर्ग आदि प्रदान करते हैं।

२. श्राद्धके योग्य समय हो या न हो, तीर्थमें पहुँचते ही मनुष्यको सर्वदा स्नान, तर्पण और श्राद्ध करना चाहिये।

३. शुक्लपक्षकी अपेक्षा कृष्णपक्ष और पूर्वाह्णकी अपेक्षा अपराह्ण श्राद्धके लिये श्रेष्ठ माना जाता है।

---

१. भक्त्या तुष्यन्ति पितरस्तुष्टाः कामान्दिशन्ति ते। पुत्रं पौत्रं धनं धान्यं कामोन्यान्मनसेच्छति॥ भक्त्याचाराधितो दद्यान्नृणां प्रीतः पितामह।
(पद्मपुराण, सृष्टि० ३४। २१७-२१८)

पितॄन्प्रीणाति यो भक्त्या ते पुनः प्रीणयन्ति तम्। यच्छन्ति पितरः पुष्टिं स्वर्गारोग्यं प्रजाफलम्॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ९। ६७)

एवमायुर्धनं विद्यां स्वर्गमोक्षसुखानि च। प्रयच्छन्ति सुतं राज्यं नृणां तुष्टाः पितामहाः॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० १०। १२५)

आयुः प्रज्ञां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च। प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः॥ (याज्ञवल्क्यस्मृति १। २७०)

प्रजां पुष्टिं यशः स्वर्गमारोग्यं च धनं तथा। नृणां श्राद्धैः सदा प्रीताः प्रयच्छन्ति पितामहाः॥ (शंखस्मृति १४। ३३)

आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च। प्रयच्छन्तु तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः॥ (लघ्वाश्वलायनस्मृति २३। १०२)

आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च॥ प्रयच्छन्ति तथा राज्यं पितरः श्राद्धतर्पिताः। (ब्रह्मपुराण २२०। ११९-१२०)

२. अकालेऽप्यथकाले वा तीर्थे श्राद्धं सदा नरैः॥ प्राप्तैरेव सदा स्नानं कर्तव्यं पितृतर्पणम्। पिण्डदानं च कर्तव्यं पितॄणां चातिवल्लभम्॥
(पद्मपुराण, सृष्टि० ३४। २१८-२१९)

३. यथा चैवापरः पक्षः पूर्वपक्षाद्विशिष्यते। तथा श्राद्धस्य पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यते॥ (मनुस्मृति ३। २७८; महाभारत, अनु० ८७। १९)

यथैव शुक्लपक्षाद्वै पितॄणामसितः प्रियः॥ तथापराह्णः पूर्वाह्णात् पितॄणामतिरिच्यते।
(मार्कण्डेयपुराण ३१। ३५-३६)

४. पूर्वाह्णमें, शुक्लपक्षमें, रात्रिमें, अपने जन्मदिनमें और युग्म दिनोंमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये।

५. सायंकालमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये। सायंकालका समय राक्षसी बेला नामसे प्रसिद्ध है, जो सभी कार्योंमें निन्दित है।

६. रात्रिमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये, उसे राक्षसी कहा गया है। दोनों सन्ध्याओंमें तथा पूर्वाह्णकालमें भी श्राद्ध नहीं करना चाहिये।

७. चतुर्दशीको श्राद्ध करनेसे कुप्रजा (निन्दित सन्तान) पैदा होती है। परन्तु जिसके पितर युद्धमें शस्त्रसे मारे गये हों, वे चतुर्दशीको श्राद्ध करनेसे प्रसन्न होते हैं।

८. चतुर्दशीको श्राद्ध नहीं करना चाहिये। जो चतुर्दशीको श्राद्ध करता है, उसके घरमें नवयुवकोंकी मृत्यु होती है तथा श्राद्ध करनेवाला स्वयं भी युद्धका भागी होता है।*

---

४. पूर्वाह्णे शुक्लपक्षे च रात्रौ जन्मदिनेषु वा। युग्मेष्वहस्सु च श्राद्धं न च कुर्वीत पण्डितः॥ (महाभारत, अनु० १४५)

५. सायाह्नस्त्रिमुहूर्तः स्याच्छ्राद्धं तत्र न कारयेत्। राक्षसी नाम सा वेला गर्हिता सर्वकर्मसु॥ (मत्स्यपुराण २२। ८३; स्कन्दपुराण, प्रभास० २०५। ४-५)

६. रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत राक्षसी कीर्तिता हि सा। सन्ध्ययोरुभयोश्चैव सूर्ये चैवाचिरोदिते॥ (मनुस्मृति ३। २८०)

न च नक्तं श्राद्धं कुर्वीत। (आपस्तम्बधर्मसूत्र २। ७। १७। २३)

७. 'चतुर्दश्यां तु कुप्रजाः' (कूर्मपुराण, उ० २०। २१)

तस्माच्छ्राद्धं न कर्तव्यं चतुर्दश्यां द्विजातिभिः। शस्त्रेण तु हतानां वै तत्र श्राद्धं प्रकल्पयेत्॥ (कूर्मपुराण, उ० २०। २२)

प्रतिपत्प्रभृतिष्वेतान् वर्जयित्वा चतुर्दशीम्। शस्त्रेण तु हता ये वै तेभ्यस्तत्र प्रदीयते॥ (याज्ञवल्क्यस्मृति १। २६४)

प्रतिपत्प्रभृतिह्येतद्वर्ज्जयित्वा चतुर्दशीम्। शस्त्रेण तु हता ये वै तेषां श्राद्धं प्रदीयते॥ (ब्रह्मोक्त याज्ञवल्क्यसंहिता ५। २०)

८. पितृपक्षे चतुर्दश्यां यः श्राद्धं कुरुते नरः। सन्ततिस्तु हनिष्यन्ति विनाशस्त्रहते मृते॥ श्राद्धं दानं चतुर्दश्यां विनाशस्त्रनिपातने। ज्येष्ठपुत्रो विनश्यति पितॄणां वा अधोगतिः॥ (ब्रह्मोक्त याज्ञवल्क्यसंहिता ५। २१-२२)

अवश्यं तु युवानोऽस्य प्रमीयन्ते नरा गृहे॥ युद्धभागी भवेन्मर्त्यः कुर्वञ्छ्राद्धं चतुर्दशीम्। (महाभारत, अनु० ८७। १६-१७)

* जिनकी मृत्यु शस्त्रसे न होकर स्वाभाविक ही चतुर्दशीको हुई हो, उनका श्राद्ध दूसरे दिन (अमावस्याको) करना चाहिये।

९. कृष्णपक्षमें केवल चतुर्दशीको छोड़कर दशमीसे अमावस्या-तककी सभी तिथियाँ श्राद्धकर्ममें जैसी श्रेष्ठ मानी गयी हैं, वैसी दूसरी (प्रतिपदासे नवमीतक) नहीं।

१० दिनके आठवें भाग (मुहूर्त)-में जब सूर्यका ताप घटने लगता है, उस समयका नाम 'कुतप' है। उसमें पितरोंके लिये दिया हुआ दान अक्षय होता है।

११. मध्याह्नकाल, खड्गपात्र, नेपालकम्बल, चाँदी, कुश, तिल, गौ और दौहित्र—ये आठों भी 'कुतप' नामसे प्रसिद्ध हैं।

१२. श्राद्धमें तीन वस्तुएँ अत्यन्त पवित्र हैं—दुहितापुत्र, कुतपकाल तथा तिल। श्राद्धमें तीन वस्तुएँ अत्यन्त प्रशंसनीय हैं—बाहर-भीतरकी

---

९. कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम्। श्राद्धे प्रशस्तास्तिथयो यथैता न तथेतराः॥ (मनुस्मृति ३। २७६)। ...... श्राद्धकर्मणि तिथ्यस्तु प्रशस्ता न तथेतराः॥ (महाभारत, अनु० ८७। १८)

१०. दिवसस्याष्टमे भागे मन्दी भवति भास्करः। स कालः कुतपो ज्ञेयः पितॄणां दत्तमक्षयम्॥ (वसिष्ठस्मृति ११। ३३)। दिवसस्याष्टमे भागे मन्दी भवति भास्करे। स कालः कुतपो नाम पितॄणां दत्तमक्षयम्॥ (महाभारत, आदि० ९३)

मुहूर्तास्तत्र विज्ञेया दश पञ्च च सर्वदा। तत्राष्टमो मुहूर्तो यः स कालः कुतपः स्मृतः॥ (प्रजापतिस्मृति १५९)। अह्नो मुहूर्ता विख्याता दश पञ्च ...... स्मृतः॥ (मत्स्यपुराण २२। ८४)। अह्नो मुहूर्ता विख्याता ...... स्मृतः। मध्याह्नात्सर्वदा यस्मान्मन्दी भवति भास्करः॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ११। ८५-८६)

११. तस्मादनन्तफलदस्तत्रारम्भो विशिष्यते। खड्गपात्रं च कुतपस्तथा नैपालकम्बलः॥ रुक्मं दर्भास्तिलागावो दौहित्रश्चाष्टमः स्मृतः। (पद्मपुराण, सृष्टि० ११। ८७-८८)

मध्याह्नखड्गपात्रं च तथा नेपालकम्बलः। रूप्यं दर्भास्तिला गावो दौहित्रश्चाष्टमः स्मृतः॥ (मत्स्यपुराण २२। ८६)

१२. त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः। त्रीणि चात्र प्रशंसन्ति शौचमक्रोधमत्वराम्॥ (मनुस्मृति ३। २३५; वसिष्ठस्मृति ११। ३२; महाभारत, आदि० ९३, अनु० १४५; स्कन्दपुराण, प्रभास० २०५। १३)

त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः। रजतस्य तथा दानं कथासंकीर्तनादिकम्॥ वर्ज्यानि कुर्वता श्राद्धं क्रोधोऽध्वगमनं त्वरा। भोक्तुरप्यत्र राजेन्द्र त्रयमेतन्न शस्यते॥ (विष्णुपुराण ३। १५। ५२-५३)

शुद्धि, क्रोध न करना तथा जल्दबाजी न करना।

१३. श्राद्ध एकान्तमें, गुप्तरूपसे करना चाहिये। पिण्डदान-पर साधारण, नीच मनुष्योंकी दृष्टि पड़नेपर वह पितरोंको नहीं पहुँचता।

१४. दूसरेकी भूमिपर श्राद्ध नहीं करना चाहिये। जंगल, पर्वत, पुण्यतीर्थ और देवमन्दिर—ये दूसरेकी भूमिमें नहीं आते; क्योंकि इनपर किसीका स्वामित्व नहीं होता।

१५. मनुष्य देवकार्यमें तो ब्राह्मणकी परीक्षा न करे, पर पितृकार्यमें तो प्रयत्नपूर्वक ब्राह्मणकी परीक्षा करे।

१६. श्राद्धमें पितरोंकी तृप्ति ब्राह्मणोंके द्वारा ही होती है।

त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः॥ वर्ज्यानि चाहुर्विप्रेन्द्र कोपोऽध्वगमनं त्वरा। (मार्कण्डेयपुराण ३१। ६३-६४)

१३. एकान्ते तु गृहे गुप्ते पितॄणां श्राद्धमिष्यते। नीचदृष्ट्या हतं तच्च पितॄन्नैवोपतिष्ठति॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्राद्धं गुप्तं च कारयेत्। पितॄणां तृप्तिदं प्रोक्तं स्वयमेव स्वयम्भुवा॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ३४। २०७-२०८)

१४. पारक्ये भूमिभागे तु पितॄणां नैव निर्वपेत्। स्वामिभिस्तद् विहन्येत मोहाद्यत् क्रियते नरैः॥ अटव्यः पर्वताः पुण्यास्तीर्थान्यायतनानि च। सर्वाण्यस्वामिकान्याहुर्न हि तेषु परिग्रहः॥ (कूर्मपुराण, उ० २२। १६-१७)

१५. न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित्। पित्र्ये कर्मणि तु प्राप्ते परीक्षेत प्रयत्नतः॥ (मनुस्मृति ३। १४९)

दैवे कर्मणि ब्राह्मणं न परीक्षेत। प्रयत्नात् पित्र्ये परीक्षेत। (विष्णुस्मृति ८२)

ब्राह्मणान्न परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित्। पित्र्ये कर्मणि सम्प्राप्ते युक्तमाहुः परीक्षणम्॥ (शंखस्मृति १४। १)

ब्राह्मणं न परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित्। पित्र्ये कर्मणि सम्प्राप्ते परीक्षेत प्रयत्नतः॥ (व्याघ्रपादस्मृति २७५)

न ब्राह्मणान्परीक्षेत देवकर्मण्युपस्थिते। पैत्रकर्मणि सम्प्राप्ते परीक्षेत प्रयत्नतः॥ (स्कन्दपुराण, प्रभास० २०५। ५८)

१६. श्राद्धार्हान्ब्राह्मणांस्तेन सृजता पद्मयोनिना। (स्कन्दपुराण, नागर० २२१। ४७)

१७. श्राद्धके अवसरपर ब्राह्मणको निमन्त्रित करना आवश्यक है। जो बिना ब्राह्मणके श्राद्ध करता है, उसके घर पितर भोजन नहीं करते तथा शाप देकर लौट जाते हैं। ब्राह्मणहीन श्राद्ध करनेसे मनुष्य महापापी होता है।

१८. श्राद्धका भोजन स्त्रीको नहीं कराना चाहिये।

१९. यदि श्राद्ध-भोजन करनेवाले एक हजार ब्राह्मणोंके सम्मुख एक भी योगी हो तो वह यजमानके सहित उन सबका उद्धार कर देता है।

२०. जिस श्राद्धमें दस लाख बिना पढ़े हुए ब्राह्मण भोजन करते हैं, वहाँ यदि वेदोंका ज्ञाता एक ही ब्राह्मण भोजन करके सन्तुष्ट हो जाय तो उन दस लाख ब्राह्मणोंके बराबर फलको देता है।

२१. देवकार्यमें दो और पितृकार्यमें तीन अथवा दोनोंमें एक-एक

---

१७. तस्माद्विप्रः प्रकर्तव्यो दाने श्राद्धे च पर्वसु। आदौ परीक्षयेद्विप्रं श्राद्धे दाने प्रकारयेत्॥ नाश्नन्ति तस्य वै गेहे पितरो विप्रवर्जिताः॥ शापं दत्त्वा ततो यान्ति श्राद्धाद्विप्रं विवर्जितात्। महापापी भवेत्सोऽपि ब्रह्महा स च कथ्यते॥ (पद्मपुराण, भूमि० ६७। २९—३१)

१८. न भोजयेत् स्त्रियं श्राद्धे यद्यपि व्रतचारिणीम्। पात्रं तस्यै समर्प्यं स्यादिति धर्मविदब्रवीत्॥ (बृहत्पराशरस्मृति ७। ७१)

१९. सहस्रस्यापि विप्राणां योगी चेत्पुरतः स्थितः। सर्वान्भोक्तृंस्तारयति यजमानं तथा नृप॥ (विष्णुपुराण ३। १५। ५६)

ब्राह्मणानां सहस्रेभ्यो योगी त्वग्राशनो यदि। यजमानं च भोक्तृंश्च नौरिवाम्भसि तारयेत्॥ (मार्कण्डेयपुराण ३२। ३०)

ब्राह्मणानां सहस्राणि एको योगी भवेद्यदि॥ यजमानं च भोक्तृंश्च नौरिवाम्भसि तारयेत्। (ब्रह्मपुराण २२०। १११-११२)

२०. सहस्रं हि सहस्राणामनृचां यत्र भुञ्जते। एकस्तान्मन्त्रवित्प्रीतः सर्वानर्हति धर्मतः॥ (मनुस्मृति ३। १३१)

२१. द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा। भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्जेत विस्तरे॥ (मनुस्मृति ३। १२५; बौधायनस्मृति २। ८। २९)

ब्राह्मणको भोजन कराना चाहिये। अत्यन्त धनी होनेपर भी श्राद्धकर्ममें अधिक विस्तार नहीं करना चाहिये।

२२. नाना, मामा, भानजा, गुरु, श्वशुर, दौहित्र, जामाता, बान्धव, ऋत्विज् तथा यज्ञकर्ता—इन दसोंको श्राद्धमें भोजन कराना चाहिये।

२३. जो श्राद्धकाल आनेपर भी काम, क्रोध अथवा भयसे, पाँच कोसके भीतर रहनेवाले दामाद, भानजे तथा बहनको नहीं बुलाता और सदा दूसरोंको ही भोजन कराता है, उसके श्राद्धमें पितर और देवता अन्न ग्रहण नहीं करते।

२४. अपना भानजा तथा भाई-बन्धु यदि मूर्ख भी हों तो भी श्राद्धमें उनका त्याग नहीं करना चाहिये।

द्वौ दैवे······श्राद्धे कुर्यान्न विस्तरम्॥ (श्रीमद्भागवत ७। १५। ३)

द्वौ दैवे त्रींस्तथा पित्र्ये एकैकमुभयत्र वा॥ भोजयेत् सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्जेत विस्तरे। (मत्स्यपुराण १७। १३-१४)

पितृणामयुजः कामं युग्मान् दैवे द्विजोत्तमान्॥ एकैकं वा पितृणां च देवानां च स्वशक्तितः। (मार्कण्डेयपुराण ३१। ३७-३८)

पितृणामयुजोयुग्मं देवानामपि योजयेत्। देवानामेकमपि वा पितृणां च निवेदयेत्॥ (वराहपुराण १४। १०)

प्राच्योंपवेशयेत् पीठे युग्मान्दैवेऽथ पित्र्यके। अयुग्मात् प्राङ्मुखान्दैवे त्रीन् पैत्र्ये चैकमेव वा॥ (अग्निपुराण १६३। २)

द्वौ वा दैवे त्रीन् पित्र्ये। एकैकमुभयत्र वा। (पारस्करगृह्यसूत्र, परिशिष्ट १। १६-१७)

२२. मातामहं मातुलं च स्वस्त्रीयं श्वशुरं गुरुम्। दौहित्रं विट्पतिं बन्धुमृत्विग्याज्यौ च भोजयेत्॥ (मनुस्मृति ३। ४८)

२३. सम्प्राप्ते श्राद्धकालेऽपि पञ्चक्रोशान्तरे स्थितम्। जामातरं परित्यज्य तथा च दुहितुः सुतम्॥ स्वसारं चैव स्वस्त्रीयं परित्यज्य प्रवर्तते। कामात्क्रोधाद् भयाद्वापि अन्यं भोजयते यदा॥ पितरो नैव भुञ्जन्ति देवाश्चैव न भुञ्जते। एतच्च पातकं तस्य पितृघातसमं कृतम्॥ (पद्मपुराण, भूमि० ६७। ८—१०)

२४. सम्बन्धिनं तथा सन्तं दौहित्रं दुहितुः पतिम्॥ भागिनेयं विशेषेण तथा बन्धुगणानपि। नातिक्रमेन्नरस्त्वेतान्मूर्खानपि वरानने॥ (स्कन्दपुराण, प्रभास० २०५। ५६-५७)

दौहित्रं योजयेच्छ्राद्धे पितृणां परितुष्टये॥ (स्कन्दपुराण, नागर० २२१। ४८)

२५. श्राद्धमें निमन्त्रित ब्राह्मणोंके बैठ जानेपर भोजनके निमित्त उपस्थित हुए भिक्षुक या ब्रह्मचारीको भी उनके इच्छानुसार भोजन कराना चाहिये। जिसके श्राद्धमें अतिथि भोजन नहीं करता, उसका श्राद्ध प्रशंसनीय नहीं होता।

२६. श्राद्धकालमें आये हुए अतिथिका अवश्य सत्कार करे। उस समय अतिथिका सत्कार न करनेसे वह श्राद्धकर्मके सम्पूर्ण फलको नष्ट कर देता है।

२७. जिसके श्राद्धके भोजनमें मित्रोंकी प्रधानता रहती है, उस श्राद्ध व हविष्यसे पितर व देवता तृप्त नहीं होते। जो श्राद्धमें भोजन देकर उससे मित्रताका सम्बन्ध जोड़ता है अर्थात् श्राद्धको मित्रताका साधन बनाता है, वह स्वर्गलोकसे भ्रष्ट हो जाता है। इसलिये श्राद्धमें मित्रको निमन्त्रण नहीं देना चाहिये। मित्रोंको सन्तुष्ट करनेके लिये धन देना उचित है। श्राद्धमें भोजन तो उसे ही कराना चाहिये, जो शत्रु या मित्र न होकर मध्यस्थ हो।

---

२५. भिक्षुको ब्रह्मचारी वा भोजनार्थमुपस्थितः। उपविष्टेषु यः श्राद्धे कामं तमपि भोजयेत्॥ अतिथिर्यस्य नाश्नाति न तच्छ्राद्धं प्रशस्यते। तस्मात् प्रयत्नाच्छ्राद्धेषु पूज्या ह्यतिथयो द्विजैः॥ (कूर्मपुराण, उ० २२। ३१-३२)

२६. तस्मादभ्यर्चयेत्प्राप्तं श्राद्धकालेऽतिथिं बुधः। श्राद्धक्रियाफलं हन्ति नरेन्द्रापूजितोऽतिथिः॥ (विष्णुपुराण ३। १५। २५)। .... द्विजेन्द्रापूजितोऽतिथिः॥ (वराहपुराण १४। २०)

२७. न श्राद्धे भोजयेन्मित्रं धनैः कार्योऽस्य संग्रहः। नारिं न मित्रं यं विद्यात्तं श्राद्धे भोजयेद्द्विजम्॥ (मनुस्मृति ३। १३८)। न श्राद्धे .... पैशाची दक्षिणा सा हि नैवामुत्र फलप्रदा॥ (कूर्मपुराण, उ० २१। २३)

यस्य मित्रप्रधानानि श्राद्धानि च हवींषि च॥ न प्रीणन्ति पितॄन् देवान् स्वर्गं च न स गच्छति। यश्च श्राद्धे कुरुते सङ्गतानि न देवयानेन पथा स याति। स वै मुक्तः पिप्पलं बन्धनाद् वा स्वर्गाल्लोकाच्च्यवते श्राद्धमित्रः॥ तस्मान्मित्रं श्राद्धकृन्नाद्रियेत दद्यान्मित्रेभ्यः संग्रहार्थं धनानि। यन्मन्यते नैव शत्रुं न मित्रं तं मध्यस्थं भोजयेद्धव्यकव्ये॥ (महाभारत, अनु० ९०। ४१—४३)

न च तेन मित्रकर्म कुर्यात्। (गौतमधर्मसूत्र २। ६। १२)

२८. श्राद्धमें हीन अंगवाला, पतित, कुष्ठरोगी, व्रणयुक्त, पुक्कस जातिवाला, नास्तिक और मुर्गा, सूअर तथा कुत्ता—ये दूरसे ही हटा देनेयोग्य हैं। वीभत्स, अपवित्र, नग्न, मत्त, धूर्त, रजस्वला स्त्री, नीला तथा कषाय वस्त्र धारण करनेवाले तथा पाखण्डीको भी वहाँसे हटा देना चाहिये।

२९. पिण्डदानके समय उस स्थानसे चाण्डाल, श्वपच, गेरुआ वस्त्रधारी संन्यासी, कोढ़ी, पतित, ब्रह्महत्यारा तथा वर्णसंकर ब्राह्मणको हटा देना चाहिये।

३०. श्राद्धमें, यज्ञमें, तीर्थमें और पर्वोंके दिन देवताओंके लिये जो हविष्य तैयार किया जाता है, उसे यदि रजस्वला, कोढ़ी या वन्ध्या स्त्री देख ले तो उस हविष्यको देवता तथा पितर ग्रहण नहीं करते।

३१. जहाँ रजस्वला स्त्री, चाण्डाल और सूअर श्राद्धके अन्नपर दृष्टि डाल देते हैं, वह अन्न प्रेत ही ग्रहण करते हैं।

---

२८. हीनाङ्गः पतितः कुष्ठी व्रणी पुक्कसनास्तिकौ। कुक्कुटाः शूकरा श्वानो वर्ज्याः श्राद्धेषु दूरतः॥ बीभत्सुमशुचिं नग्नं मत्तं धूर्तं रजस्वलाम्। नीलकाषायवसनं पाषण्डांश्च विवर्जयेत्॥ (कूर्मपुराण, उ० २२। ३४-३५)

हीनाङ्गः पतितः कुष्ठी वणिक्पुक्कसनास्तिकः॥ कुक्कुटः शूकरश्वानो वर्ज्याः श्राद्धेषु दूरतः। बीभत्समशुचिं म्लेच्छं न स्पृशेच्च रजस्वलाम्॥ नीलकाषायवसनं पाषण्डांश्च विवर्जयेत्। (औशनसस्मृति ५। ३२—३४)

२९. चाण्डालश्वपचौ वर्ज्यौ निवापे समुपस्थिते। काषायवासाः कुष्ठी वा पतितो ब्रह्महापि वा॥ संकीर्णयोनिर्विप्रश्च सम्बन्धी पतितश्च यः। वर्जनीया बुधैरेते निवापे समुपस्थिते॥ (महाभारत, अनु० ९१। ४३-४४)

३०. श्राद्धकल्पे च दैवे च तैर्थिके पर्वणीषु च॥ रजस्वला च या नारी श्वित्रिकापुत्रिका च या। एताभिश्चक्षुषा दृष्टं हविर्नाश्नन्ति देवताः॥ पितरश्च न तुष्यन्ति वर्षाण्यपि त्रयोदश। (महाभारत, अनु० १२७। १२—१४)

३१. यच्छ्राद्धं वीक्षते श्वा वा नारी वाऽथ रजस्वला। पतितो वा वराहो वा तच्छ्राद्धं व्यर्थतां व्रजेत्॥ (स्कन्दपुराण, नागर० २१७। ४३)। श्राद्धं संपश्यते श्वा चेन्नारी चैव रजस्वला। अन्त्यजः शूकरश्चान्नं तदस्माकं तु भोजनम्॥ (स्कन्दपुराण, प्रभास० २२३। ३९)

३२. नपुंसक, अपविद्ध (सत्पुरुषोंद्वारा बहिष्कृत), चाण्डाल, पापी, पाखण्डी, रोगी, मुर्गा, कुत्ता, नग्न (वैदिक कर्मका त्याग करनेवाला), बन्दर, सूअर, रजस्वला स्त्री, जन्म या मरणके अशौचसे युक्त व्यक्ति और शव ले जानेवाले पुरुष—इनमेंसे किसीकी भी दृष्टि पड़ जानेसे देवता या पितर—कोई भी श्राद्धमें अपना भाग ग्रहण नहीं करते। इसलिये किसी घिरे हुए स्थानमें ही श्रद्धापूर्वक श्राद्धकर्म करना चाहिये।

३३. चाण्डाल, सूअर, मुर्गा, कुत्ता, रजस्वला स्त्री और नपुंसक—ये भोजन करते हुए ब्राह्मणोंको नहीं देखें। होम, दान, भोज्य, दैव और पित्र्य—इनको यदि ये देख लें तो वह सब निष्फल हो जाता है।

३४. एक खुरवालोंका, ऊँटनीका, भेड़का, मृगीका तथा भैंसका दूध श्राद्धमें काममें नहीं लेना चाहिये। चँवरी गायका तथा हालकी ब्यायी

---

३२. षण्ढापविद्धचाण्डालपापिपाषण्डिरोगिभिः। कृकवाकुश्वनग्नैश्च वानरग्रामसूकरैः॥ उदक्यासूतकाशौचिमृतहारैश्च वीक्षिते। श्राद्धे सुरा न पितरो भुञ्जते पुरुषर्षभ॥ तस्मात्परिश्रिते कुर्याच्छ्राद्धं श्रद्धासमन्वितः।
(विष्णुपुराण ३। १६। १२—१४)

नग्नाः पातकिनश्चैव हन्युर्दृष्ट्या पितृक्रियाम्। अपुमानपविद्धश्च कुक्कुटो ग्रामसूकरः॥ श्वा चैव हन्ति श्राद्धानि यातुधानाश्च दर्शनात्।
(मार्कण्डेयपुराण ३२। २१-२२)

३३. चाण्डालश्च वराहश्च कुक्कुटः श्वा तथैव च। रजस्वला च षण्ढश्च नेक्षेरन्नश्नतो द्विजान्॥ होमे प्रदाने भोज्ये च यदेभिरभिवीक्ष्यते। दैवे कर्मणि पित्र्ये वा तद्गच्छत्ययथातथम्॥ (मनुस्मृति ३। २३९-२४०)

यं देशं च न पश्यन्ति कुक्कुटश्वानशूकराः। (वराहपुराण १८८। २३)
यन्न पश्यन्ति ते भोज्यं श्वानः कुक्कुटसूकराः। (वराहपुराण १९०। २३)
श्वचाण्डालपतितावेक्षणे दुष्टम्। (गौतमधर्मसूत्र २। ६। २५)

३४. क्षीरमेकशफानां यदौष्ट्रमाविकमेव च। मार्गं च माहिषं चैव वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि॥
(विष्णुपुराण ३। १६। ११)

हुई गौके दस दिनके भीतरका दूध भी श्राद्धमें वर्जित है। श्राद्धके निमित्त माँगकर लाया हुआ दूध भी श्राद्धमें निषिद्ध है।

३५. ब्रह्माजीने पशुओंकी सृष्टि करते समय सबसे पहले गौओंको रचा है; अतः श्राद्धमें उन्हींका दूध, दही और घी काममें लेना चाहिये।

३६. जौ, धान, तिल, गेहूँ, मूँग, सावाँ, सरसोंका तेल, तिन्नीका चावल, कँगनी आदिसे पितरोंको तृप्त करना चाहिये। आम, अमड़ा, बेल, अनार, बिजौरा, पुराना आँवला, खीर, नारियल, फालसा, नारंगी, खजूर, अँगूर, नीलकैथ, परवल, चिरौंजी, बेर, जंगली बेर और इन्द्रजौ—इनको श्राद्धमें यत्नपूर्वक लेना चाहिये।

३७. जौ, काँगनी, मूँग, गेहूँ, धान, तिल, मटर, कचनार और सरसों—इनका श्राद्धमें होना अच्छा है।

मार्गमाविकमौष्ट्रं च सर्वमैकशफं च यत्॥ माहिषं चामरं चैव धेन्वा गोश्चाप्यनिर्दशम्। पित्र्यर्थं मे प्रयच्छस्वेत्युक्त्वा यच्चाप्युपाहृतम्॥ वर्जनीयं सदा सद्भिस्तत्पयः श्राद्धकर्मणि।
(मार्कण्डेयपुराण ३२। १७—१९)

माहिषं चामरं मार्गमाविकैकशफोद्भवम्। स्त्रैणमौष्ट्रमाविकं च दधि क्षीरं घृतं त्यजेत्॥ (ब्रह्मपुराण २२०। १६९)

३५. पशून्विसृजता तेन पूर्वं गावो विनिर्मिताः। तेन तासां पयः शस्तं श्राद्धे सर्पिर्विशेषतः॥ (स्कन्दपुराण, नागर० २२१। ४९)

३६. यवैर्व्रीहितिलैर्माषैर्गोधूमैश्चणकैस्तथा। सन्तर्पयेत्पितृन्मुद्गैः श्यामाकैः सर्षपद्रवैः॥ आम्रमाम्रातकं बिल्वं दाडिमं बीजपूरकम्। प्राचीनामलकं क्षीरं नारिकेलं परूषकम्॥ नारङ्गं च सखर्जूरं द्राक्षानीलकपित्थकम्। पटोलं च प्रियालं च कर्कन्धूबदराणि च॥ विकङ्कतं वत्सकं च कस्त्वारु (र्कारु)-र्वारकानपि। एतानि फलजातानि श्राद्धे देयानि यत्नतः॥ (ब्रह्मपुराण २२०। १५४, १५६—१५८)

३७. यवाः प्रियङ्गवो मुद्गा गोधूमा व्रीहयस्तिलाः। निष्पावाः कोविदाराश्च सर्षपाश्चात्र शोभनाः॥ (विष्णुपुराण ३। १६। ६)

यवव्रीहिसगोधूमतिला मुद्गाः ससर्षपाः। प्रियंगवः कोविदारा निष्पावाश्चातिशोभनाः॥ (मार्कण्डेयपुराण ३२। १०)

३८. जिसमें बाल और कीड़े पड़ गये हों, जिसे कुत्तोंने देख लिया हो, जो बासी एवं दुर्गन्धित हो—ऐसी वस्तुका श्राद्धमें उपयोग न करे। बैंगन और शराबका भी त्याग करे। जिस अन्नपर पहने हुए वस्त्रकी हवा लग जाय, वह भी श्राद्धमें वर्जित है।

३९. राजमाष, मसूर, अरहर, गाजर, कुम्हड़ा, गोल लौकी, बैंगन, शलजम, हींग, प्याज, लहसुन, काला नमक, काला जीरा, सिंघाड़ा, जामुन, पिप्पली, सुपारी, कुलथी, कैथ, महुआ, अलसी, पीली सरसों, चना—ये सब वस्तुएँ श्राद्धमें वर्जित हैं।

४०. जहाँ घरघराहटकी ध्वनि, ओखलीके कूटनेका शब्द अथवा सूपके फटकनेकी आवाज होती हो, वहाँपर किया श्राद्ध व्यर्थ हो जाता है।

---

३८. केशकीटावपन्नं च तथा श्वभिरवेक्षितम्॥ पूति पर्युषितं चैव वार्ताक्यभिषवांस्तथा। वर्जनीयानि वै श्राद्धे यच्च वस्त्रानिलाहतम्॥ (मार्कण्डेयपुराण ३२। २५-२६)

३९. मसूरशणनिष्पावराजमाषाः कुलुत्थकाः॥ पद्मबिल्वार्कधत्तूरपारिभद्राटरूषकाः। न देयाः पितृकार्येषु पयश्चाजाविकं तथा॥ कोद्रवोदारवरटकपित्थं मधुकातसी। एतान्यपि न देयानि पितृभ्यः श्रियमिच्छता॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ९। ६४—६६)

पिप्पलीं क्रमुकं चैव तथा चैव मसूरकम्। कूष्माण्डालाबुवार्ताकान् भूस्तृणं सुरसं तथा॥ कुसुम्भपिण्डमूलं वै तन्दुलीयकमेव च। राजमाषांस्तथा क्षीरं माहिषं च विवर्जयेत्॥ (कूर्मपुराण, उ० २०। ४६-४७)

राजमाषानणूंश्चैव मसूरांश्च विसर्जयेत्॥ अलाबुं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं पिण्डमूलकम्। (विष्णुपुराण ३। १६। ७-८)

अश्राद्धेयानि धान्यानि कोद्रवाः पुलकास्तथा। हिंगुद्रव्येषु शाकेषु पलाण्डुं लसुनं तथा॥ सौभाञ्जनः कोविदारस्तथा गृञ्जनकादयः। कूष्माण्डजात्यलाबुं च कृष्णं लवणमेव च॥ अङ्कुराद्यास्तथा वर्ज्या इह शृङ्गाटकानि च॥ वर्जयेल्लवणं सर्वं तथा जम्बूफलानि च। अवक्षुतावरुदितं तथा श्राद्धे च वर्जयेत्॥ (महाभारत, अनु० ९१। ३८—४१)

कूष्माण्डं महिषीक्षीरं आढक्या राजसर्षपाः। मसूराश्चणकाश्चैव षडेते श्राद्धघातकाः॥ (व्याघ्रपादस्मृति १७९)

४०. घरट्टोलूखलोत्थौ च यत्र शब्दौ व्यवस्थितौ। शूर्पस्य वा विशेषेण तच्छ्राद्धं व्यर्थतां व्रजेत्॥ (स्कन्दपुराण, नागर० २१७। ४६)

४१. श्राद्धकर्ता पुरुष दातुन करना, पान खाना, तेल और उबटन लगाना, मैथुन करना, औषध-सेवन तथा दूसरोंके अन्नका भोजन करना अवश्य त्याग दे। रास्ता चलना, दूसरे गाँव जाना, कलह, क्रोध और मैथुन करना, बोझ ढोना तथा दिनमें सोना—ये सब कार्य श्राद्धकर्ता और श्राद्धभोक्ताको छोड़ देने चाहिये।

४२. श्राद्धकर्ता और श्राद्धभोक्ता—दोनोंको श्राद्धमें भोजन करनेके बाद पुनः भोजन करना, मार्गगमन, सवारीपर चढ़ना, परिश्रमका काम करना, मैथुन, स्वाध्याय, कलह और दिनमें शयन—इन सबका उस दिन परित्याग कर देना चाहिये।

४३. श्राद्धभूमिमें सर्वत्र तिलोंको बिखेरना चाहिये। तिलोंके द्वारा असुरोंसे आक्रान्त भूमि शुद्ध हो जाती है।

४४. जो श्राद्ध तिलोंसे रहित होता है अथवा जो क्रोधपूर्वक किया जाता है, उसके हविष्यको राक्षस व पिशाच लुप्त कर देते हैं।

---

४१. दन्तधावनताम्बूलं स्नेहस्नानमभोजनम्। रसौषधं परान्नं च श्राद्धकृत् सप्त वर्जयेत्॥ (व्याघ्रपादस्मृति १५५)

दन्तधावनताम्बूले तैलाभ्यंगं तथैव च। रत्योषधिपरान्नानि श्राद्धकर्त्ता विवर्जयेत्॥ अध्वानं कलहं क्रोधं व्यवायं च धुरं तथा। श्राद्धकर्त्ता च भोक्ता च दिवास्वापं च वर्जयेत्॥ (नारदपुराण, पूर्व० २८। ३-४)

४२. पुनर्भोजनमध्वानं भाराध्ययनमैथुनम्। दानं प्रतिग्रहो होमः श्राद्धभुगष्ट वर्जयेत्॥ (व्याघ्रपादस्मृति १५६)

पुनर्भोजनमध्वानं यानमायासमैथुनम्। श्राद्धकृच्छ्राद्धभुक्चैव सर्वमेतद् विवर्जयेत्॥ स्वाध्यायं कलहं चैव दिवास्वप्नं च सर्वदा। (मत्स्यपुराण १६। ५६-५७)

४३. तिलान् प्रविकिरेत् तत्र सर्वतो बन्धयेदजान्। असुरोपहतं सर्वं तिलैः शुध्यत्यजेन वा॥ (कूर्मपुराण, उ० २२। १८)

उर्व्यां च तिलविक्षेपाद्यातुधानान्निवारयेत्॥ (विष्णुपुराण ३। १६। १४)

तिलानवकिरेत् तत्र नानावर्णान् समन्ततः। अशुद्धमपवित्रं च तिलैः शुध्यति शोभने॥ (महाभारत, अनु० १४५)। तिलैर्वा विकिरेत्। (गौतमधर्मसूत्र २। ६। २७)

४४. तिलैर्विरहितं श्राद्धं कृतं क्रोधवशेन च। यातुधानाः पिशाचाश्च विप्रलुम्पन्ति तद्धविः॥ (महाभारत, अनु० ९०। २२)

४५. जिस श्राद्धमें तिलकी मात्रा अधिक रहती है, वह श्राद्ध अक्षय होता है।

४६. जो सफेद तिलोंसे पितरोंका तर्पण करता है, उसका किया हुआ तर्पण व्यर्थ होता है।

४७. तिल पिशाचोंसे श्राद्धकी रक्षा करते हैं, कुश राक्षसोंसे बचाते हैं, श्रोत्रिय ब्राह्मण पंक्तिकी रक्षा करते हैं और यतिगण (यदि कषाय वस्त्रवाले न हों, तो) श्राद्धमें भोजन कर लें तो वह अक्षय हो जाता है।

४८. श्राद्धमें पहले अग्निको ही भाग अर्पित किया जाता है। अग्निमें हवन करनेके बाद जो पितरोंके निमित्त पिण्डदान किया जाता है, उसे ब्रह्मराक्षस दूषित नहीं करते।

४९. सोने, चाँदी और ताँबेके पात्र पितरोंके पात्र कहे जाते हैं। श्राद्धमें चाँदीकी चर्चा और दर्शन भी पुण्यदायक है। चाँदीका समीप होना, दर्शन अथवा दान राक्षसोंका विनाश करनेवाला, यशोदायक तथा पितरोंको तारनेवाला होता है।

---

४५. वर्धमानतिलं श्राद्धमक्षयं मनुरब्रवीत्। (महाभारत, अनु० ८८। ४)

४६. अकृष्णैर्यत्तिलैर्मोहात्तर्पयेत्पितृसञ्चयम्॥ भूम्यां ददाति यदपो दाता चैव जले स्थितः। वृथा तद्दीयते दानं नोपतिष्ठति कस्यचित्॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। ४९-५०)

४७. तिलाः पिशाचाद् रक्षन्ति दर्भा रक्षन्ति राक्षसात्॥ रक्षन्ति श्रोत्रियाः पङ्क्तिं यतिभिर्भुक्तमक्षयम्। (महाभारत, आदि०९३)

४८. एतस्मात् कारणाच्चाग्नेः प्राक् तावद् दीयते नृप॥ निवसे चाग्निपूर्वं वै निवापे पुरुषर्षभ। न ब्रह्मराक्षसास्तं वै निवापं धर्षयन्त्युत॥ (महाभारत, अनु० ९२। ११-१२)

४९. राजतं च तथा पात्रं शस्तं श्राद्धेषु पुत्रक॥ रजतस्य तथा कार्यं दर्शनं दानमेव वा। राजते हि स्वधा दुग्धा पितृभिः श्रूयते मही। तस्मात् पितृणां रजतमभीष्टं प्रीतिवर्धनम्॥ (मार्कण्डेयपुराण ३१। ६४-६५)

सौवर्णं राजतं ताम्रं पितृणां पात्रमुच्यते॥ रजतस्य तथा किञ्चिद्दर्शनं पुण्यदायकम्। (स्कन्दपुराण, प्रभास० २०६। १११-११२)

५०. पितरोंके लिये चाँदीके पात्रसे श्रद्धापूर्वक जलमात्र भी दिया जाय तो वह अक्षय तृप्तिकारक होता है। पितरोंके लिये अर्घ्य, पिण्ड और भोजनके पात्र भी चाँदीके ही श्रेष्ठ माने गये हैं।

५१. जो अपनी तर्जनी अँगुलीमें चाँदीकी अँगूठी धारण करके पितरोंको तर्पण करता है, उसका सब तर्पण लाखगुना अधिक फल देनेवाला होता है। यदि वह अनामिका अँगुलीमें सोनेकी अँगूठी पहनकर तर्पण करे तो वह करोड़गुना अधिक फल देनेवाला होता है।

५२. जो मनुष्य मैथुन तथा क्षौरकर्म करके देवताओं और पितरोंको तर्पण करता है, वह जल रक्तके समान होता है तथा दाता नरकोंमें जाता है।

५३. जो ब्राह्मणोंके हाथमें नमक या व्यंजन परोसता है अथवा लोहेके पात्रसे परोसता है, उस भोजनको राक्षस खाते हैं, पितर ग्रहण नहीं करते।

---

५०. राजतैर्भाजनैरेषामथो वा राजतान्वितैः। वार्यपि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्पते॥ (मनुस्मृति ३। २०२)

सर्वेषां राजतं पात्रमथवा राजतान्वितम्॥ दत्तं स्वधां पुरोधाय पितॄन्प्रीणाति सर्वदा। (पद्मपुराण, सृष्टि० ९। ५८-५९)

वार्यपि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्पते। तथार्घ्यपिण्डभोज्यादौ पितृणां राजतं मतम्। शिवनेत्रोद्भवं यस्मात् तस्मात् पितृवल्लभम्। (मत्स्यपुराण १७। २२-२३)

५१. रौप्यांगुलीयं तर्जन्यां धृत्वा यत्तर्पयेत्पितॄन्। सर्वं च शतसाहस्रगुणं भवति नान्यथा॥ तथैवानामिकायां तु धृत्वा स्वर्णांगुलीं बुधः। तर्पयेपितृसन्दोहं लक्षकोटिगुणं भवेत्॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। ५६-५७)

५२. कृत्वा तु मैथुनं क्षौरं यो देवांस्तर्पयेत् पितॄन्। रुधिरं तद्भवेत्तोयं दाता च नरकं व्रजेत्॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्म० २७। ४५)

५३. न दद्यात् तत्र हस्तेन प्रत्यक्षलवणं तथा। न चायसेन पात्रेण न चैवाश्रद्धया पुनः॥ (औशनसस्मृति ५। ५९, कूर्मपुराण, उ० २२। ६१)

हस्ते दत्त्वा तु वै स्नेहाल्लवणं व्यञ्जनानि च॥ आयसेन च पात्रेण तद्वै रक्षांसि भुञ्जते। (स्कन्दपुराण, प्रभास० २०६। ३८-३९)

५४. एक हाथसे लाया गया जो अन्न (अन्नपात्र) ब्राह्मणोंके आगे परोसा जाता है, उस अन्नको राक्षस छीन लेते हैं।

५५. गोबर आदिसे लिपे-पुते पवित्र तथा एकान्त स्थानमें, जिसमें दक्षिण दिशाकी ओर भूमि कुछ नीची हो और जहाँ पापी मनुष्योंकी दृष्टि न पड़े, श्राद्ध करना चाहिये।

५६. जो मनुष्य श्राद्धके समय ब्राह्मणोंको मिट्टीके पात्रमें भोजन कराता है, वह मनुष्य तथा ब्राह्मण—दोनों घोर नरकमें जाते हैं।

५७. सिर ढककर (पगड़ी आदि बाँधकर), दक्षिणकी तरफ मुख करके और जूता पहनकर भोजन करनेसे वह अन्न राक्षसोंको मिलता है, पितरोंको नहीं।

५८. जो अज्ञानी मनुष्य अपने घर श्राद्ध करके फिर दूसरे घर भोजन करता है, वह पापका भागी होता है और उसे श्राद्धका फल नहीं मिलता।

---

५४. उभयोर्हस्तयोर्मुक्तं यदन्नमुपनीयते। तद्विप्रलुम्पन्त्यसुराः सहसा दुष्टचेतसः॥ (मनुस्मृति ३। २२५)

५५. शुचिं देशं विविक्तं च गोमयेनोपलेपयेत्। दक्षिणाप्रवणं चैव प्रयत्नेनोपपादयेत्॥ (मनुस्मृति ३। २०६)

पराश्रिते शुचौ देशे दक्षिणाप्रवणं तथा। (नारदपुराण, पूर्व० ५१। ११२)

विविक्ते गृहमध्यस्थे मनोज्ञे दक्षिणाप्लवे। न यत्र जायते दृष्टिः पापानां क्रूरकर्मिणाम्॥ (स्कन्दपुराण, नागर० २१७। ४२)

गोमयेनानुलिप्ते तु दक्षिणाप्लवनस्थले॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० ९। ८७)

५६. मृण्मयेषु च पात्रेषु यः श्राद्धे भोजयेत् पितॄन्। अन्नदाता च भोक्ता च तावेव नरकं व्रजेत्॥ (अत्रिसंहिता १५४)

पात्रे तु मृण्मये यो वै श्राद्धे भोजयते पितॄन्। स याति नरकं घोरं भोक्ता चैव पुरोधसः॥ (औशनसस्मृति ५। ६१)

मृण्मयेषु च पात्रेषु श्राद्धे भोजयते पितॄन्॥ दातुश्च नोपतिष्ठेत भोक्ता च नरकं व्रजेत्। (दाल्भ्यस्मृति ३९-४०)

५७. यद्वेष्टितशिरा भुङ्क्ते यद् भुङ्क्ते दक्षिणामुखः। सोपानत्कश्च यद् भुङ्क्ते तद्वै रक्षांसि भुञ्जते॥ (मनुस्मृति ३। २३८)। ....सर्वं विद्यात् तदासुरम्॥ (महाभारत, अनु० ९०। १९)

५८. श्राद्धं कृत्वा परश्राद्धे योऽश्नीयाज्ज्ञानवर्जितः॥ दातुः श्राद्धफलं नास्ति भोक्ता किल्बिषभुग्भवेत्। (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ६४-६५)

५९. ब्राह्मणोंको श्रद्धापूर्वक गरम-गरम अन्न भोजन कराना चाहिये। परन्तु फल, फूल और पेय पदार्थोंको ठण्डा ही देना चाहिये।

६०. जबतक अन्न गरम रहता है, जबतक ब्राह्मण मौन होकर भोजन करते हैं और जबतक वे भोज्य पदार्थोंके गुणोंका वर्णन नहीं करते, तबतक पितरलोग भोजन करते हैं।

६१. श्राद्धमें वैद्यको दिया हुआ अन्न पीब व रक्तके समान पितरोंको अग्राह्य हो जाता है। देवमन्दिरमें पूजा करके जीविका चलानेवालेको दिया हुआ श्राद्धका दान निरर्थक हो जाता है। सूदखोरको दिया हुआ अन्न अस्थिर होता है। वाणिज्यवृत्ति करनेवालेको श्राद्धमें दिया हुआ अन्नका दान न इस लोकमें लाभदायक होता है, न परलोकमें।

६२. वस्त्रके बिना कोई क्रिया, यज्ञ, वेदाध्ययन और तपस्या नहीं

---

५९. उष्णमन्नं द्विजातिभ्यः श्रद्धया विनिवेशयेत्॥ अन्यत्र फलपुष्पेभ्यः पानकेभ्यश्च पण्डितः। (स्कन्दपुराण, प्रभास० २०६। ३७-३८)

६०. यावदुष्णं भवत्यन्नं यावदश्नन्ति वाग्यताः। पितरस्तावदश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः॥ (मनुस्मृति ३। २३७)। ....तावद्धि पितरोऽश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः॥ (वसिष्ठस्मृति ११। २९)

भुञ्जीत वाग्यतो मृष्टं न ब्रूयात् प्रकृतान् गुणान्। तावद्धि पितरोऽश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः॥ (औशनसस्मृति ५। ६३)। भुञ्जीरन् वाग्यताः शिष्टा न ब्रूयुः प्राकृतान् गुणान्। तावद्धि.................. (कूर्मपुराण, उ० २२। ६५)

यावदुष्णं भवत्यन्नं यावद् भुञ्जन्ति वाग्यताः। अश्नन्ति पितरस्तावद्यावन्नोक्ता हविर्गुणाः॥ (यमस्मृति ३८)

यावदूष्णा भवत्यन्ने यावदश्नन्ति वाग्यताः॥ तावदश्नन्ति पितरो यावन्नोक्ता हविर्गुणाः। (विष्णुधर्मोत्तर० १। १४०। ४५-४६)। यावदुष्णं भवत्यन्नं यावन्मौनेन भुज्यते। तावदश्नन्ति पितरो यावन्नोक्ता हविर्गुणाः॥ (स्कन्दपुराण, काशी० पू० ४०। ९४)

६१. सोमविक्रयिणे विष्ठा भिषजे पूयशोणितम्॥ नष्टं देवलके दत्तमप्रतिष्ठं च वार्धुषे। यत्तु वाणिजके दत्तं नेह नामुत्र तद् भवेत्॥ (महाभारत, अनु० ९०। १३-१४)

६२. वस्त्राभावे क्रिया नास्ति यज्ञा वेदास्तपांसि च। तस्माद्वासांसि देयानि

होती। अतः श्राद्धकालमें वस्त्रका दान विशेषरूपसे करना चाहिये। जो रेशमी, सूती और बिना कटा हुआ वस्त्र श्राद्धमें देता है, वह उत्तम भोगोंको प्राप्त करता है। श्राद्धमें रेशम, सन अथवा कपासका नया सूत देना चाहिये। ऊन या पाटका सूत वर्जित है। विद्वान् पुरुष जिसमें कोर न हो, ऐसा वस्त्र फटा न होनेपर भी श्राद्धमें न दे; क्योंकि उससे पितरोंको तृप्ति नहीं होती।

६३. स्त्री श्राद्धके उच्छिष्ट पात्रोंको न उठाये। ज्ञानहीन तथा व्रतरहित पुरुष भी उन्हें न हटाये। स्वयं पुत्र ही आकर पिताके श्राद्धमें उच्छिष्ट पात्रोंको उठाये।

६४. श्राद्धके पिण्डोंको गौ, ब्राह्मण या बकरीको खिला दे अथवा अग्नि या पानीमें छोड़ दे।

६५. यदि श्राद्धकर्ताकी पत्नीको पुत्रकी कामना हो तो मध्यम पिण्ड (पितामहको अर्पित पिण्ड)-को खा ले और पितरोंसे पुत्र-प्राप्तिकी प्रार्थना करे—'आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्' (पितरो! आपलोग मेरे गर्भमें कमलोंकी मालासे अलंकृत एक सुन्दर पुत्रकी स्थापना करें)।

श्राद्धकाले विशेषतः॥ कौशेय क्षौमकार्पासं दुकूलमहतं तथा। श्राद्धे त्वेतानि यो दद्यात्कामानाप्नोति चोत्तमान्॥ (ब्रह्मपुराण २२०। १३९-१४०)

क्षौमसूत्रं नवं दद्याच्छोणं कार्पासिकं तथा। पत्रोर्णं पट्टसूत्रं च कौशेयं च विवर्जयेत्॥ वर्जयेच्चादशं प्राज्ञो यद्यप्यव्याहतं भवेत्। न प्रीणयन्त्यथैतानि दातुश्चाप्यनयो भवेत्॥ (ब्रह्मपुराण २२०। १४६-१४७)

६३. न स्त्री प्रचालयेत्तानि ज्ञानहीनो न चाव्रतः। स्वयं पुत्रोऽथवा यस्य वाञ्छेदभ्युदयं परम्॥ (स्कन्दपुराण, प्रभास० २०६। ४२)

६४. एवं निर्वपणं कृत्वा पिण्डांस्तांस्तदनन्तरम्। गां विप्रमजमग्निं वा प्राशयेदप्सु वा क्षिपेत्॥ (मनुस्मृति ३। २६०)

ततो निर्वपने वृत्ते तान् पिण्डांस्तदनन्तरम्। ब्राह्मणोऽग्निरजो गौर्वा भक्षयेदप्सु वा क्षिपेत्॥ (महाभारत, अनु० १४५)

६५. पत्नीं वा मध्यमं पिण्डं पुत्रकामां हि प्राशयेत्। आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्॥ (महाभारत, अनु० १४५)

मध्यमं पिण्डं पत्नी पुत्रकामा प्राश्नीयादाधत्त पितरो गर्भमिति।
(गोभिलगृह्यसूत्र ४। ३। २७)

६६. भोगकी इच्छा रखनेवाला पुरुष पिण्डको सदा अग्निमें डाले। सन्तानकी प्राप्तिके लिये मध्यम पिण्ड मन्त्रोच्चारणपूर्वक पत्नीको दे दे। उत्तम कान्ति चाहे तो सदा गौओंको ही पिण्ड खिला दे। यदि प्रज्ञा, यश और कीर्तिकी इच्छा हो तो सदा पिण्डको जलमें ही डाल दे। दीर्घ आयुकी कामना हो तो सब पिण्ड कौओंको खिला दे। कार्तिकेयके लोकमें जानेकी इच्छा हो तो मुर्गेको खिलाये अथवा दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके सब पिण्ड आकाशमें ही फेंक दे; क्योंकि आकाश और दक्षिण दिशा पितरोंके स्थान हैं।

६७. जो व्यक्ति अग्नि, विष आदिके द्वारा आत्महत्या करता है, उसके निमित्त अशौच तथा श्राद्ध-तर्पण आदि करनेका विधान नहीं है। यदि श्राद्ध-तर्पण किया भी जाय तो वह उसे नहीं मिलता।

---

६६. पिण्डमग्नौ सदा दद्याद्भोगार्थी सततं नरः। पत्न्यै दद्यात्प्रजार्थी च मध्यमं मन्त्रपूर्वकम्॥ उत्तमां द्युतिमन्विच्छन्पिण्डं गोषु प्रयच्छति। प्रज्ञां चैव यशः कीर्तिमप्सु चैव निवेदयेत्॥ प्रार्थयन्दीर्घमायुश्च वायसेभ्यः प्रयच्छति। कुमारशालामन्विच्छन्कुक्कुटेभ्यः प्रयच्छति॥ (ब्रह्मपुराण २२०। १४९—१५१)। पिण्डमग्नौ सदा देयाद्भोगार्थी सततं नरः। प्रजार्थं पत्न्यै वै दद्यान्मध्यमं मन्त्रपूर्वकम्॥ उत्तमां द्युतिमन्विच्छन्गोषु नित्यं प्रदापयेत्। प्रज्ञामिच्छेद्यशः कीर्तिमप्सु नित्यं प्रवेशयेत्॥ प्रार्थयन्दीर्घमायुश्च वायसेभ्यः प्रदापयेत्। कुमारलोकमन्विच्छन्कुक्कुटेभ्यः प्रदापयेत्॥ आकाशे प्रक्षिपेद्वापि स्थितो वा दक्षिणामुखः। पितृणां स्थानमाकाशं दक्षिणा चैव दिक्तथा॥
(स्कन्दपुराण, प्रभास० २०६। ७६—७९)

६७. आत्मनस्त्यागिनां चैव निर्वर्तेतोदकक्रिया॥
(मनुस्मृति ५। ८९, दाल्भ्यस्मृति ८७)

आत्मत्यागिनः पतिताश्च नाशौचोदकभाजः। (विष्णुस्मृति २२)

आत्मनस्त्यागिनां चैव श्राद्धमेषां न कारयेत्॥ (लिखितस्मृति ६६)

महापातकिनां चैव तथा चैवात्मघातिनाम्। उदकं पिण्डदानं च श्राद्धं चैव तु यत्कृतम्। नोपतिष्ठति तत्सर्वं राक्षसैर्विप्रलुप्यते॥ (संवर्तस्मृति १७५)

सुराप्य आत्मत्यागिन्यो नाशौचोदकभाजनाः॥ (याज्ञवल्क्यस्मृति ३। ६)

व्यापादयेत् तथात्मानं स्वयं योऽग्निविषादिभिः। विहितं तस्य नाशौचं नाग्निर्नाप्युदकादिकम्॥ (कूर्मपुराण, उ० २३। ७३)

६८. श्राद्ध तथा अमावस्याके अवसरपर यदि मन्थन-क्रिया (दही बिलोना) किया जाय तो उससे होनेवाला मट्ठा मदिराके समान तथा घी गोमांसके समान माना गया है।

६९. श्राद्ध और हवनके समय तो एक हाथसे पिण्ड एवं आहुति दे, पर तर्पणमें दोनों हाथोंसे जल देना चाहिये।

७०. नाभिके बराबर जलमें खड़ा होकर मन-ही-मन यह चिन्तन करे कि मेरे पितर आयें और यह जलाञ्जलि ग्रहण करें। दोनों हाथोंको संयुक्त करके जलसे पूर्ण करे और गोशृंगमात्र जल उठाकर उसे पुनः जलमें डाल दे। जलमें दक्षिणकी ओर मुँह करके खड़ा होकर आकाशमें जल गिराना चाहिये; क्योंकि पितरोंका स्थान आकाश और दिशा दक्षिण है।
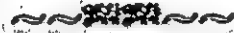
~~~~

६८. पितृश्राद्धे अमावस्यां मन्थानं कुरुते यदि। घृतं गोमांसवत्प्रोक्तं तक्रं चापि सुरासमम्॥ (व्याघ्रपादस्मृति १५७)

अमावस्यां पितृश्राद्धे मन्थनं यस्तु कारयेत्। तत्तक्रं मदिरातुल्यं घृतं गोमांसवत्स्मृतम्॥ (स्कन्दपुराण, प्रभास० २०६।५६)

६९. श्राद्धे हवनकाले च दद्यादेकेन पाणिना। उभाभ्यां तर्पणे दद्यादिति धर्मो व्यपस्थितः॥ (लघुयमस्मृति ९९)

श्राद्धे भोजनकाले च पाणिनैकेन दापयेत्॥ उभाभ्यां तर्पणे दद्याद्विधिरेष सनातनः। (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१।४७-४८)

श्राद्धे हवनकाले च पाणिनैकेन निर्वपेत्। तर्पणे तूभयं कुर्यादेष एव विधिः सदा॥ (ब्रह्मपुराण ६०।५५; नारदपुराण, पूर्व० ५६।६२-६३)

श्राद्धसाधनकाले तु पाणिनैकेन दीयते। तर्पणं तूभयेनैव विधिरेष सदा स्मृतः॥ (मत्स्यपुराण २२।९१)

श्राद्धे हवनकाले च दद्यादेकेन पाणिना। उभाभ्यां तर्पणे दद्यादेष धर्मो व्यवस्थितः॥ (नारदपुराण, पूर्व० १४।९४)

७०. नाभिमात्रे जले स्थित्वा हृदयेनानुचिन्तयेत्। आगच्छन्तु मे पितरो गृह्णन्त्वेताञ्जलाञ्जलीन्॥ हस्तौ कृत्वा सुसंयुक्तो पूरयित्वा जलेन च। गोशृङ्गमात्रमुद्धृत्य जलमध्ये जलं क्षिपेत्॥ आकाशे च क्षिपेद्वारि वारिस्थो दक्षिणामुखः। पितृणां स्थानमाकाशं दक्षिणा दिक्तथैव च॥ (लघुयमस्मृति ९२—९४)

नाभिमात्रे जले स्थित्वा हृदयेन तु चिन्तयेत्। आगच्छन्तु मे पितरो गृह्णन्त्वेताञ्जलाञ्जलीन्॥ हस्तौ कृत्वा तु संयुक्तौ पूरयित्वा जलेन च। गोशृङ्गमात्रमुद्धृत्य जलमध्ये विनिःक्षिपेत्॥ आकाशे च क्षिपेद्वारि वारिस्थो दक्षिणामुखः। पितृणां स्थानमाकाशं दक्षिणादिक् तथैव च॥ (नारदपुराण, पूर्व० १४।८७—८९)

~~~~

प्रकीर्ण

१. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा नीच जातिमें उत्पन्न हुए पुरुषसे भी यदि ज्ञान मिलता हो तो उसे श्रद्धापूर्वक ग्रहण करना चाहिये।

२. प्रायश्चित्त, चिकित्सा, ज्यौतिषका फलादेश अथवा धर्मका निर्णय—इनको जो बिना शास्त्रके यों ही कह देता है, वह ब्रह्महत्यारा कहा गया है।

३. कल किया जानेवाला काम आज और सायंकालमें किया जानेवाला काम प्रातःकालमें ही पूरा कर लेना चाहिये; क्योंकि मौत यह नहीं देखती कि इसका काम अभी पूरा हुआ है या नहीं?

४. लेने, देने तथा करनेयोग्य कार्यको शीघ्र कर देना चाहिये। उसमें देरी करनेसे काल उसके रसको पी जाता है।

५. अनेक कार्य उपस्थित होनेपर बुद्धिमान् मनुष्यको आवश्यक कार्य पहले तथा शीघ्रतासे करना चाहिये और न करनेयोग्य कार्य पीछे तथा देरीसे करना चाहिये।

---

१. प्राप्य ज्ञानं ब्राह्मणात् क्षत्रियाद् वा वैश्याच्छूद्रादपि नीचादभीक्ष्णम्। श्रद्धातव्यं श्रद्दधानेन नित्यं न श्रद्धिनं जन्ममृत्यू विशेताम्॥ (महाभारत, शान्ति० ३१८।८८)

श्रद्दधानः शुभां विद्यां हीनादपि समाप्नुयात्। (महाभारत, शान्ति० १६५।३१)

श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि। (मनुस्मृति २।२३८; भविष्यपुराण, ब्राह्म० ४।२०७)

२. प्रायश्चित्तं चिकित्सां च ज्योतिषे धर्मनिर्णयम्। विना शास्त्रेण यो ब्रूयात्तमाहुर्ब्रह्मघातकम्॥ (नारदपुराण, पूर्व० १२।६४)

३. श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्। न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम्॥ (महाभारत, शान्ति० १७५।१५, २७७।१३) [..........] कृतं वास्य न वाऽकृतम्॥ (विष्णुस्मृति २०)

४. आदेयस्य प्रदेयस्य कर्तव्यस्य च कर्मणः। क्षिप्रमक्रियमाणस्य कालः पिबति तद्रसम्॥ (हितोपदेश, सन्धि० १०१)

५. अत्यावश्यमनावश्यं क्रमात् कार्यं समाचरेत्॥ प्राक्पश्चाद्द्राग्विलम्बेन प्रासं कार्यं तु बुद्धिमान्। (शुक्रनीति ३।१४९-१५०)

६. कुटुम्बमें धन आदिका बँटवारा एक ही बार होता है, कन्या एक ही बार दी जाती है और किसी वस्तुको देनेकी प्रतिज्ञा भी एक ही बार की जाती है। सत्पुरुषोंके ये तीनों कार्य एक ही बार हुआ करते हैं।

७. सोकर नींदको जीतनेका प्रयास न करे। कामोपभोगके द्वारा स्त्रीको जीतनेकी इच्छा न करे। लकड़ी डालकर आगको जीतनेकी आशा न रखे। अधिक पीकर मदिरा पीनेकी आदतको जीतनेका प्रयास न करे।

८. खूब सोच-विचारकर काम करना चाहिये। जल्दबाजीसे किसी कामका आरम्भ नहीं करना चाहिये। अविवेकपूर्वक हठात् कार्य करनेसे महान् विपत्तियाँ आ पड़ती हैं और सोच-विचारकर कार्य करनेसे सम्पत्ति स्वयं दौड़कर आती है।

९. बुद्धिमान् मनुष्यको राजा, ब्राह्मण, वैद्य, मूर्ख, मित्र, गुरु और प्रियजनोंके साथ विवाद नहीं करना चाहिये।

१०. साँपों और हथियारोंसे खिलवाड़ नहीं करना चाहिये।

११. उगते हुए सूर्यकी धूप, चिताका धुआँ, वृद्धा स्त्री, पूरी तरह न जमा हुआ दही, झाड़ूकी धूल और टूटा हुआ आसन—इनका सेवन

---

६. सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते। सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत्॥ (मनुस्मृति ९। ४७; महाभारत, वन० २९४। २६)

७. न स्वप्नेन जयेन्निद्रां न कामेन जयेत् स्त्रियः। नेन्धनेन जयेदग्निं न पानेन सुरां जयेत्॥ (महाभारत, उद्योग० ३९। ८१)

८. सम्प्रधार्य च कुर्वीत न वेगेन समाचरेत्॥ (महाभारत, उद्योग० ३४। ८)

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्। वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयंमेव सम्पदः॥ (किरातार्जुनीयम् २। ३०)

९. विवादं न च कुर्वीत नृपविप्रचिकित्सकैः। (पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। १०१)

मतिमत्सु मूर्खमित्रगुरुवल्लभेषु विवादो न कर्तव्यः। (चाणक्यसूत्र ३५२)

१०. 'न सर्पशस्त्रैः क्रीडेत' (विष्णुस्मृति ७१; कूर्मपुराण, उ० १६। ५८; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ५८; विष्णुधर्मोत्तर० ३। २३३। २५३)

११. बालातपः प्रेतधूमो वर्ज्यं भिन्नं तथासनम्। (मनुस्मृति ४। ६९)

दीर्घायु चाहनेवाले पुरुषको नहीं करना चाहिये।

१२. जो दीर्घकालतक जीवित रहना चाहता हो, वह गाय-बैलोंकी पीठपर न चढ़े, चिताका धुआँ अपने अंगमें न लगने दे, (गंगाके सिवाय अन्य) नदीके तटपर न बैठे, उदयकालीन सूर्यकी किरणोंका स्पर्श न करे और दिनमें सोना छोड़ दे।

१३. फटा-टूटा या अग्निसे जला आसन, टूटी खाट और फूटे बर्तनका त्याग कर दे।

१४. घरमें प्रवेशका मार्ग द्वार ही है, इसलिये अपने या दूसरे, किसीके भी घरमें द्वारके सिवाय अन्य किसी मार्गसे प्रवेश नहीं करना चाहिये। द्वारके सिवाय और किसी मार्गसे घरमें प्रवेश करनेपर गोत्रका नाश होता है।

न बालातपमासेवेत् प्रेतधूमं विवर्जयेत्। (कूर्मपुराण, उ० १६। ६७; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ६७)

बालातपः प्रेतधूमः स्त्री वृद्धा तरुणं दधि। आयुष्कामो न सेवेत तथा सम्मार्जनीरजः॥ (गरुड़पुराण, आचार० ११४। ४०)

१२. आरोहणं गवां पृष्ठे प्रेतधूमं सरित्तटम्॥ बालातपं दिवास्वापं त्यजेद्दीर्घं जिजीविषुः। (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ६६-६७)

१३. न चासीतासने भिन्ने भिन्न कांस्यं च वर्जयेत्॥ (महाभारत, अनु० १०४। ६६)

भिन्नासनभाजनादीन् दूरतः परिवर्जयेत्॥ (वामनपुराण १४। ४७)

भिन्नासनं तथा शय्यां भाजनं च विवर्जयेत्॥ (मार्कण्डेयपुराण ३४। ३१)

भिन्नासनं च शय्यां च भाजनं च विवर्जयेत्। (ब्रह्मपुराण २२१। ३१)

भिन्नासनं भिन्नशय्यां वर्जयेद् भिन्नभाजनम्॥ (स्कन्दपुराण, मा० कौ० ४१। १४१)

१४. अद्वारेण च नातीयाद्ग्रामं वा वेश्म वावृतम्। (मनुस्मृति ४। ७३)

'नाद्वारेण विशेत् क्वचित्' (याज्ञवल्क्यस्मृति १। १४०)

'नाद्वारेण विशेद्वेश्म' (अग्निपुराण १५५। १९)

गृहे प्रवेशनं द्वारे लोकैरपि समीरितम्। अपद्वारप्रवेशेन विदुर्गोत्रक्षयं गृहम्॥ (अग्निपुराण ९७। २४)

अद्वारेण न गन्तव्यं स्ववेश्मापि कदाचन। (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ७१)

'नाद्वारेणाविशेत् क्वचित्' (गरुड़पुराण, आचार० ९६। ४३)

१५. छोटी-छोटी बातके लिये शपथ नहीं लेनी चाहिये। व्यर्थ शपथ लेनेवाला मनुष्य इहलोक और परलोकमें भी नष्ट होता है।

१६. गन्ध, पुष्प, कुश, गौ, दूध, दही, साग, मधु, जल, फल, मूल, ईंधन और अभय-दक्षिणा—ये वस्तुएँ निकृष्ट मनुष्यसे भी प्राप्त हों तो ग्रहण कर लेनी चाहिये।

१७. अग्निशाला, गौशाला, देवता और ब्राह्मणके समीप तथा जप, स्वाध्याय और भोजन व जल ग्रहण करते समय जूते उतार देने चाहिये।

१८. मन्त्रहीन आहुति, मरे हुए बछड़ेकी गायका दूध, दशमीविद्धा द्वादशी, केश रखनेवाली विधवा, स्नानके बिना व्रत और बिना वैष्णवका राज्य—ये सब श्रेष्ठ नहीं माने जाते।

१९. वृक्षपर नहीं चढ़ना चाहिये।

२०. कुएँमें नहीं उतरना चाहिये।

---

१५. न वृथा शपथं कुर्यात् स्वल्पेप्यर्थे नरोत्तमः। वृथा हि शपथं कुर्वन्प्रेत्य चेह विनश्यति॥ (स्कन्दपुराण, काशी० पू० ४०।१५३)

१६. गन्धं पुष्पं कुशा गवाः शाकं मांसं पयो दधि। मधूदकं फलं मूलमेधांस्यभयदक्षिणा। अभ्युद्यतानि ग्राह्याणि त्वेतान्यपि निकृष्टतः॥ (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६।१०१-१०२)

१७. अग्न्यगारे गवां गोष्ठे देवब्राह्मणसन्निधौ। आहारे जपकाले च पादुकानां विसर्जनम्॥ (आंगिरसस्मृति)

अग्न्यगारे गवां गोष्ठे ब्राह्मणानां च सन्निधौ। स्वाध्याये भोजने चैव पादुकानां विसर्जनम्॥ (आपस्तम्बस्मृति ९।२०)

अग्न्यगारे गवां गोष्ठे देवब्राह्मणसन्निधौ। स्वाध्याये भोजने पाने पादुके वै विसर्जयेत्॥ (स्कन्दपुराण, काशी० पू० ४०।१३१)

१८. यथाऽऽहुतिर्मन्त्रहीना मृतवत्सापयो यथा। द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम्॥ सकेशा विधवा यद्वद् व्रतं स्नानविवर्जितम्। द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम्॥ (स्कन्दपुराण, वैष्णव० मार्गशीर्ष० ११।३५-३६)

१९. न वृक्षमारोहेत्। (वसिष्ठस्मृति १२।२५; गोभिलगृह्यसूत्र ३।५।३१)

'नारोहेच्छिखरं तरोः' (विष्णुपुराण ३।१२।८)

'न द्रुममारोहेत्' (चरकसंहिता, सूत्र० ८।१९)

२०. न कूपमवरोहेत्। (वसिष्ठस्मृति १२।२६)

२१. कुएँ तथा गड्ढेमें नहीं देखना चाहिये।

२२. आसन, शय्या, सवारी, खड़ाऊँ, दातुन एवं पाद-पीठके लिये पलाशकी लकड़ीका उपयोग नहीं करना चाहिये।

२३. जो बायें हाथसे भोजन करते हैं, गोदमें रखकर खाते हैं, पलाशके आसनपर बैठते हैं और तेंदूकी लकड़ीका दातुन करते हैं तथा उषःकालमें सोते हैं, उनको नरक प्राप्त होते हैं।

२४. अग्निशाला (अग्निहोत्र)-में, देवमन्दिरमें, गौओंके बीचमें, ब्राह्मणोंके पासमें, स्वाध्यायमें और भोजनमें दाहिना हाथ काममें लेना चाहिये।

२५. कुम्हड़ा काटने या फोड़नेवाली स्त्री और दीपक बुझानेवाला पुरुष कई जन्मोंतक रोगी और दरिद्र होते हैं।

---

२१. न कूपमवेक्षेत। न गर्तमवेक्षेत। (बौधायनस्मृति २।३।५४-५५)

नोदपानमवेक्षेत्। (गोभिलगृह्यसूत्र ३।५।१३)

२२. पालाशमासनं पादुके दन्तधावनमिति वर्जयेत्। (बौधायनस्मृति २।३।३०, वसिष्ठस्मृति १२।३२, गौतमस्मृति ९) (बौधायनधर्मसूत्र २।३।६।४)

अथ पालाशं दन्तधावनं नाद्यात्। (विष्णुस्मृति ६१)

पालाशमासनं पादुके दन्तप्रक्षालनमिति वर्जयेत्। (आपस्तम्बधर्मसूत्र १।११।३२।९)

'पालाशमासनं वर्ज्यम्' (अग्निपुराण १५५।२०)

पालाशमासनं वर्ज्यं पादपीठं च पादुके॥ (विष्णुधर्मोत्तर० २।८९।२९)

पालाशमासनं चैव पादुके दन्तधावनम्। वर्जयेत्.................................... (स्कन्दपुराण, मा० कौ० ४१।१२५)

२३. भुञ्जानानां तु सव्येन उत्सङ्गे चापि खादताम्। पालाशमासनं चैव तिन्दुकैर्दन्तधावनम्॥ ये चावर्जयतां लोकाः स्वपतां च तथोषसि। (महाभारत, द्रोण० ७३।३८-३९)

२४. अग्न्यगारे गवां गोष्ठे ब्राह्मणानां च सन्निधौ। स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणं पाणिमुद्धरेत्॥ (मनुस्मृति ४।५८)। देवागारे गवां मध्ये ब्राह्मणानां क्रियापथे.........। (महाभारत, शान्ति० १९३।२०)

अग्न्यगारे गवां मध्ये ब्राह्मणां च सन्निधौ। स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणं बाहुमुद्धरेत्॥ (बौधायनस्मृति २।३।६५)

अग्निदेवब्राह्मणसन्निधौ प्रदक्षिणं पाणिमुद्धरेत्। (विष्णुस्मृति ७१)

२५. कुष्माण्डघातिका या स्त्री दीपनिर्वाणकः पुमान्। सप्तजन्म भवेद्रोगी दरिद्रो जन्मजन्मनि॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण० ७५।७५)

२६. दीपककी, खाटकी और शरीरकी 'छाया', केशका, वस्त्रका और चटाईका 'जल', बकरीके, झाड़ूके और बिल्लीके नीचेकी 'धूल'— ये सब शुभ प्रारब्धको हर लेते हैं।

२७. सूप फटकनेसे निकली हुई वायु, नाखूनका जल, स्नान किये हुए वस्त्रसे निचोड़ा हुआ जल, केशोंसे गिरता हुआ जल तथा झाड़ूकी धूल मनुष्यके पूर्वजन्मके अर्जित पुण्यको भी नष्ट कर देती है।

२८. सूपकी हवा, चिताका धुआँ, शूद्रका अन्न तथा वृषलीका पति— इनको दूरसे ही त्याग देना चाहिये।

२९. सामनेकी वायु, धूप, धूल, ओस, आँधी और चिताके धुएँसे अपनेको बचाना चाहिये।

३०. नदीके किनारेकी वृक्षकी छायाका आश्रय नहीं लेना चाहिये।

---

२६. दीपखट्वातनुच्छाया केशवस्त्रकटोदकम्। अजामार्जनिमार्जाररेणुर्दैवं शुभं हरेत्॥ (नारदपुराण, पूर्व० २६। ३२)

२७. शूर्पवातनखाग्रान्तकेशबन्धपटोदकम्। मार्जनीरेणुसंस्पर्शो हन्ति पुण्यं दिवाकृतम्॥ (लघुशंखस्मृति ६९)

शूर्पवातनखाग्राम्बुस्नानं वस्त्रपदोदकं। मार्जनीरेणुकेशाम्बु हन्ति पुण्यं दिवाकृतम्॥ (अत्रिसंहिता ३१६)

शूर्पवातो नखाद्बिन्दुः केशवस्त्रघटोदकम्। मार्जनीरेणुसहितं हन्ति पुण्यं पुराकृतम्॥ (दाल्भ्यस्मृति १६५)

शूर्पवातो नखाग्राम्बु स्नानवस्त्रमृजोदकम्। मार्जनीरेणुः केशाम्बु हन्ति पुण्यं पुराकृतम्॥ (गरुड़पुराण, आचार० ११४। ४४)

२८. शूर्प्पवातं प्रेतधूमं तथा शूद्रान्नभोजनम्। वृषलीपतिसङ्गं च दूरतः परिवर्जयेत्॥ (नारदपुराण, पूर्व० २६। ३३)

२९. 'न प्रतिवातातपं सेवेत' (सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। ९६)

'पुरोवातातपरजस्तुषारपरुषानिलान्', 'धूमं शवाश्रयम्' (अष्टाङ्गहृदय, सूत्र २। ४०, ४४)

'पुरोवातातपावश्यायातिप्रवाताञ्जह्यात्' (चरकसंहिता, सूत्र० ८। १९)

..........दूरेण वर्जयेत्। अवश्यायं च राजेन्द्र पुरोवातातपौ तथा॥ (विष्णुपुराण ३। १२। १८)

३०. कूलच्छायां नृपद्विष्टं व्यालदंष्ट्रिविषाणिनः॥ (अष्टाङ्गहृदय, सूत्र० २। ४१)

३१. पक्षियोंको उड़ानेके लिये खाली हाथ उठानेके बाद जलसे हाथ धोना चाहिये।

३२. यदि सामर्थ्य हो तो एक क्षण भी अपवित्र और नग्न नहीं रहना चाहिये।

३३. उद्दण्ड, उन्मत्त, मूढ़, अविनीत, शीलहीन, चोरी आदिसे दूषित, अधिक अपव्ययी, लोभी, वैरी, कुलटाके पति, अधिक बलवान्, अधिक दुर्बल, लोकमें निन्दित तथा सबपर सन्देह करनेवाले लोगोंसे कभी मित्रता न करे। साधु, सदाचारी, विद्वान्, चुगली न करनेवाले, सामर्थ्यवान् तथा उद्योगी पुरुषोंसे मित्रता स्थापित करे।

३४. 'मुझे कुछ दीजिये'—यह वाक्य मुँहसे निकलते ही बुद्धि, श्री, लज्जा, शान्ति और कीर्ति—ये शरीरके पाँच देवता तुरन्त निकलकर चल देते हैं।

३५. गौओंकी पीठपर सवारी करना सर्वथा ही निन्दित है।

३६. स्वयं अपने जूतोंको नहीं ढोना चाहिये।

---

३१. रिक्तपाणिर्वयस उद्यम्याऽप उपस्पृशेत्। (आपस्तम्बधर्मसूत्र १। ५। १५। ७)

३२. शक्तिविषये न मुहूर्तमप्यप्रयतः स्यात्। नग्नो वा। (आपस्तम्बधर्मसूत्र १। ५। १५। ८-९)

३३. नोद्धतोन्मत्तमूढैश्च नाविनीतैश्च पण्डितः। गच्छेन्मैत्रीं न चाशीलैर्न च चौर्यादिदूषितैः॥ न चातिव्ययशीलैश्च न लुब्धैर्नापि वैरिभिः। न बन्धकीभिर्न द्यूतैर्बन्धकीपतिभिस्तथा॥ नातृप्तिकैर्न च क्रूरैर्न च न्यूनैर्न निन्दितैः। न सर्वशङ्किभिर्नित्यं न च दैवपरैर्नरैः॥ कुर्वीत साधुभिर्मैत्रीं सदाचारावलम्बिभिः। प्राज्ञैरपिशुनैः शस्तैः कर्मण्युद्योगभागिभिः॥ (मार्कण्डेयपुराण ३४। ८७—९०)

३४. देहीति वचनद्वारा देहस्थाः पञ्च देवताः। सद्यो निर्गत्य गच्छन्ति धीश्रीह्रीशान्तिकीर्तयः॥ (ब्रह्मपुराण १३७। १०)

३५. गवां च यानं पृष्ठेन सर्वथैव विगर्हितम्॥ (मनुस्मृति ४। ७२)

३६. 'स्वयं नोपानहौ हरेत्' (मनुस्मृति ४। ७४; कूर्मपुराण, उ० १६। ६७; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ६७)

'नोपानहौ स्वयं हरेत्।' (गोभिलगृह्यसूत्र ३। ५। १२)

३७. गलेसे उतारी हुई पुष्पमालाको पुनः धारण नहीं करना चाहिये।

३८. बुद्धिमान् मनुष्यको स्त्री, बालक, रोग, दास, पशु, धन, विद्याभ्यास, साधु पुरुषोंकी सेवा—इनकी एक क्षण भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।

३९. ऋण, अग्नि, रोग तथा शत्रु—इनमेंसे कुछ भी शेष रह जाय तो वह निरन्तर बढ़ता रहता है, इसलिये इनमेंसे किसीको भी शेष नहीं छोड़ना चाहिये। इनको निःशेष करनेवाला बुद्धिमान् मनुष्य कभी कष्टको प्राप्त नहीं होता।

४०. स्वजनोंके साथ विरोध, बलवान्‌के साथ स्पर्धा और स्त्री, बालक, वृद्ध या मूर्खके साथ विवाद कभी नहीं करना चाहिये।

४१. जो कार्य लोकमें निन्दित हो, वह धर्मयुक्त होनेपर भी स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला नहीं होता।

---

३७. 'बहिर्माल्यं न धारयेत्' (मनुस्मृति ४। ७२)
'न बहिर्मालां धारयेत्' (वसिष्ठस्मृति १२। ३५)
'बहिर्माल्यं .... विवर्जयेत्॥'
(कूर्मपुराण, उ० १६। ८३; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ८४-८५)
'न बहिर्धारयीत च' (महाभारत, अनु० १०४। ५३)

३८. नोपेक्षेत स्त्रियं बालं रोगं दासं पशुं धनम्। विद्याभ्यासं क्षणमपि सत्सेवां बुद्धिमान्नरः॥ (शुक्रनीति ३। ४३)

३९. ऋणशेषमाग्निशेषं शत्रुशेषं तथैव च। पुनः पुनः प्रवर्धन्ते तस्माच्छेषं न धारयेत्॥ (महाभारत, शान्ति० १४०। ५८)
ऋणशेषं चाग्निशेषं शत्रुशेषं तथैव च। व्याधिशेषं च निःशेषं कृत्वा प्राज्ञो न सीदति॥ (पञ्चतन्त्र, काको० २३९)
ऋणशेषं चाग्निशेषं व्याधिशेषं तथैव च। पुनः पुनः प्रवर्द्धन्ते तस्माच्छेषं न कारयेत्॥ (गरुड़पुराण, आचार० ११५। ४६)
ऋणशेषं रोगशेषं शत्रुशेषं न रक्षयेत्॥ (शुक्रनीति ३। १०८)

४०. स्वजनैर्न विरुद्ध्यते न स्पर्धेत बलीयसा। न कुर्यात् स्त्रीबालवृद्धमूर्खेषु च विवादनम्॥ (शुक्रनीति ३। ५३)

४१. 'अस्वर्ग्यं स्याद्धर्म्यमपि लोकविद्वेषितं तु यत्' (शुक्रनीति ३। ६५)

४२. भोजन करते हुए रास्ता न चले, हँसते हुए बात न करे, नष्ट हुएका शोक न करे और अपने किये हुएकी प्रशंसा न करे।

४३. अकेले स्वादिष्ट भोजन न करे, अकेले किसी विषयपर विचार न करे, अकेले मार्ग न चले और सोये हुए अनेक लोगोंके बीच अकेले जागता न रहे।

४४. अपनी उन्नति चाहनेवाले मनुष्यको इन छः दुर्गुणोंका त्याग कर देना चाहिये—निद्रा, तन्द्रा (ऊँघना), भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता (जल्दी हो जानेवाले काममें अधिक देर लगानेकी आदत)।

४५. पति-पत्नी अथवा पिता-पुत्रके आपसी झगड़ेमें किसीकी तरफसे साक्षी (गवाही) नहीं देनी चाहिये।

४६. शत्रुके भी गुणोंको ग्रहण करना चाहिये और गुरुके भी दुर्गुणोंका त्याग करना चाहिये।

४७. स्त्रीसंग, भोजन और मल-मूत्रका त्याग सदा एकान्तमें करना चाहिये।

---

४२. खादन्न गच्छेदध्वानं न च हास्येन भाषणम्। शोकं न कुर्यान्नष्टस्य स्वकृतेरपि जल्पनम्॥ (शुक्रनीति ३। १४३)

४३. एकः स्वादु न भुञ्जीत एकोऽर्थान्न विचिन्तयेत्। एको न गच्छेदध्वानं नैकः सुप्तेषु जागृयात्॥ (शुक्रनीति ३। ५४)
एकः स्वादु न भुञ्जीत एकश्चार्थान् न चिन्तयेत्। एको न गच्छेदध्वानं नैकः सुप्तेषु जागृयात्॥ (महाभारत, उद्योग० ३३। ४६)

४४. षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता। निद्रा तन्द्रा भयं क्रोधं आलस्यं दीर्घसूत्रता॥ (महाभारत, उद्योग० ३३। ७८, शुक्रनीति ३। ५६)

४५. दम्पत्योः कलहे साक्ष्यं न कुर्यात् पितृपुत्रयोः। (शुक्रनीति ३। ६३)

४६. शत्रोरपि गुणा ग्राह्या गुरोस्त्याज्यास्तु दुर्गुणाः। (शुक्रनीति ३। ६७)

४७. आहारनिर्हारविहारयोगाः सुसंवृता धर्मविदा तु कार्याः। (वसिष्ठस्मृति ६। ९)
कुर्याद्विहारमाहारं निर्हारं विजने सदा। (शुक्रनीति ३। ११२)
आहारनीहारविहारयोगाः सुसंवृता धर्मविदानुकार्याः। (स्कन्दपुराण, मा० कौ० ४१। १२९)

४८. कलह करनेसे आयु, धन, मित्र, यश तथा सुखका नाश होता है। अतः कलह कभी न करे।

४९. विद्या चाहनेवालेको क्षणका और धन चाहनेवालेको कणका त्याग नहीं करना चाहिये, प्रत्युत क्षण-क्षण विद्याका अभ्यास और कण-कण धनका संग्रह करना चाहिये।

५०. कुत्तोंका मैथुन करना, ऋण लेना, गर्भधारण करना, स्वामी बनना, दुष्टोंके साथ मित्रता करना और कुपथ्यका सेवन करना—ये आरम्भमें तो सुखदायी प्रतीत होते हैं, पर परिणाममें दुःखदायी होते हैं।

५१. हाथी, घोड़ा, बैल, बालक, स्त्री तथा तोता—इनके जैसे शिक्षक होते हैं, उसके अनुसार ही ये संसर्गवश अच्छे या बुरे बन जाते हैं।

५२. प्रकृतिके अनुकूल न होनेपर भी पथ्यका सेवन करना चाहिये और प्रकृतिके अनुकूल होनेपर भी कुपथ्यका सेवन नहीं करना चाहिये।

५३. कभी भी छिपकर किसीकी बातें नहीं सुननी चाहिये। दूसरोंकी गुप्त बातोंको जाननेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये और जाननेपर उन्हें छिपाना चाहिये।

---

४८. अन्यथाऽऽयुर्धनसुहृद्यशः सुखहरः स्मृतः। (शुक्रनीति ३। ११८)

४९. क्षणशः कणशश्चैव विद्यामर्थं च साधयेत्॥ न त्याज्यौ तु क्षणकणौ नित्यं विद्याधनार्थिना। (शुक्रनीति ३। १७६-१७७)

५०. श्वमैथुनमृणं गर्भाधानं स्वामित्वमेव च॥ खलसख्यमपथ्यं तु प्राक्सुखं दुःखनिर्गमम्। (शुक्रनीति ३। २८९-२९०)

५१. हस्त्यश्ववृषबालस्त्रीशुकानां शिक्षको यथा॥ तथा भवन्ति ते नित्यं संसर्गगुणधारकाः। (शुक्रनीति ३। २९१-२९२)

५२. असात्म्यमपि पथ्यं सेवेत न पुनः सात्म्यमप्यपथ्यम्॥ (नीतिवाक्यामृतम् २५। ५२)

५३. सँल्लापं नैव शृणुयाद् गुप्तः कस्यापि सर्वदा॥ (शुक्रनीति ३। १४४)
परहस्यं नैव श्रोतव्यम्। (चाणक्यसूत्र २४४)
वर्जयेद् वै रहस्यानि परेषां गूहयेद् बुधः। (कूर्मपुराण, उ० १६। ४१)
वर्जयेद्वै रहस्यानि परेषां गर्हणं बुधः॥ (पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ३९)

५४. अधार्मिक, राजाके शत्रु, पागल, पतित, भ्रूणहत्यारे, क्षुद्र (नीच) तथा दुष्ट व्यक्तियोंके साथ नहीं बैठना चाहिये।

५५. अधिक साहस, अधिक शयन, अधिक जागरण, अधिक स्नान और अधिक भोजन न करे।

५६. सोना, जागना, लेटना, बैठना, खड़े रहना, घूमना, घोड़े आदिकी सवारी, दौड़ना, कूदना, लाँघना, तैरना, विवाद करना, हँसना, बोलना, मैथुन और व्यायाम—इन्हें अधिक मात्रामें नहीं करना चाहिये।

५७. व्यायाम, रात्रि-जागरण, पैदल चलना, मैथुन, हँसना और बोलना—इन्हें अधिक मात्रामें करनेपर मनुष्य नष्ट हो जाता है।

५८. मूढ़ चित्तवाला अधम मनुष्य बिना बुलाये ही भीतर चला आता है, बिना पूछे ही बहुत बोलता है और अविश्वसनीय मनुष्योंपर भी विश्वास करता है।

५९. बुढ़ापा सुन्दर रूपको, आशा धीरताको, मृत्यु प्राणोंको, दोष देखनेकी आदत धर्माचरणको, क्रोध लक्ष्मीको, नीच पुरुषोंकी सेवा सत्स्वभावको, काम लज्जाको और अभिमान सर्वस्वको नष्ट कर देता है।

---

५४. 'नाधार्मिकैर्न नरेन्द्रद्विष्टैः सहासीत नोन्मत्तैर्न पतितैर्न भ्रूणहन्तृभिर्न क्षुद्रैर्न दुष्टैः' (चरकसंहिता, सूत्र० ८। १९)

५५. 'न साहसातिस्वप्नप्रजागरस्नानपानान्यासेवेत' (चरकसंहिता, सूत्र० ८। १९)

५६. न स्वप्नजागरणशयनासनस्थानचङ्क्रमणयानवाहनप्रधावनलङ्घनप्लवनप्रतरण-हास्यभाष्यव्यवायव्यायामादीनुचितानप्यतिसेवेत। (सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। ९६)

५७. व्यायामजागराध्वस्त्रीहास्यभाष्यादि साहसम्। गजं सिंह इवाकर्षन् भजन्नति विनश्यति॥ (अष्टाङ्गहृदय, सूत्र० २। १४)
व्यायामहास्यभाष्याध्वग्राम्यधर्मप्रजागरान्। नोचितानपि सेवेत बुद्धिमानतिमात्रया॥ (चरकसंहिता, सूत्र० ७। ३४)

५८. अनाहूतः प्रविशति अपृष्टो बहु भाषते। अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता नराधमः॥ (महाभारत, उद्योग० ३३। ३६)

५९. जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा मृत्युः प्राणान् धर्मचर्यामसूया। क्रोधः श्रियं शीलमनार्यसेवा ह्रियं कामः सर्वमेवाभिमानः॥ (महाभारत, उद्योग० ३५। ५०)
जरा रूपं ....। कामो ह्रियं वृत्तमनार्यसेवा क्रोधः श्रियं सर्वमेवाभिमानः॥ (महाभारत, उद्योग० ३७। ८)

६०. तिल, कुश और तुलसी—ये तीन पदार्थ मरणासन्न व्यक्तिकी दुर्गतिको रोककर उसे सद्‌गति दिलाते हैं।

६१. सबसे पहले भूमिको गोबरसे लीपना चाहिये। फिर उसके ऊपर तिल और कुश बिछाने चाहिये। उसपर मरणासन्न व्यक्तिको लिटा देना चाहिये। ऐसा करनेसे वह व्यक्ति पापमुक्त होकर स्वर्गको प्राप्त होता है।

६२. यदि मरणासन्न व्यक्तिके प्राण न निकल रहे हों तो उस समय उसके हाथसे लवणका दान करवाना चाहिये।

६३. शव और शव-गन्धसे घृणा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि शव-गन्ध सोमका अंश है।

६४. श्मशानभूमिसे लौटनेपर सबसे पहले नीमकी पत्ती चबाकर, फिर आचमन करके अग्नि, जल, गोबर, सफेद सरसों आदि मांगलिक पदार्थोंका हाथसे स्पर्श करके और पत्थरपर पैर रखकर धीरे-धीरे घरमें प्रवेश करना चाहिये।

---

६०. तिला पवित्रमतुलं दर्भाश्चापि तुलस्यपि। निवारयन्ति चैतानि दुर्गतिं प्राप्तमातुरम्॥ (गरुड़पुराण, उत्तर० १९। २४)

६१. लेप्या गोमयैर्भूमिस्तिलान् दर्भांश्च निक्षिपेत्। तस्यामेवातुरो मुक्तः सर्वं दहति दुष्कृतम्॥ (गरुड़पुराण, उत्तर० १९। ७)

६२. ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः स्त्रीणां शूद्रजनस्य च॥ आतुरस्य यदा प्राणान्नयन्ति वसुधातले। लवणं तु तदा देयं द्वारस्योद्‌घाटनं दिवः॥ (गरुड़पुराण, उत्तर० १९। ३१-३२)

६३. न हुङ्कुर्याच्छवं गन्धं शवगन्धो हि सोमजः॥ (विष्णुपुराण ३। १२। १२)

'न हुंकुर्याच्छवम्' (चरकसंहिता, सूत्र० ८। १९)

६४. विदश्य निम्बपत्राणि नियता द्वारि वेश्मनः॥ आचम्याग्न्यादि सलिलं गोमयं गौरसर्षपान्। प्रविशेयुः समालभ्य दत्वाऽश्मनि पदं शनैः॥ (याज्ञवल्क्यस्मृति ३। १२-१३)

क्रिया कार्य्या यथाशक्ति ततो गच्छेद् गृहान् प्रति। विदार्य्य निम्बपत्राणि नियता द्वारि वेश्मनः॥ आचम्याथाग्निमुदकं गोमयं गौरसर्षपान्। प्रविशेयुः समालभ्य कृत्वाश्मनि पदं शनैः॥ प्रवेशनादिकं कर्म प्रेतसंस्पर्शनादपि। (गरुड़पुराण, आचार० १०६। ७—९)

निवेशनद्वारे पिचुमन्दपत्राणि विदुश्याचम्योदकमग्निं गोमयं गौरसर्षपांस्तैलमालभ्याश्मानमाक्रम्य प्रविशन्ति। (पारस्करगृह्यसूत्र ३। १०। २४)

६५. अत्यन्त अभिमान, अधिक बोलना, त्यागका अभाव, क्रोध, अपना ही पेट पालनेकी चिन्ता और मित्रद्रोह—ये छः तीखी तलवारें देहधारियोंकी आयुको काटती हैं।

६६. देवता, गुरु, गौ, ब्राह्मण, राजा, वृद्ध, बालक और रोगीपर होनेवाले क्रोधको प्रयत्नपूर्वक रोकना चाहिये।

६७. जो चोर नहीं है, उसे चोर कह देनेसे मनुष्यको चोरसे दूना पाप लगता है।

६८. मल-मूत्रका त्याग करने तथा रास्ता चलनेके बाद और स्वाध्याय तथा भोजन करनेसे पहले पैर धो लेने चाहिये।

६९. विद्वान् पुरुषको सफेद फूलोंकी माला धारण करनी चाहिये, लाल फूलोंकी नहीं। परन्तु कमल और कुवलयपर यह नियम लागू नहीं होता।

७०. अपनी ही वाणीसे अपने गुणोंका वर्णन करना अपने ही हाथों अपनी हत्या करनेके समान है।

७१. दूसरेके अन्तःपुर और खजानाघरमें प्रवेश नहीं करना चाहिये।

---

६५. अतिमानोऽतिवादश्च तथात्यागो नराधिप। क्रोधश्चात्मविधित्सा च मित्रद्रोहश्च तानि षट्॥ एत एवासयस्तीक्ष्णा कृन्तन्त्यायूंषि देहिनाम्। एतानि मानवान् घ्नन्ति न मृत्युर्भद्रमस्तु ते॥ (महाभारत, उद्योग० ३७। १०-११)

६६. दैवतेषु प्रयत्नेन राजसु ब्राह्मणेषु च। नियन्तव्यः सदा क्रोधो वृद्धबालातुरेषु च॥ (महाभारत, उद्योग० ३८। ३०)

देवतासु गुरौ गोषु राजसु ब्राह्मणेषु च। नियन्तव्यः सदा कोपो बालवृद्धाऽऽतुरेषु च॥ (हितोपदेश, विग्रह० १२२)

६७. अस्तेन स्तेन इत्युक्त्वा द्विगुणं पापमाप्नुयात्। (महाभारत, शान्ति० १६५। ४२)

६८. कृत्वा मूत्रपुरीषे तु रथ्यामाक्रम्य वा पुनः। पादप्रक्षालनं कुर्यात् स्वाध्याये भोजने तथा॥ (महाभारत, अनु० १०४। ३९)

६९. रक्तमाल्यं न धार्यं स्याच्छुक्लं धार्यं तु पण्डितैः। वर्जयित्वा तु कमलं तथा कुवलयं प्रभो॥ (महाभारत, अनु० १०४। ८३)

७०. ब्रवीहि वाचाद्य गुणानिहात्मनस्तथा हतात्मा भवितासि पार्थ। (महाभारत, कर्ण० ७०। २९)

७१. अन्तःपुरं वित्तगृहं परदौत्यं व्रजेन्न हि॥ (अग्निपुराण १५५। १६)

७२. दूसरोंसे गाली सुनकर भी स्वयं उन्हें गाली नहीं देनी चाहिये। गालीको सहन करनेवालेका रोका हुआ क्रोध ही गाली देनेवालेको जला डालता है और उसके पुण्यको भी ले लेता है।

७३. शरीरमें तेल लगानेके बाद, चिताका धुआँ लगने (श्मशान जाने) के बाद, स्त्रीसंग करनेके बाद तथा केश बनानेके बाद मनुष्य जबतक स्नान नहीं करता, तबतक चाण्डाल बना रहता है।

७४. जो मनुष्य पत्थर रखकर, काँटे बिछाकर अथवा गड्ढे खोदकर रास्ता रोकते हैं, वे नरकमें गिरते हैं।

७५. पशु, साँप और पक्षियोंको परस्पर लड़ानेके लिये उत्तेजित नहीं करना चाहिये।

७६. ये नौ बातें गोपनीय हैं, इन्हें प्रकट नहीं करना चाहिये—अपनी आयु, धन, घरका कोई भेद, मन्त्र, मैथुन, औषधि, तप, दान तथा अपमान।

७७. इन नौ व्यक्तियोंको जो कुछ दिया जाय, वह निष्फल होता है—धूर्त, वन्दी, मूर्ख, अयोग्य वैद्य, जुआरी, शठ, चाटुकार, चारण (प्रशंसाके गीत गानेवाले) और चोर।

---

७२. आक्रुश्यमानो नाक्रोशेन्मन्युरेव तितिक्षतः। आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं चास्य विन्दति॥ (महाभारत, उद्योग० ३६। ५)। **आक्रोश्यमानो नाक्रोशेन्मन्युमेव तितिक्षति।** .... (मत्स्यपुराण ३६। ७)।

७३. तैलाभ्यङ्गे चिताधूमे मैथुने क्षौरकर्मणि।
तावद्भवति चाण्डालो यावत्स्नानं न चाचरेत्॥ (चाणक्यनीति० ८। ६)

७४. शिलाभिः शङ्कुभिर्वापि श्वभ्रैर्वा भरतर्षभ। ये मार्गमनुरुन्धन्ति ते वै निरयगामिनः॥ (महाभारत, अनु० २३। ७७)

७५. परस्परं पशून् व्यालान् पक्षिणो नावबोधयेत्॥ (कूर्मपुराण, उ० १६। ८१)
परस्परं पशून् व्याघ्रान् पक्षिणो न च योधयेत्॥ (पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ८२)

७६. आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं मन्त्रमैथुनभेषजम्॥ तपोदानावमानौ च नव गोप्यानि यत्नतः। (दक्षस्मृति ३। १२-१३)

७७. धूर्ते वन्दिनि मन्दे च कुवैद्ये कितवे शठे। चाटुचारणचौरेभ्यो दत्तं भवति निष्फलम्॥ (दक्षस्मृति ३। १६)

७८. ये नौ वस्तुएँ आपत्तिकालमें भी दूसरोंको नहीं देनी चाहिये, देनेसे महान् पाप लगता है—१. सर्वसामान्य जनताकी सम्पत्ति, २. चन्देकी राशि, ३. दूसरेको देनेके लिये रखी हुई वस्तु या धरोहरकी सम्पत्ति, ४. बन्धनकी वस्तु, ५. अपनी स्त्री, ६. स्त्रीका धन, ७. जमानतकी सम्पत्ति, ८. अमानतकी वस्तु, ९. सन्तानके रहते हुए अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति।

७९. अपनी स्त्री, भोजन और धन—इन तीनोंमें सन्तोष करना चाहिये; परन्तु अध्ययन (स्वाध्याय), तप (जप) और दान—इन तीनोंमें सन्तोष नहीं करना चाहिये।

८०. राजा, गुरु, अग्नि और स्त्री—इनका मध्यम मार्गसे ही सेवन करना चाहिये; क्योंकि ये अत्यन्त दूर रहनेपर फल नहीं देते और अत्यन्त नजदीक रहनेपर विनाशका कारण बनते हैं।

८१. उम्र, कर्म, धन, शास्त्रज्ञान और कुलके अनुसार ही वेष, वचन और बुद्धिका व्यवहार करना चाहिये।

८२. यदि अपने पास कोई मिलनेके लिये आये तो उसके बोलनेसे पहले ही अपनी ओरसे उससे बोलना (कुशल-क्षेम पूछना) चाहिये।

८३. जूता पहने हुए जमीनपर नहीं बैठना चाहिये।

---

७८. सामान्यं याचितं न्यास आधिर्दाराश्च तद्धनम्। क्रमायातं च निक्षेपः सर्वस्वं चान्वये सति॥ आपत्स्वपि न देयानि नव वस्तूनि सर्वदा। यो ददाति स मूढात्मा प्रायश्चित्तीयते नरः॥ (दक्षस्मृति ३। १७-१८)

७९. सन्तोषस्त्रिषु कर्त्तव्यः स्वदारे भोजने धने। त्रिषु चैव न कर्तव्योऽध्ययने तपदानयोः॥ (चाणक्यनीति ७। ४)

८०. अत्यासन्ना विनाशाय दूरस्था न फलप्रदाः। ते सेव्या मध्यभागेन राजा वह्निर्गुरुः स्त्रियः॥ (चाणक्यनीति० १४। ११)

८१. वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्याभिजनस्य च। वेषवाग्बुद्धिसारूप्यमाचरन्विचरेदिह॥ (मनुस्मृति ४। १८)

८२. 'पूर्वाभिभाषिणा' (सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। ८९)
'पूर्वाभिभाषी' (चरकसंहिता, सूत्र० ८। १८)

८३. 'सोपानत्को नोपविशेत्' (स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ७४)

८४. छींकनेपर, थूकनेपर, दाँतोंसे उच्छिष्ट छू जानेपर, मुखसे असत्य बात निकलनेपर तथा पतितोंके साथ बातचीत होनेपर शुद्ध होनेके लिये दाहिने कानका स्पर्श करना चाहिये।

८५. छींकने, चाटने, वमन करने, थूकने तथा अस्पृश्यका स्पर्श करनेपर आचमन, गायकी पीठका स्पर्श, सूर्यका दर्शन अथवा अपने दाहिने कानका स्पर्श करना चाहिये। इनमें पहले उपायके अभावमें दूसरा उपाय करना चाहिये।

८६. अपनी तथा गौ और ब्राह्मणकी रक्षाके लिये, अन्य वर्णोंमें आनेवाली बुराईको अथवा वर्णसंकरताको रोकनेके लिये, दुर्दान्त दुष्टोंका दमन करनेके लिये ब्राह्मण तथा वैश्य भी शस्त्र धारण करे तो उसे दोष नहीं लगता।

८७. साहसी (डाकू) मनुष्योंके द्वारा द्विजों तथा ब्रह्मचर्य आदि आश्रमवासियोंके धर्ममें बाधा लगनेपर, देशमें अराजकता होनेके कारण युद्ध आदिकी सम्भावना होनेपर, अपनी और गौ, स्त्री तथा ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये द्विजातियोंको शस्त्र ग्रहण करना चाहिये।

---

८४. क्षुते निष्ठीवने चैव दन्तोच्छिष्टे तथाऽनृते। पतितानां च सम्भाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत्॥ (पाराशरस्मृति ७। ३७, १२। १९; देवीभागवत ११। ३। २)

क्षुते निष्ठीवने स्वापे परिधानेऽश्रुपातने॥ पञ्चस्वेतेषु नाचामेद्दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत्। (गरुड़पुराण, आचार० ९७। ९-१०)

८५. क्षुतेऽवलीढे वान्ते च तथा निष्ठीवनादिषु। कुर्यादाचमनं स्पर्शं गोपृष्ठस्यार्कदर्शनम्॥ कुर्वीतालम्भनं वापि दक्षिणश्रवणस्य वै। यथा विभवतो ह्येतत् पूर्वाभावे ततः परम्॥ अविद्यमाने पूर्वोक्ते उत्तरप्राप्तिरिष्यते। (मार्कण्डेयपुराण ३४। ७०—७२) ।.........
न विद्यमाने पूर्वोक्ते उत्तरप्राप्तिरिष्यते। (ब्रह्मपुराण २२१। ६७-६९)

८६. गवार्थे ब्राह्मणार्थे वा वर्णानां वाऽपि संकरे। गृह्णीयातां विप्रविशौ शस्त्रं धर्मव्यपेक्षया॥ (बौधायनस्मृति २। २। ८०)

ब्राह्मणस्त्रिषु कालेषु शस्त्रं गृह्णन्न दुष्यति। आत्मत्राणे वर्णदोषे दुर्दम्यनियमेषु च॥ (महाभारत, शान्ति० ७८। ३४)। गोब्राह्मणहितार्थं च वर्णानां संकरेषु च। वैश्यो गृह्णीत शस्त्राणि परित्राणार्थमात्मनः॥ (महाभारत, शान्ति० १६५। ३३)

८७. शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रोपरुध्यते। द्विजातीनां च वर्णानां विप्लवे कालकारिते॥ आत्मनश्च परित्राणे दक्षिणानां च संगरे। स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ च घ्नन्धर्मेण न दुष्यति॥ (मनुस्मृति ८। ३४८-३४९)

८८. एक शय्यापर सोना, एक आसनपर बैठना, एक पंक्तिमें बैठना, एक बर्तनमें खाना, भोजनका परस्पर आदान-प्रदान करना, यज्ञ करना, पढ़ाना, विवाह-सम्बन्ध स्थापित करना, साथ बैठकर भोजन करना, एक पुस्तकपर पढ़ना और एक साथ यज्ञ कराना—ये संकरताका प्रसार करनेवाले ग्यारह सांकर्यदोष हैं। इन सांकर्यदोषोंसे यत्नपूर्वक बचना चाहिये।

८९. जो राख आदिसे सीमा बनाकर (पंक्तिका भेद करके)एक पंक्तिमें बैठते और एक-दूसरेका स्पर्श नहीं करते, उनमें संकरताका दोष नहीं आता। अग्नि, भस्म (राख), जल, द्वार, खम्भा तथा मार्ग—इन छ:से पंक्तिका भेद होता है।

९०. जहाँ असत्य बोलनेसे प्राणियोंकी प्राणरक्षा होती हो, वहाँ वह असत्य भी सत्य है और सत्य भी असत्य है।

---

८८. एकशय्यासनं पंक्तिर्भाण्डे पक्वान्नमिश्रणम्। याजनाध्यापने योनिस्तथैव सहभोजनम्॥ सहाध्यायस्तु दशमः सहयाजनमेव च। एकादश समुद्दिष्टा दोषाः साङ्कर्यसंज्ञिताः॥ (कूर्मपुराण, उ० १६। २८-२९; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। २५—२७)

८९. एकपङ्क्त्युपविष्टा ये न स्पृशन्ति परस्परम्। भस्मना कृतमर्यादा न तेषां संकरो भवेत्॥ अग्निना भस्मना चैव सलिलेनावसेकतः। द्वारेण स्तम्भमार्गेण षड्भिः पंक्तिर्विभिद्यते॥ (कूर्मपुराण, उ० १६। ३१-३२; पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। २८—३०)

अग्निना भस्मना वापि स्तम्भेन सलिलेन वा। द्वारस्य चोपमार्गेण पंक्तिदोषो न विद्यते॥ (व्याघ्रपादस्मृति १९६)

उदकं च तृणं भस्म द्वारं पन्थास्तथैव च। एभिरन्तरितं कृत्वा पंक्तिदोषो न विद्यते॥ (अग्निपुराण १६६। २१)

अग्निना भस्मना वापि यवेनाप्युदकेन वा। द्वारसंक्रमणेनापि पंक्तिदोषो न विद्यते॥ (स्कन्दपुराण, प्रभास० २०६। १८)

९०. उक्त्वाऽनृतं भवेद्यत्र प्राणिनां प्राणरक्षणम्॥ अनृतं तत्र सत्यं स्यात्सत्यमप्यनृतं भवेत्। (पद्मपुराण, सृष्टि० १८। ३९५—३९७)

नानृतवचने दोषो जीवनं चेत्तदधीनम्॥ (गौतमधर्मसूत्र २। ४। २४)

९१. विवाहकालमें, स्त्रीप्रसंगके समय, किसीके प्राणोंपर संकट आनेपर, सर्वस्वका अपहरण होते समय तथा ब्राह्मणके हितके लिये असत्य बोलनेसे पाप नहीं लगता।*

९२. म्लेच्छ, अपवित्र और अधार्मिक व्यक्तियोंसे बातचीत नहीं करनी चाहिये।

९३. ऐसी जगह नहीं बैठना चाहिये, जहाँसे कोई उठा दे।

९४. ईंटें मारकर अथवा फलके द्वारा फलोंको नहीं तोड़ना चाहिये।

९५. पेड़पर चढ़कर स्वयं फल नहीं तोड़ने चाहिये।

९६. देवताओंके चरित्रकी नकल नहीं करनी चाहिये।

९७. अपनी शक्तिको जानकर ही किसी कार्यका आरम्भ करना चाहिये।

---

९१. उद्वाहकाले रतिसम्प्रयोगे प्राणात्यये सर्वधनापहारे। विप्रस्य चार्थे ह्यनृतं वदेयुः पञ्चानृतान्याहुरपातकानि॥ (वसिष्ठस्मृति १६। ३१)

विवाहकाले…वदेत पञ्चानृतान्याहुरपातकानि॥ (महाभारत, कर्ण० ६९। ३३)

न नर्मयुक्तं वचनं हिनस्ति न स्त्रीषु विप्रा न विवाहकाले। प्राणात्यये सर्वधनापहारे पञ्चानृतान्याहुरपातकानि॥ (विष्णुधर्मोत्तर० ३। २५१। ३०)

९२. 'न म्लेच्छाशुच्यधार्मिकैः सह सम्भाषेत' (गौतमस्मृति ९); (गौतमधर्मसूत्र १। ९। १७) चण्डालैः पतितैर्म्लेच्छैर्भाषणं न कदाचन। (विष्णुधर्मोत्तर० २। ८९। ४८)

९३. न तत्रोपविशेद्यत एनमन्य उत्थापयेत्॥ (बौधायनस्मृति २। ३। ५६); (बौधायनधर्मसूत्र २। ३। ६। २९)

९४. नेष्टकाभिः फलानि पातयेत्। न फलेन फलं न कल्को न कुहको भवेत्। (वसिष्ठस्मृति ६। ३४-३५)

न शातयेदिष्टकाभिः फलानि न फलेन च। (कूर्मपुराण, उ० १६। ६१)

न शातयेदिष्टिकाभिर्मूलानि च फलानि च। (पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ६१)

९५. न फलानि स्वयं प्रचिन्वीत॥ (गोभिलगृह्यसूत्र ३। ५। १४)

९६. न देवचरितं चरेत्। (चाणक्यसूत्र ६७)

९७. स्वशक्तिं ज्ञात्वा कार्यमारभेत। (चाणक्यसूत्र १३५)

---

* इन अवसरोंपर असत्य-भाषणका पाप तो नहीं लगता, पर सत्यपालनका नियम भंग हो जाता है! सत्यपालनका नियम भंग न हो—इसके लिये उपयुक्त अवसरोंपर चुप रहे, कुछ न बोले।

९८. बुद्धिमान् मनुष्यको क्षुद्र व्यक्तियोंके सामने गुप्त बातोंको प्रकट नहीं करना चाहिये।

९९. राजा, देवता और गुरुके पास खाली हाथ नहीं जाना चाहिये।

१००. अपनी वृद्धि और विनाश जीभके अधीन है। जीभ ही विष तथा अमृतकी खान है। प्रिय वाणी बोलनेवालेका कोई शत्रु नहीं होता। देवता भी स्तुति करनेसे प्रसन्न हो जाते हैं।

१०१. अपने स्थान या पदपर स्थित रहनेपर ही मनुष्यका आदर होता है। दाँत, केश, नख तथा मनुष्य—ये चारों अपने स्थानसे भ्रष्ट होनेपर आदर नहीं पाते। अतः बुद्धिमान् मनुष्यको अपने स्थानका त्याग नहीं करना चाहिये।

१०२. बुद्धिमान् मनुष्यको उपायके साथ-साथ अपाय (कार्यकी हानि)-को भी सोच लेना चाहिये।

१०३. मौनकालमें, देवकार्यके समय, पितृकार्यके समय तथा हवनादि अग्निकार्य करते समय देवभाषा संस्कृतका प्रयोग करना चाहिये।

१०४. बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि वह बिना पूछे और अन्यायसे पूछनेपर कोई उत्तर न दे। वह जानता हुआ भी संसारमें मूढ़के समान बर्ताव करे।

---

९८. क्षुद्रे गुह्यप्रकाशनमात्मवान् न कुर्यात्। (चाणक्यसूत्र १४१)

९९. रिक्तहस्तो न राजानमभिगच्छेत्। गुरुं च दैवं च। (चाणक्यसूत्र ३७४-३७५)

१००. जिह्वायत्तौ वृद्धिविनाशौ। विषामृतयोराकरी जिह्वा। प्रियवादिनो न शत्रुः। स्तुता अपि देवतास्तुष्यन्ति। (चाणक्यसूत्र ४४०—४४३)

१०१. स्थानस्थितानि पूज्यन्ते पूज्यन्ते च पदे स्थिताः। स्थानभ्रष्टा न पूज्यन्ते केशा दन्ता नखा नराः॥ (गरुड़पुराण, आचार० ११५। ७३)

स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः। इति विज्ञाय मतिमान् स्वस्थानं न परित्यजेत्॥ (हितोपदेश, मित्रलाभ० १०३)

१०२. उपायं चिन्तयेत्प्राज्ञस्तथापायं च चिन्तयेत्। (पञ्चतन्त्र, मित्रभेद० ४३९)

१०३. मौनकालेषु नितरां कर्मकालेषु दैविके। पैतृके वा पावकेषु दिव्यां भाषां वदेदतः॥ (मार्कण्डेयस्मृति)

१०४. नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः। जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत्॥ (मनुस्मृति २। ११०; पद्मपुराण, पाताल० १००। १८)

१०५. जो मनुष्य कसाईके हाथ पड़े हुए पशुको खरीदकर उसके प्राण बचाता है, वह इस लोकमें सर्वत्र सुख पाता है और मरनेपर स्वर्गमें जाता है। उस पशुके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने वर्षोंतक वह स्वर्गमें निवास करता है।

१०६. जिनपर झूठा कलंक (दोष) लगाया जाता है, उनके रोनेसे जो आँसू निकलते हैं, वे झूठा कलंक लगानेवालेके पुत्रों और पशुओंका विनाश कर डालते हैं। अतः किसीपर भी कभी झूठा कलंक नहीं लगाना चाहिये।

१०७. एकत्र हुए पक्षियोंकी गणना नहीं करनी चाहिये।

१०८. द्विजको सदा यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये और शिखा बाँधकर रखनी चाहिये। यज्ञोपवीत और शिखाके बिना जो भी यज्ञादि पुण्यकर्म किये जाते हैं, वे सब निष्फल हो जाते हैं।

१०९. यदि कोई मनुष्य प्रमादवश शिखा कटवा ले तो वह कुशाकी शिखा बनाकर दाहिने कानपर तबतक रखे, जबतक बाँधनेयोग्य शिखा न बढ़ जाय।

---

१०५. वधकस्य हस्तगतं पशुं क्रीत्वा नरोत्तमः। नाकलोकमवाप्नोति सुखी सर्वत्र जायते॥ यावन्ति पशुरोमाणि तावद्वर्षाणि मानवः। स्वर्गलोकमवाप्नोति यश्च त्राणं करोत्यसौ॥ (विष्णुधर्मोत्तर० ३। ३०२। २४-२५)

१०६. यानि मिथ्याभिशस्तानां पतन्त्यश्रूणि रोदनात्। तानि पुत्रान् पशून् घ्नन्ति तेषां मिथ्याभिशंसिनाम्॥ (कूर्मपुराण, उ० १६। ४३)। नृणां मिथ्याभिशस्तानां..................... (पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ४१-४२)

१०७. न पततः सङ्क्षीत। (आपस्तम्बधर्मसूत्र १। ११। ३१। १९)

१०८. सदोपवीती चैव स्यात् सदा बद्धशिखो द्विजः। अन्यथा यत्कृतं कर्म तद् भवत्ययथाकृतम्॥ (औशनसस्मृति, १।७; कूर्मपुराण, उ० १२।७)

सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च। विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्॥ (कात्यायनस्मृति १।४)

विना यज्ञोपवीतेन विना बद्धशिखेन च। विशेषोह्युपवीतेन यत्कृतं नैव तत्कृतम्॥ (व्याघ्रपादस्मृति १९९)

१०९. अथ चेत् प्रमादान्निशिखं वपनं स्यात् तत्र कौशीं शिखां ब्रह्मग्रन्थिसमन्वितां दक्षिणकर्णोपरि आशिखाबन्धादवतिष्ठेत्॥ (काठकगृह्यसूत्र)

११०. यदि वृद्धावस्थामें बाल झड़ जानेके कारण शिखा न रहे तो यथासम्भव चारों ओर बचे हुए बालोंसे शिखा बनाकर नित्यकर्म करता रहे। यदि बाल बिलकुल न हों तो कुशा आदिकी शिखा रखकर नित्यकर्म करे, पर शिखाशून्य कभी न रहे।

१११. अस्सी वर्षका बूढ़ा, सोलह वर्षसे कम अवस्थाका बालक, स्त्री और रोगी—ये सभी आधे प्रायश्चित्तके योग्य होते हैं। पाँच वर्षसे अधिक और ग्यारह वर्षसे कम अवस्थाके बालकके किये हुए पापका प्रायश्चित्त उसके गुरु अथवा सुहृद् (माता, पिता, भाई आदि) करें।

११२. मनुष्य पापकर्म करनेके बाद यदि उसके लिये सन्ताप (पश्चात्ताप) करता है तो वह उस पापसे छूट जाता है और 'फिर कभी मैं ऐसा पाप नहीं करूँगा'—ऐसा दृढ़ निश्चय कर लेता है तो वह पवित्र हो जाता है।

---

११०. सत्यूर्ध्वं तु चेत्तस्याः पूर्वतः पृष्ठतोऽपि वा। पार्श्वतः परितो वापि समुद्भूतैश्च रोमभिः॥ शिखा कार्या प्रयत्नेन न चेन्नैवोपपद्यते। तत्स्थाने सर्वशून्ये तु परितो वापि किं पुनः॥ ब्राह्मण्यसूचनार्थैवं तानि लोमानि धारयेत्। अन्यथा न भवेदेव तथा तस्मात्समाचरेत्॥ (आंगिरसस्मृति-२, पूर्व० ६१—६३)

१११. अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाप्यूनषोडशः। प्रायश्चित्तार्द्धमर्हन्ति स्त्रियो व्याधित एव च॥ न्यूनैकादशवर्षस्य पञ्चवर्षाधिकस्य च। चरेद्गुरुः सुहृद्वापि प्रायश्चित्तं विशोधनम्॥ (आपस्तम्बस्मृति ३। ६-७)

अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाप्यूनषोडशः। प्रायश्चित्तार्द्धमर्हन्ति स्त्रियो रोगिण एव च॥ (विष्णुस्मृति ५४)

असमर्थस्य बालस्य पिता वा यदि वा गुरुः। यमुद्दिश्य चरेद्धर्मं पापं तस्य न विद्यते॥ अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालोवाप्यूनषोडशः। प्रायश्चित्तार्द्धमर्हन्ति स्त्रियो रोगिण एव च॥ (आंगिरसस्मृति ३२-३३)

ऊनैकादशवर्षस्य पञ्चवर्षात्परस्य च। प्रायश्चित्तं चरेद्भ्राता पिता वान्योऽपि बान्धवः॥ अतो बालतरस्यापि नापराधो न पातकम्। राजदण्डो न तस्यास्ति प्रायश्चित्तं न विद्यते॥ अशीत्यधिकवर्षाणि बालो वाऽप्यूनषोडशः। प्रायश्चित्तार्धमर्हन्ति स्त्रियो व्याधित एव च॥ (बृहद्यमस्मृति ३। १—३)

११२. कृत्वा पापं हि सन्तप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते। नैवं कुर्यां पुनरिति निवृत्त्या पूयते तु सः॥ (मनुस्मृति ११। २३०)

११३. इन्द्रधनुष, सूर्यमण्डलका घेरा, चन्द्रमण्डलका घेरा, चिताकी आग, स्वर्ण, उल्कापात और उत्पात—ये वस्तुएँ दूसरेको नहीं दिखानी चाहिये।

११४. दोनों सन्ध्या, जप, भोजन, दन्तधावन, पितृकार्य, देवकार्य, मल-मूत्रका त्याग, गुरुके समीप, दान तथा यज्ञ—इन अवसरोंपर जो मौन रहता है, वह स्वर्गमें जाता है।

११५. मार्गगमन, मैथुन, मल-मूत्रका त्याग, दन्तधावन, स्नान, भोजन, जप तथा होम—इन कार्योंको करते समय मौन धारण करना चाहिये।

---

११३. न सूर्यपरिवेषं वा नेन्द्रचापं शवाग्निकम्। परस्मै कथयेद् विद्वान् शशिनं वा कदाचन॥ (कूर्मपुराण, उ० १६। ३४)

न सूर्यपरिवेषं वा नेन्द्रचापं शराग्निकम्। परस्मै कथयेद्विद्वाञ्छशिनं वाथ काञ्चनम्॥ (पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५। ३२)

न दिवीन्द्रायुधं दृष्ट्वा कस्यचिद्दर्शयेद्बुधः॥ (मनुस्मृति ४। ५९)

न कस्मैचिदाचक्षीत, न चोल्कापातोत्पातेन्द्रधनूंषि। (सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा० २४। ९२)

नेन्द्रधनुर्नाम्ना निर्दिशेत्। मणिधनुरिति ब्रूयात्। (वसिष्ठस्मृति १२। ३०-३१)

नेन्द्रधनुरिति परस्मै ब्रूयात्। यदि ब्रूयान्मणिधनुरित्येव ब्रूयात्। (बौधायनस्मृति २। ३। ३८-३९)

'नेन्द्रचापं प्रदर्शयेत्' (पद्मपुराण, पाताल० ९। ५७; स्कन्दपुराण, ब्रह्म० धर्मा० ६। ६१)

नेन्द्रधनुरिति परस्मै प्रब्रूयात्। (आपस्तम्बधर्मसूत्र १। ११। ३१। १८); (बौधायनधर्मसूत्र २। ३। ६। ११)

११४. सन्ध्ययोरुभयोर्जाप्ये भोजने दन्तधावने। पितृकार्ये च दैवे च तथा मूत्रपुरीषयोः॥ गुरूणां सन्निधौ दाने यागे चैव विशेषतः॥ एतेषु मौनमातिष्ठन्स्वर्गं प्राप्नोति मानवः॥ (स्कन्दपुराण, प्रभास० २०६। १४-१५)

सन्ध्ययोरुभयोर्जाप्ये भोजने दन्तधावने॥ पितृकार्ये च दैवे च तथा मूत्रपुरीषयोः। उत्सारे मैथुने वापि तथा वै गुरुसन्निधौ॥ यागे दाने ब्रह्मयज्ञे द्विजो मौनं समाचरेत्। (देवीभागवत ११। २। ११—१३)

११५. पुरीषे मैथुने होमे प्रस्रावे दन्तधावने। स्नानभोजनजप्येषु सदा मौनं समाचरेत्॥ (अत्रिसंहिता ३२१)

मेहने मैथुने स्नाने भोजने दन्तधावने। इज्यया सह होमे च जपेन्मौनं समाचरेत्॥ (शाण्डिल्यस्मृति २। ८)

प्रचारे मैथुने चैव प्रस्रावे दन्तधावने॥ स्नानभोजनकाले च षट्सु मौनं समाचरेत्। (अग्निपुराण १६६। १७-१८)

११६. अपना श्रेय चाहनेवाले पुरुषको अपने, गुरुके, अति कृपणके, ज्येष्ठ सन्तानके और धर्मपत्नीके नामका उच्चारण नहीं करना चाहिये।

११७. पूर्वकी ओर मुख करके अन्नका भक्षण करे, दक्षिणकी ओर मुख करके मलत्याग करे, उत्तरकी ओर मुख करके मूत्रत्याग करे और पश्चिमकी ओर मुख करके अपने पैरोंको धोये।

११८. जो शरीरके लिये हितकारक एवं नियमित भोजन करनेवाला है, सदा एकान्तमें रहनेके स्वभाववाला है, किसीके पूछनेपर कभी कोई हितकी उचित बात कह देता है अर्थात् बहुत कम बोलनेवाला है, बहुत कम सोनेवाला तथा कम घूमनेवाला है—इस प्रकार जो शास्त्रकी मर्यादाके अनुसार खान-पान-विहार आदिका सेवन करनेवाला है, वह शीघ्र ही चित्तकी प्रसन्नताको प्राप्त कर लेता है। तात्पर्य है कि इन उपायोंसे मन सदा प्रसन्न रहता है।

११९. बुद्धिमान् मनुष्य अपनेको अजर-अमर मानकर विद्या और धनका उपार्जन करे तथा मृत्युने मेरे केश पकड़े हुए हैं—ऐसा समझकर सदा धर्मका आचरण करे।

---

११६. आत्मनाम गुरोर्नाम नामातिकृपणस्य च। श्रेयस्कामो न गृह्णीयाज्ज्येष्ठापत्यकलत्रयोः॥

११७. प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीतोच्चरेद्दक्षिणामुखः। उदङ्मुखो मूत्रं कुर्यात्प्रत्यक्पादावनेजनमिति॥ (आपस्तम्बधर्मसूत्र १। ११। ३१। १)

११८. हितपरिमितभोजी नित्यमेकान्तसेवी सकृदुचितहितोक्तिः स्वल्पनिद्रा-विहारः। अनुनियमनशीलो यो भजत्युक्तकाले स लभत इह शीघ्रं साधु-चित्तप्रसादम्॥ (सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसंग्रह ३७२)

११९. अजराऽमरवत्प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्। गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्॥ (हितोपदेश, कथामुख ३)

आहरेज्ज्ञानमर्थांश्च नरो ह्यमरवत्सदा। केशैरिव गृहीतस्तु मृत्युना धर्ममाचरेत्॥ (विष्णुधर्मोत्तर० ३। २३३। २५४)

१२०. दिनभरमें वह कार्य कर ले, जिससे रातमें सुखसे रह सके और आठ महीनोंमें वह कार्य कर ले, जिससे वर्षाके चार महीने सुखसे व्यतीत कर सके। पहली अवस्थामें वह कार्य करे, जिससे वृद्धावस्थामें सुखपूर्वक रह सके और जीवनभर वह कार्य करे, जिससे मरनेके बाद भी सुखसे रह सके।

१२१. धर्मका सार सुनो और सुनकर उसे धारण करो। दूसरोंके द्वारा किये हुए जिस बर्तावको अपने नहीं चाहते, उसे दूसरोंके प्रति भी मत करो। कारण कि जो बर्ताव अपने लिये अप्रिय है, वह दूसरोंके लिये भी प्रिय नहीं हो सकता।

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे
आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी॥

(श्रीमद्भागवत० ५। १८। ९)

'नाथ! विश्वका कल्याण हो, दुष्टोंकी बुद्धि शुद्ध हो, सब प्राणियोंमें परस्पर सद्भावना हो, सभी एक-दूसरेका हित-चिन्तन करें, हमारा मन शुभ मार्गमें प्रवृत्त हो और हम सबकी बुद्धि निष्कामभावसे भगवान् श्रीहरिमें प्रवेश करे।'

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

---

१२०. दिवसेनैव तत् कुर्याद् येन रात्रौ सुखं वसेत्। अष्टमासेन तत् कुर्याद् येन वर्षाः सुखं वसेत्॥ पूर्वे वयसि तत् कुर्याद् येन वृद्धः सुखं वसेत्। यावज्जीवेन तत् कुर्याद् येन प्रेत्य सुखं वसेत्॥ (महाभारत, उद्योग० ३५। ६७-६८)

१२१. श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैतत्प्रधार्यताम्। आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥ (पद्मपुराण, सृष्टि० १९। ३५५)

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम्। आत्मनः..................

(विष्णुधर्मोत्तर० ३। २५३। ४४)

यदन्यैर्विहितं नेच्छेदात्मनः कर्म पूरुषः। न तत् परेषु कुर्वीत जानन्नप्रियमात्मनः॥

(महाभारत, शान्ति० २५९। २०)

कलियुगकी लीला

धनि कलियुग महराज आपने लीला अजब दिखाई है।
उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है॥
नीति पंथ उठ गया कचहरी पापन आन लगाई है।
धर्म गया पाताल सभीके मन बेधरमी छाई है॥
गुप्त हुए सच्चे वकील झूठोंकी बात सवाई है।
सच्चोंकी परतीति नहीं झूठोंने सनद बनाई है॥
न्याय छोड़ अन्याय करैं राजोंने नीति गँवाई है।
हकदारोंका हक्क मेट बेहकपर कलम उठाई है॥
जो हैं जाली फरेबवाले उनकी ही बनि आई है।
उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है॥ १ ॥
गूजर जाट बने संन्यासी पोथी बगल दबाई है।
मूड़ मुड़ाकर इक धेलेमें कफनी लाल रँगाई है॥
पन्थ चले लाखों पाखण्डी अद्भुत कथा बनाई है।
मुँह काला कर दिया किसीने शिरपर जटा रखाई है॥
हुए नीच कुरसी नसीन ऊँचोंको नहीं तिपाई है।
जुगनू पहुँचे आसमान पर जाकर दुम चमकाई है॥
फाँके करते सन्त मिलै भडुओंको दूध मलाई है।
उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है॥ २ ॥
सास बहूसे लड़ै बहू भी आँख फेर झुँझलाई है।
लेकर मूसल हाथ कोसती दाँत पीस उठ धाई है॥
घरवालेको छोड़ गैर कर कुलकी लाज गँवाई है।
निज पतिकी सेवा तजकर परपति प्रीति लगाई है॥
पुरुष हुए ऐसे व्यभिचारी विषयवासना छाई है।
वेश्याओंके फन्देमें पड़ घरकी तजी लुगाई है॥
मात पिताकी करैं बुराई नारि परम सुखदाई है।
उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है॥ ३ ॥
ब्याह बुढ़ापेमें जो करते उनपर गजब खुदाई है।
साठ बरसके आप, करी कन्याके सङ्ग सगाई है॥
कुछ दिन पीछे आप मर गये करके रांड बिठाई है।
लगी करन व्यभिचार लाज तजि घर घर लोग हँसाई है॥
पंडित पाधा करैं दलाली मंत्री जिनका भाई है।
शर्म रही नहिं बेशर्मोंको बेटी बेचकर खाई है॥
बहन भानजी त्यागन करके साली न्योति जिमाई है।
उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है॥ ४ ॥
गंगाजल गोरसको छोड़कर गाढ़ी भांग छनाई है।
भक्ष्य अभक्ष्य लगे खाने मदिराकी होति छकाई है॥
श्वसुर बहूको कुदृष्टि देखै अपनी नियति डुलाई है।
ठट्ठा अरु मसखरी करै सासूसे ज्वान जमाई है॥

कहै भतीजा चचासे अपने तू मूरख सौदाई है।
हमें चैन करनेसे मतलब किसकी चाची ताई है॥
बहिन बहिनसे लड़ै और लड़ता भाईसे भाई है।
उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है॥ ५॥
जामा अङ्गा दिया त्याग अरु पगड़ी फारि बहाई है।
पहन कोट पतलून शीशपर टोपी गोल जमाई है॥
तोड़ तख्त अरु सिंहासनको लाके बेंच बिछाई है।
खीर खाँड़को त्यागन करके रोटी डबल पकाई है॥
तोड़के ठाकुरद्वारा मसजिद सबकी करी सफाई है।
गिरजाघरमें जा करके ईसाकी करी बड़ाई है॥
बात करै सब अंगरेजीमें निज भाषा बिसराई है।
उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है॥ ६॥
मित्र शत्रुसम हुए प्रीतिकी डाली तोड़ जलाई है।
विद्या बिन हो गये विप्र गायत्री तलक भुलाई है॥
क्षत्रिय बैठे नारी बनकर ले तलवार छिपाई है।
बन आईना कुछ बनियोंसे माया मुफ्त लुटाई है॥
शूद्र हुए धनवान ब्राह्मणोंने कीन्हीं स्योकाई है।
गयाबाल और मथुराके चौबोंकी बात बनि आई है॥
चारों युगोंसे कलिने अपनी नई रीति दिखलाई है।
उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है॥ ७॥
अपूज पूजने लगे कहैं सब शिरपर देवी आई है।
घर घरमें गुलगुले शेख सद्दोकी चढ़ी कढ़ाई है॥
परब्रह्मको छोड़ भूत प्रेतोंकी दई दुहाई है।
मूंड हिलाती कही मलिनि या कहैं कुसुम्भी माई है॥
बालभोग ठाकुरको नहिं सय्यदके लिये मिठाई है।
सन्तको कंबल नहीं पतुरियाको कुरती सिलवाई है॥
गुरू हरै चेलोंका धन चेला करता चतुराई है।
उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है॥ ८॥
विधवा लग गई पान चबाने दे सुरमा मुसुकाई है।
नित करती शृंगार देखकर अहिवाती शरमाई है॥
बैठे ज्वारी और अगामी हुआ जगत अन्यायी है।
सब लक्षण विपरीत और घर घरमें होत लड़ाई है॥
गाय जाय लाखों मारी करता नहिं कोई सुनाई है।
इसीसे पड़ता काल सृष्टिमें संपति सकल बिलाई है॥
हो दयाल हे नाथ! आज कलयुगकी महिमा गाई है।
उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है॥ ९॥

—श्रीमद्भागवत, द्वादश स्कंधपर श्रीयुत शालिग्रामवैश्यकृत भाषाटीकासे उद्धृत।

॥ श्रीहरिः ॥

आधार-ग्रन्थ-सूची

स्मृतियाँ

१. अत्रिस्मृति— गुरुमण्डल ग्रन्थमाला, कलकत्ता (मनसुखराय मोर)
२. अत्रिसंहिता— ,, ,, ,,
३. आंगिरसस्मृति— ,, ,, ,,
४. आपस्तम्बस्मृति— ,, ,, ,,
५. औशनसस्मृति— ,, ,, ,,
६. आश्वलायनस्मृति— ,, ,, ,,
७. कपिलस्मृति— ,, ,, ,,
८. कण्वस्मृति— ,, ,, ,,
९. कात्यायनस्मृति— ,, ,, ,,
१०. गौतमस्मृति— ,, ,, ,,
११. दक्षस्मृति— ,, ,, ,,
१२. दाल्भ्यस्मृति— ,, ,, ,,
१३. नारदीयमनुस्मृति— ,, ,, ,,
१४. पाराशरस्मृति— चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
१५. प्रजापतिस्मृति— गुरुमण्डल ग्रन्थमाला, कलकत्ता
१६. बौधायनस्मृति— ,, ,, ,,
१७. बृहत्पराशरस्मृति— ,, ,, ,,
१८. ब्रह्मोक्तयाज्ञवल्क्यसंहिता— ,, ,, ,,
१९. बृहद्यमस्मृति— ,, ,, ,,
२०. बृहस्पतिस्मृति— ,, ,, ,,
२१. भारद्वाजस्मृति— ,, ,, ,,
२२. मनुस्मृति— चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
२३. मार्कण्डेयस्मृति— गुरुमण्डल ग्रन्थमाला, कलकत्ता
२४. याज्ञवल्क्यस्मृति— ,, ,, ,,
२५. यमस्मृति— ,, ,, ,,
२६. लघुव्याससंहिता— ,, ,, ,,
२७. लघुहरीतस्मृति— ,, ,, ,,
२८. लौगाक्षिस्मृति— ,, ,, ,,

२९. लघुशंखस्मृति— गुरुमण्डल ग्रन्थमाला, कलकत्ता
३०. लघुयमस्मृति— ,, ,, ,,
३१. लघ्वाश्वलायनस्मृति— ,, ,, ,,
३२. लिखितस्मृति— ,, ,, ,,
३३. वसिष्ठस्मृति— ,, ,, ,,
३४. विष्णुस्मृति— ,, ,, ,,
३५. व्यासस्मृति— ,, ,, ,,
३६. वाधूलस्मृति— ,, ,, ,,
३७. व्याघ्रपादस्मृति— ,, ,, ,,
३८. विश्वामित्रस्मृति— ,, ,, ,,
३९. वृद्धगौतमस्मृति— ,, ,, ,,
४०. वृद्धशातातपस्मृति— ,, ,, ,,
४१. शाण्डिल्यस्मृति— ,, ,, ,,
४२. शंखस्मृति— ,, ,, ,,
४३. शंखलिखितस्मृति— ,, ,, ,,
४४. संवर्त्तस्मृति— ,, ,, ,,
४५. हारीतस्मृति— ,, ,, ,,

पुराण—

१. अग्निपुराण— गुरुमण्डल ग्रन्थमाला, कलकत्ता
२. कूर्मपुराण— 'कल्याण' वर्ष ७१, गीताप्रेस, गोरखपुर
३. गरुड़पुराण— श्रीजीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्येण संस्कृतं प्रकाशितञ्च। कलिकाता नगरे । सरस्वतीयन्त्रे मुद्रितम् (ई० १८९०)
४. देवीभागवतपुराण— संस्कृत पुस्तकालय, बनारस सिटी
५. नारदपुराण— श्रीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, मुंबई
६. नरसिंहपुराण— गीताप्रेस, गोरखपुर
७. पद्मपुराण— गुरुमण्डल ग्रन्थमाला, कलकत्ता
८. ब्रह्मवैवर्तपुराण— ,, ,, ,,
९. ब्रह्मपुराण— ,, ,, ,,
१०. भागवतमहापुराण— गीताप्रेस, गोरखपुर
११. भविष्यपुराण— श्रीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, मुंबई
१२. मार्कण्डेयपुराण— सनातनधर्म प्रेस, मुरादाबाद (वि०सं० १९९२)
१३. मत्स्यपुराण— 'कल्याण' वर्ष ५८-५९, गीताप्रेस, गोरखपुर
१४. विष्णुपुराण— गीताप्रेस, गोरखपुर
१५. वाराहपुराण— श्रीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, मुंबई
१६. वामनपुराण— 'कल्याण' वर्ष ५६, गीताप्रेस, गोरखपुर
१७. विष्णुधर्मोत्तरपुराण— श्रीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, मुंबई
१८. शिवपुराण— चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
१९. स्कन्दपुराण— (माहेश्वर, नागर एवं प्रभास-खण्ड) श्रीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, मुंबई (वैष्णव, ब्रह्म एवं काशी-खण्ड) नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ)

धर्मसूत्र—

१. आपस्तम्बधर्मसूत्र— चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
२. गौतमधर्मसूत्र— ,, ,, ,,
३. बौधायनधर्मसूत्र— ,, ,, ,,

गृह्यसूत्र—

१. काठकगृह्यसूत्र—
२. गोभिलगृह्यसूत्र— चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
३. पारस्करगृह्यसूत्र— ,, ,, ,,

उपनिषद्—

१. तैत्तिरीयोपनिषद्— गीताप्रेस, गोरखपुर
२. नारदपरिव्राजकोपनिषद्—मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
३. प्रश्नोपनिषद्— गीताप्रेस, गोरखपुर

ज्यौतिष—

१. नारदसंहिता— चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
२. बृहत्संहिता— चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

आयुर्वेद—

१. अष्टांगहृदय— चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
२. चरकसंहिता— चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
३. भावप्रकाश
४. सुश्रुतसंहिता— मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली

तन्त्र—

१. कुलार्णवतन्त्र— कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
२. गन्धर्वतन्त्र
३. मन्त्रमहोदधि— चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली

४. रुद्रयामल— सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

नीति—

१. कौटिल्य-अर्थशास्त्र— चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
२. चाणक्यनीतिदर्पण— चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
३. चाणक्यसूत्रम्— चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
४. नीतिवाक्यामृतम्— ,, ,, ,,
५. पंचतंत्र— मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
६. शुक्रनीति— चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
७. हितोपदेश— चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

विविध—

१. महाभारत— गीताप्रेस, गोरखपुर
२. वाल्मीकीय रामायण— ,, ,,
३. श्रीमद्भगवद्गीता— ,, ,,
४. धर्मसिन्धु— चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
५. निर्णयसिन्धु— चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
६. भगवन्तभास्कर— चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली
७. यतिधर्मसंग्रह— आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पुणे
८. प्रायश्चित्तेन्दुशेखर—
९. भर्तृहरिशतक— चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
१०. कौशिकरामायण
११. गुरुगीता— डिवाइन लाइफ सोसायटी, ऋषिकेश
१२. वृद्धसूर्यारुणकर्मविपाक—लक्ष्मीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, मुंबई (संवत् १९९४)
१३. सिद्धसिद्धान्तसंग्रह— ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली
१४. सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसंग्रह— महेश अनुसन्धान संस्थान, वाराणसी
१५. किरातार्जुनीयम्— चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

कुल ग्रन्थ—१०५

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

गीता-प्रकाशनका अमूल्य साहित्य

१. संजीवनी-सुधा

मूल्य : पचास रु. मात्र

यह पुस्तक परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज द्वारा विरचित 'साधक-संजीवनी' को समझनेकी कुंजी अथवा गाइडबुक है। इसमें 'साधक-संजीवनी' में आयी साधकोपयोगी मार्मिक बातोंका विषयानुसार संकलन तथा अन्तमें 'संजीवनी-कोश' दिया गया है। जिज्ञासु साधकों तथा शोधकर्ताओंके लिये यह पुस्तक विशेष उपयोगी है।
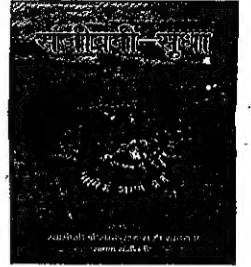
२. सहज गीता

मूल्य : बीस रु. मात्र

यह पुस्तक उन लोगोंके लिये वरदान-स्वरूप है, जो सरल हिन्दी भाषामें गीताके मार्मिक भावोंको समझना चाहते हैं। इस पुस्तकमें परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज द्वारा विरचित 'साधक-संजीवनी' के भावोंको सम्मिलित किया गया है। नये पाठकों तथा विद्यार्थियोंके लिये यह बहुत उपयोगी है।

३. हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं

मूल्य : तीन रु. पचास पैसे मात्र

वर्तमान लोगोंके पास न तो इतना समय है और न इतनी सामर्थ्य है कि वे बड़े-बड़े साधन कर सकें। इस छोटी-सी पुस्तिकामें परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज द्वारा बताये गये अत्यन्त सुगम साधन 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं' – इस प्रार्थनाका रहस्य तथा उसके महत्त्वका विवेचन किया गया है। इस पुस्तिकाको पाठकोंने इतना पसन्द किया कि थोड़े ही समयमें इसकी लगभग एक लाख प्रतियाँ प्रकाशित हो गयीं। यह पुस्तिका गुजराती भाषामें भी उपलब्ध है।

४. सीमाके भीतर असीम प्रकाश

इस युगके अप्रतिम महापुरुष परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज रात-दिन ऐसे उपायोंकी खोजमें लगे रहते थे, जिनके द्वारा प्रत्येक कल्याणकांक्षी मनुष्य शीघ्र-से-शीघ्र तथा सुगमतासे अपना कल्याण कर सके। इस विषयमें उन्होंने अनेक नवीनतम क्रान्तिकारी उपायोंकी खोज की और उन्हें अपने प्रवचनों

तथा पुस्तकोंके माध्यमसे जनतातक पहुँचाया।

इस पुस्तकमें परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज द्वारा जुलाई १९९८ से लेकर दिसम्बर १९९९ तक दिये गये प्रवचनोंका सार-संग्रह दिया गया है। इन प्रवचनोंमें श्रोताओंके विविध लौकिक-पारमार्थिक प्रश्नोंके उत्तर भी सम्मिलित हैं, जो बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं।
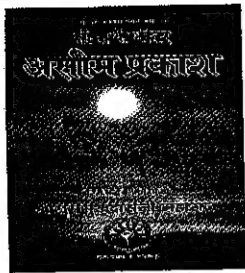
मूल्य : तीस रु. मात्र

५. बिन्दुमें सिन्धु

इस पुस्तकमें परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज द्वारा जनवरी २००० से लेकर मई २००० तक दिये गये प्रवचनोंका सार-संग्रह दिया गया है, जिसमें मानवमात्र के कल्याणकी अत्यन्त सरल युक्तियोंका समावेश हुआ है। इन प्रवचनोंमें श्रोताओंके विविध लौकिक-पारमार्थिक प्रश्नोंके उत्तर भी सम्मिलित हैं, जो बहुत ही उपयोगी हैं।

मूल्य : तीस रु. मात्र

६. भवन भास्कर

इस पुस्तकमें पुराणादि विभिन्न प्राचीन शास्त्रोंके आधारपर वास्तुशास्त्रकी प्रमुख बातोंका सुन्दर संग्रह है। इसे पढ़कर व्यक्ति स्वयं ही वास्तुशास्त्रके अनुसार अपने मकानका निर्माण करवा सकता है और वास्तुदोष दूर कर सकता है। परिशिष्टमें परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके द्वारा बतायी हुई वास्तु-सम्बन्धी विविध बातें भी दी गयी हैं।

मूल्य : तीस रु. मात्र

उपर्युक्त पुस्तकें मँगवानेके इच्छुक सज्जन कृपया निम्न पतेपर सम्पर्क करें

गीता प्रकाशन, गोरखपुर

गीता-सत्संग-मण्डल,
कसौधन पंचायती मन्दिर (हरिवंश गली), गोरखपुर - २७३००५ (उ.प्र.)
सम्पर्क-सूत्र-093 895 93 845;

E-mail : radhagovind10@gmail.com, pbramhachari@gmail.com
Visit us at : www.gitaprakashan.org

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः॥

परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज द्वारा विरचित
श्रीमद्भगवद्गीताकी अभूतपूर्व टीका—

'साधक-संजीवनी'

एक ही ग्रन्थमें—

- सरल और सुबोध भाषा-शैलीमें गीताके गहरे भाव!
- लोक और परलोक दोनोंके सुधारकी सामग्री!
- प्रत्येक मनुष्यके लिये जीवनोपयोगी बातें!
- परमात्मप्राप्तिके अनेक सुगम उपाय!
- साधकोंका सही मार्गदर्शन!

एक ही पुस्तकमें सब कुछ!!

परमशान्ति चाहनेवाले प्रत्येक मनुष्यके लिये,
चाहे वह किसी भी धर्म, सम्प्रदाय, देश, वेश आदिका क्यों न हो,
यह ग्रन्थ संजीवनी बूटीके समान है।
इस ग्रन्थमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन आदि सभी
धर्मोंके अनुयायियोंको अपने-अपने मतके अनुसार ही
परम कल्याणके सुगम उपाय मिल जायँगे।

यह एक आशीर्वादात्मक ग्रन्थ है!

एक बार पढ़कर देखें तो सही!

('साधक-संजीवनी' हिन्दी, अँग्रेजी, बँगला, मराठी, गुजराती, तमिल, कन्नड़ और ओड़िया भाषामें उपलब्ध है।)